ॐ ओ३म् ॐ

दिव्यदयानन्द

सम्पादक

पूर्णचन्द एडवोकेट

नारायण गोस्वामी वैद्य

प्रकाशक

गिरीश औषधालय,

माईथान-आगरा।

———::*::———
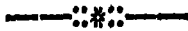
मुद्रक—

सत्यपाल शर्मा,

कान्ति प्रेस, माईथान-आगरा।

मूल्य १)

दो शब्द

श्रीमद्दयानन्द निर्वाण अर्द्धशताब्दी के पुण्य अवसर पर यह पुस्तक पाठकों की भेंट की जाती है। ऋषि दयानन्द की विमल विभूति का प्रसार, किसी न किसी रूप में, संसार के कोने कोने में हो रहा है, जब ऋषि ने वैदिक धर्म दिवाकर के समुज्ज्वल प्रकाश द्वारा जनता का अज्ञानान्धकार दूर करना चाहा, तब सब ने इस सदुद्योग का घोर विरोध किया, परन्तु जब ऋषि के उद्देश्य को लोगों ने गम्भीरता-पूर्वक सुना समझा, तो उनका महत्त्व हृदयों पर अङ्कित हो गया, और अपने तथा पराये भी उनकी प्रशंसा करने लगे—विरोधी भी ऋषि की विजय का लोहा मान गये, और उनके उपकार के प्रति सदैव कृतज्ञता प्रकट करते रहते हैं। इस पुस्तक में ऋषि से सम्बन्ध रखने वाली उन सम्मतियों का संग्रह है; जो समय समय पर विचार शील विद्वानों द्वारा प्रकाशित की जाती रही हैं। इन सम्मतियों के संग्रह करने में आर्यमित्र, तथा प्रकाशादि के विशेषाङ्कों से सहायता ली गई है।

श्रीयुत जी. ए. निटीसन द्वारा लिखित ऋषि की अँग्रेज़ी जीवनी से भी कुछ सम्मतियों के अनुवाद दिये गए हैं। आर्य-धर्मेन्द्र जीवन से भी अच्छी मदद मिली है। पुस्तक को रोचक बनाने के लिए जहाँ तहाँ 'अनुराग रत्न' से भी कवि-ताएँ उद्धृत कर दी गई हैं, कितने ही लेख आर्य विद्वानों द्वारा विशेष रूप से भी लिखाए गए हैं। इस पुस्तक में जिन लेखकों की सामग्री है उनके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इन लेखकों के अनुग्रह से ही पुस्तक वर्त्तमान रूप ग्रहण कर सकी है, आशा है कि, ऋषि की पुण्य स्मृति में प्रकाशित यह पुस्तक पाठकों को उपयोगी सिद्ध होगी, और वे इसके अपनाने में संकोच न करेंगे।

आगरा।
कार्त्तिक १९९० ई०

पूर्णचन्द्र एडवोकेट
नारायण गोस्वामी वैद्य।

—:※:—

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

१—महर्षि-महिमा (कविता)
[कवि-सम्राट् श्री पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा, 'शङ्कर'] १-४
२—दयानन्द श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे
[महात्मा श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी] ... ५
३—दयानन्द दुनिया के पूज्य हैं [श्रीमती कस्तूरी बाई गांधी] ५
४—स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं
[पंजाब केसरी, श्री लाला लाजपतराय] ... ५-६
५—दयानन्द के लिए मेरे दिल में सच्ची पूजा के भाव हैं
[श्रीमती डा० एनी बीसेण्ड] ६
६—आध्यात्मिक शान्ति के जन्मदाता
[श्री० सी० ऐस-रङ्गाअय्यर] ६
७—वारम्बार प्रणाम है [श्री कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर] ७
८—हमारी चिर कृतज्ञता का पात्र [श्री०डा०पी०सी० राय] ७-८
९—स्वामीजी सब से बढ़ कर थे
[श्रीमती खदीजा बेगम एम० ए०] ... ८
१०—दृढ़व्रती दयानन्द [श्री० एस० ई० स्टोक्स] ... ८-९
११—एकेश्वरवाद में एक मत
[मौलाना श्री अब्दुल बारी साहब] ९
१२—मेरे हृदय में श्रद्धा और प्रेम है
[श्री० जे० के० देवधर एम० ए०] ९

विषय — पृष्ठ

१३—समाज सुधारक दयानन्द [राजा श्री नरेन्द्रनाथ एम० ए०] १०
१४—संकीर्णता का दोष ग़लत है
[श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर] १०
१५—स्वामी जी की आवाज़ [प्रिंसिपल थडानी एम० ए०] ११
१६—महान् ऋषि दयानन्द
[श्री पालरिचार्ड प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक] ११
१७—दयानन्द की महत्ता [प्रिंसिपल एस० के० रुद्र] ११-१२
१८—दयानन्द के कार्य [श्री माधवराव सप्रे] १२
१९—स्वामीजी के उपकार [श्री सर शिव स्वामी अय्यर] १२-१३
२०—जगद्गुरु दयानन्द [मि० फौक्स पिट् जनरल सेक्रेटरी
Moral Education League London, १३
२१—आर्यसमाज सर्वोत्कृष्ट है [सर एडवर्ड डगलस
मेक्लेमन भूतपूर्व गवर्नर पंजाब] १४
२२—दो बड़े सुधारक [श्री सी० वाई० चिन्तामणि] १४
२३—प्रथम सुधारक [राजा श्री बरखण्डी
महेश प्रताप नारायणसिंह शिवगढ़ राज्य] १५
२४—सर्व श्रेष्ठ महा पुरुष
[श्री० जी० एस० आरण्डेल प्रिंसिपल] १५
२५—प्राचीनता का पुनर्जीवन
[आनरेबिल जी० यस० खापर्डे] १६
२६—लूथर और दयानन्द [श्री टी० एल० वास्वानी] १७-२२
२७—अधमोद्धारक ऋषि दयानन्द [हिज़ हाईनेस
महाराजा साहू छत्रपति कोल्हापुर] २२-२४
२८—नये युग का विधाता
[श्री पूज्य स्वामी अनुभवानन्द शान्त] २५-२९

विषय पृष्ठ

२६—सदा सत्य की विजय होती है [रेवरेण्ड टी० डी०
सले० प्रिंसिपल सेण्ट जौन्स कालिज आगरा] २६-३२
३०—गौरव गान (कविता)
[कविराज श्री पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय] ३२-३५
३१—राजस्थान में महर्षि दयानन्द (उनकी मृत्यु का स्वयं
ज्ञात वृत्तान्त) [श्री रावराजा तेजसिंह वर्मा] ३६-३६
३२—स्वामी दयानन्द [श्री० सी० एफ़ एण्डयूज़] ३६-४१
३३—आर्यसमाज ने क्या किया
[श्री बाबू पूर्णचन्द एडवोकेट] ४२-४५
३४—दलितोद्धारक दयानन्द [श्री बोहरे खेमचन्द] ४६-४७
३५—स्वामी दयानन्द के आने की ज़रूरत
[श्री पीर मुहम्मद 'मूनिस'] ४७-५३
३६—ऋषि की दो शिक्षायें [मेजर टी० यफ़ ओडोनल] ५३-५४
३७—कर्म योगी दयानन्द [बंगाल के प्रसिद्ध नेता
श्री सुभाषचन्द्र बोस] ५४-५५
३८—बाल ब्रह्मचारी दयानन्द
[श्री डा० सुवर्णसिंह वर्मा, 'आनन्द'] ५५
३६—नई जागृति का जन्मदाता
[मि० एस० डी० स्टोक्स] ५६-५७
४०—क्या होता ? (कविता)
[कविवर श्री पं० विद्याभूषण 'विभु'] ५८
४१—अर्द्ध शताब्दी का पुनीत सन्देश
[श्री पण्डित नारायण गोस्वामी वैद्य] ५६-६०
४२—ऋषि जीवन के दो पहलू
[वेदालङ्कार श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति] ६०-६२

विषय पृष्ठ

४३—दयानन्द की महत्ता
[साधुवर्य श्री० टी० एल० वास्वानी] ६२-६३
४४—आदर्श पुरुष (कविता)
[श्री बाबू हीरालाल सूद सबजज] ६४-६६
४५—स्वामीजी का विशाल व्यक्तित्व
[श्री पं० भास्कर रामचन्द्र भालेराव] ६६-६६
४६—महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव
[श्री राजा अवधेशसिंह बहादुर] ... ६६-७१
४७—ऋषि की स्मृति में (कविता) [श्री 'नवीन'] ७१-७२
४८—स्वामी दयानन्द [आग़ा मुहम्मद सफ़दर साहब] ७२
४९—स्वामीजी का सम्बन्ध [जनाब मिर्ज़ा याक़ूबबेग साहिब] ७३
५०—निर्भय दयानन्द [मि० एस० एल० पोलक] ७४
५१—महर्षि दयानन्द [मि० एस० एल० मिकाएल पूर्ना] ७४
५२—सुवक्ता दयानन्द [श्रीमती जोजेफाइन रेन्सम] ७४-७५
५३—पुष्पाञ्जलि [श्री दादा साहाब जी० एस० खापर्डे] ७५
५४—स्वामी दयानन्द [श्री प्रिंसनरेन्द्र शमशेरजंग
रानाबहादुर आफ़ नैपाल] ... ७६
५५—त्यागी दयानन्द [श्री लाला हरदयालजी एम० ए०] ७६-७७
५६—आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द [हिज़हाईनेस,
राजाधिराज, सरनाहरसिंह वर्मा बहादुर] ७७-८१
५७—निर्भयता की मूर्ति दयानन्द
[श्रीमान् राव राजा तेजसिंह वर्मा जोधपुर] ८१-८४
५८—ऋषिदयानन्द की सफलता [श्रीइन्द्र विद्यावाचस्पति] ८४-८६
५९—स्वामी दयानन्द सरस्वती
[श्री पं० विधुशेखर भट्टाचार्य्य प्रिंसिपल] ८६-८९

विषय पृष्ठ

६०—स्वामी दयानन्द का गौरव
[तपस्वी श्री अरविन्द घोष] ८६-६२
६१—प्रेम की आग [अमेरिका के
परम विद्वान एण्ड्रो जैक्सन डेविस] ६३-६४
६२—आर्य (कविता) [श्री कर्ण कवि] ६४-६६
६३—स्वामी दयानन्द [वेदतीर्थ श्री पं० नरदेव शास्त्री] ६७-६६
६४—मङ्गल कामना (कविता) [महाकवि 'शङ्कर'] ६६
६५—धर्मोद्धारक दयानन्द (कविता)
[श्री निरंजनसिंह 'अरोड़ा'] १००-१०१
६६—स्वामी दयानन्द के निधन पर
अङ्गरेजी पत्रों की सम्मतियाँ १०२-१०५
६७—स्वामी दयानन्द सरस्वती
[अमेरिका का एक विद्वान] १०६
६८—ऋषि दयानन्द के पीछे चलो तभी कल्याण होगा
[महाराजकुमार उम्मेदसिंहजी शाहपुरा] १०६-१०७
६६—मैं ऋषि का आदर क्यों करता हूँ
[श्री० जहूर बख्श 'हिन्दीकोविद'] १०७-११०
७०—आर्यसमाज का लोकतन्त्र संघटन
[रायसाहब श्री मदनमोहन सेठ 'सबजज'] ११०-११३
७१—दयानन्द संसार की संपति थे
[श्री विजयराघवाचार्य] ११३-११५
७२—स्वामी दयानन्द सरस्वती [आनरेबुल राजा सर
मोतीचन्द बहादुर सी० आई० ई०] ११५-११६
७३—ऋषि दयानन्द का संदेश
[श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज] ११६-११७

विषय पृष्ठ

७४—स्वामी दयानन्द का कार्य [श्री भाई परमानन्द एम. ए.] ११८

७५—स्वामी दयानन्द का व्यक्तित्व
[श्री श्रीप्रकाश बार० एट० ला०] ११६-१२०

७६—श्रेष्ठ पुरुष दयानन्द [मि० ए० ओ० ह्यूम] १२०

७७—उदार हृदय दयानन्द [योरुप के प्रसिद्ध विद्वान
प्रो० एफ० मैक्समूलर] १२१

७८—प्राचीन प्रणाली की पुनरावृत्ति [ब्रिटिश साम्राज्य
के प्रधान सचिव मि० रेमजे मेकडोनल्ड] १२२

७९—धार्मिक सुधारक दयानन्द
[सरवेलन्टायन चिरौल] १२२

८०—सामाजिक सुधारक दयानन्द [श्रीमती एनीबीसेंट] १२३

८१—परमहंस दयानन्द [सर सैयद अहमद] १२३

८२—निष्कपट दयानन्द
[दीवान बहादुर आर० रघुनाथ राव] १२४

८३—लहर के केन्द्र दयानन्द [प्रो० एम० रङ्गाचारियर] १२४

८४—आर्यसमाज का कार्य
[श्री मौलाना हसरत मुहानी साहब] १२५-१२६

८५—स्वामी दयानन्द और हिन्दी
[श्री प्रो० अयोध्यानाथ शर्मा] १२६-१३०

८६—ऋषि दयानन्द और प्रवासी भारतीय
[श्री पं० भवानी दयाल संन्यासी]··· १३०-१३४

८७—दयानन्द दिग्विजय
[श्री पं० धुरेन्द्र शास्त्री न्यायभूषण] १३५-१४१

८८—स्वामी दयानन्द [श्री लेफ्टीनेन्ट
दुर्गानारायणसिंह बहादुर] १४२-१४३

विषय पृष्ठ

८९—बालकों के लिए बालक मूलशंकर की कथा
[श्री पं० घासीराम एम. ए. एडवोकेट] १४३-१४७
९०—आर्य समाज (कविता)
[कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त] १४७-१५०
९१—स्वामी दयानन्द [आचार्य पं० चतुरसेन शास्त्री] १५०-१५३
९२—हम (कविता) [श्री भद्रजित 'भद्र'] ... १५४-१५५
९३—ऋषिका संदेश [श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज] १५६
९४—श्रीमद्दयानन्द-जन्म (कविता)
[श्री पं० अनूप शर्मा, एम. ए. एल. टी] १५७-१५८
९५—महर्षि दयानन्द की क्षणिक झलक
[श्री पं०विष्णुलाल शर्मा एम. ए. रिटायर्डसबजज] १५८-१६०
९६—आर्य समाज की (कविता)
[श्री ब्रह्मचारी रत्नाकरजी] १६०-१६१
९७—सत्यार्थ-प्रकाश का महत्त्व
[श्री प्रो० रमेशचन्द्र बनर्जी एम. ए.] १६२-१६४
९८—सम्मति [मि० पी० हैरीसन] १६४
९९—सिंहनाद (कविता) [कविरत्न श्री पं०
हरिशङ्कर शर्मा आर्यमित्र सम्पादक १६५
१००—सम्मति [श्री फडरिक फौ० थौम] १६५
१०१—महर्षि का प्रादुर्भाव [श्रीमती सत्यवती देवी] १६६-१६७
१०२—दयानन्दोदय (कविता)
[श्री पं० यज्ञदत्त शर्मा, उपाध्याय] १६७
१०३—दयानन्द दिग्विजय [श्री पं मातासेवक पाठक
विश्वमित्र संपादक] १६८-१७३
१०४—आदर्श गुरु-दक्षिणा (कविता) [श्री पं० सूर्यदेव शर्मा
साहित्यालङ्कार एम० ए०] १७३-१७५

विषय पृष्ठ

१०५—वैदिक वीरों की प्रतिज्ञा (कविता)
[कविराज श्री शंकरजी] १७५-१७६

१०६—सद्गुरु-घोषणा, विनय (कविता) " " १७७

१०७—ऋषि दयानन्द की मृत्यु कैसे हुई ?
[श्री कु० चाँदकरण शारदा एडवोकेट] १७८-१८१

१०८—सद्गुरु स्तुति (कविता)
[श्री राजकुमार रणञ्जयसिंह] १८२

१०९—महर्षि दयानन्द की हार्दिक इच्छायें
[श्री स्वामी परमानन्दजी] १८३-१८६

११०—दयानन्दोदय (कविता) [कविराज
श्री पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा 'शङ्कर] १८६-१९१

१११—ऋषि को प्रणाम [श्री पालरिचार्ड
सुप्रसिद्ध फ्रेंच लेखक] १९१-१९२

११२—ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ
[श्री पं० महेन्द्रप्रताप शास्त्री एम० ए०] १९२-२००

११३—नक्षत्र (कविता)
[श्री पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा, एम० ए०] २००

११४—ऋषि दयानन्द [श्री पं० ब्रजनारायण'चकबस्त'] २०१-२०२

११५—फुटकर कवितायें [कविसम्राट
श्री पं० नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर'] २०३-२०८

११६—मूलशंकर का शंकर विवेक (कविता)
[श्री० पं० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न'
आर्यमित्र संपादक]

११७—कवितायें [कविराज श्री शंकरजी]

११८—दयानन्द का चमत्कार [श्री पं० उमाशङ्करजी भूतपूर्व
एम.एल. सी. मंत्री आर्य प्रतिनिध सभा, संयुक्तप्रान्त] २२५-२२८

जिनके ब्रह्मानन्द से, उपजा आर्यसमाज ।
वे सद्गुरु संसार के, दयानन्द ऋषिराज ॥—महाकवि 'शङ्क

दिव्यदयानन्द

महर्षि-महिमा

* दोहा *

शङ्कर भूलेगा तुझे, क्यों वह आर्यसमाज ।
मन्त्र देगए हैं जिसे, दयानन्द ऋषिराज ॥

* वीरछन्द *

(१)

पाकर शुद्ध उमा शङ्कर ने, सुमति शारदा पै कर प्यार ।
सुकृत शङ्करा को अपनालो, अटल महाविद्या बलधार ॥
मंगल-मूल मूलशंकर को, समझ दया आनन्द महान ।
भारत-भू-भूषण महर्षि के, आर्य-मित्र कारिये गुणगान ॥

(२)

धन्य मोरवी नगर निवासी, बुधवर अम्बाशंकर शैव ।
जिनके पुत्र मूलशंकर का, सुयश रहेगा शुद्ध सदैव ॥
होनहार बालक ने अपना, जिस प्रकार से बदला ढङ्ग ।
धर्म-धुरन्धर कर्मवीर का, सुनिये मित्र चरित्र प्रसङ्ग ॥

(३)

सभ्य-सुबोध मूलशंकर ने, जीवन-वर्ष बिताकर आठ ।
धार जनेऊ कुल की विधि से, कण्ठ किए कुछ वैदिक पाठ ॥
पाकर सम्मति पूज्य पिता की, पशुपति-पूजा को अपनाय ।
व्याकरणादि ग्रन्थ पढ़ने का, किया यथोचित ठीक उपाय ॥

(४)

नव हायन के प्रिय पोते को, तज बाबा पहुँचे परलोक ।
भ्राता केशव देख बहिन का, हाय! हुआ उर दाहक शोक ॥
धीरज धार मूलशंकर ने, ऐसा समुचित किया विचार ।
बन्धन काट विमुक्त बनूँगा, होकर भवसागर से पार ॥४॥

(५)

ब्रह्मचर्य-व्रतशील छात्र ने, वर्ष चतुर्दश जीवन भोग ।
सीख सीख समझे बहुतेरे, ग्रन्थ यथाक्रम कर उद्योग ॥
जब काशी जाकर पढ़ने का, उमगा उर उत्साह उदार ।
रोक लिया रोकर जननी ने, बालक बैठ रहा मन मार ॥

(६)

शिव-रजनी को हर-भक्तों ने, शंकर पूजे कर उपवास ।
सब की भाँति मूलशंकर भी, अनशन रहा पिता के पास ॥

पिछली रात सोगये जगुआ, आकर बिल से मूषिक एक।
चढ़कर ऊपर बम्भोला के, कौतुक करने लगा अनेक॥

(७)

लम्बोदर सुत ने वाहन से, चटवाये पितु गोल मटोल।
दृश्य विलोक मूलशंकर ने, समझा तर्क-तुला पर तोल॥
मूषिक भी न हटा सकता है, जो अपने तन पर से हाय।
सुगति न पा सकता हूँ ऐसे, जड़ शंकर का भक्त कहाय॥

(८)

आखु चरित्र दिखाकर बोला, पूज्य जनक से पुत्र कुमार।
क्या सम्भव है इस भव द्वारा, हो सकना भवसागर पार॥
उत्तर में फटकार पिता की, पाकर बालक हुआ उदास।
पिण्ड छुड़ाकर पिण्डेश्वर से, पहुँचा निज जननी के पास॥

(९)

चरण चूम माता के सुत ने, पाकर परम प्रेम का दान।
हर पर चूहे की चढ़न्त का, कर डाला भर पेट बखान॥
पोल खोलकर ढोंग ढोल की, किया कपट का फाटक बन्द।
छोड़ असत्य सत्य अपनाया, उर धर ध्येय सच्चिदानन्द॥

(१०)

कर्म-सुधार सत्य का साधन, जीवन भोग बरस इक्कीस।
अपना लिया मूलशंकर ने, धर्म धरातल बिसवे बीस॥
देख पिता ने सुत कुमार का, दृढ़ वैराग्य विवेक प्रवाह।
रचना ठान गृहस्थ बाँध की, करना चाहा तुरत विवाह॥

(११)

चरचा चलते ही विवाह की, हुआ मूलशंकर अति खिन्न।
निश्चय किया स्वतन्त्र रहूँगा, होकर कुल कुटुम्ब से भिन्न॥
एक रात चुपचाप अकेला, कर गृहस्थ जीवन का अन्त।
पकड़ दया आनन्द भोग को, गेह त्याग चल दिया तुरन्त॥

* दोहा *

यों त्यागे ऋषिराज ने, मात-पिता-गृह भोग।
सारे भारत में फिर, सिद्ध किया हठ योग॥१॥
परख पूर्णानन्द ने, तरुणवीर निष्काम।
वेश दिया संन्यास का, दयानन्द रख नाम॥२॥
पाये मथुरा धाम में, वे गुरु परमोदार।
दयानन्द का होगया, जिनसे सर्व सुधार॥३॥
बोले विरजानन्दजी, ले चंगुल भर-लौंग।
बेटा ! करदे देश से, दूर विदाहक ढोंग॥४॥
देव दयानन्दर्षि ने, मान लिया गुरु मन्त्र।
सारे भारतवर्ष में, निर्भय फिरे स्वतन्त्र॥५॥
हारे प्रतियोगी पड़ी, मत-पन्थों पर गाज।
धार दया आनन्द से, उमगा आर्य-समाज॥६॥
प्यारे वैदिकधर्म से, कर हम को संयुक्त।
त्याग देह को हो गये, दयानन्द ऋषि मुक्त॥७॥

—::*::—

दयानन्द श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे

महर्षि दयानन्द के लिए मेरा मन्तव्य यह है, कि वे हिन्द के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में, श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, उनकी विचार-स्वतन्त्रता, उनका सब के प्रति प्रेम, उनकी कार्य-कुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है।

—महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी।

—::*::—

दयानन्द दुनिया के पूज्य हैं

स्वामी दयानन्द के जीवन में सत्य की खोज दीख पड़ती है, इस लिए केवल आर्यसमाजियों के लिए ही नहीं, वरन् सारी दुनिया के वह पूज्य हैं।

—श्रीमती कस्तूरी बाई गांधी।

—::*::—

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल इन्हीं को एक मात्र अपना गुरु माना है। वह मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है। इन दोनों की गोद में मैं पला और अपने हृदय और मस्तिष्क को डाला। मुझे इस बात का अभिमान है कि, मेरा गुरु बड़ा स्वतंत्र मनुष्य था, उसने हमको स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना, बोलना और कर्त्तव्य पालन करना सिखाया। मुझे इस बात का भी गर्व है कि, मेरी माता ने मुझ को एक संस्था में बद्ध होकर रहना सिखाया था। एक ने स्वतन्त्रता दी दूसरे ने नियमानुवर्तिता का दान दिया। इसके बिना न तो मनुष्य अपना सुधार कर सकता है और न

किसी और का। नवयुवक स्वतन्त्रता के ग्राहक हैं, परन्तु नियम शीलता के वे विरुद्ध हैं। जब तक यह दोनों भाव सम भाव से उनमें उत्पन्न न होंगे, तब तक उनका जीवन आनन्दमय और सुखद नहीं हो सकता। स्वामी जी ने हम को देश-प्रेम का मीठा फल चखाया, जाति-भक्ति और जाति-सेवा का बीज हमारे हृदयों में बोया, साथ ही हम को यह भी उपदेश दिया कि, हम अपने हृदय को विशाल और उदार रक्खें, जिससे मनुष्य मात्र इसमें समा जावे।

—पंजाब केसरी लाला लाजपतराय।

—::०::—

दयानन्द के लिए मेरे दिल में सच्ची पूजा के भाव हैं

आर्य समाज के लिए मेरे हृदय में शुभ इच्छायें हैं और उस महान् पुरुष के लिए जिसका आदर आप आर्य करते हैं, मेरे दिल में सच्ची पूजा के भाव हैं।

—डा० एनी बीसेन्ट।

—::*::—

आध्यात्मिक शान्ति के जन्मदाता

स्वामी दयानन्द भारतवर्ष की वर्त्तमान आध्यात्मिक शान्ति के जन्मदाता हैं, किताबी पण्डितों ने उनके स्वरूप को नहीं समझा। परन्तु सचाई का उपासक वह ऋषि, प्रत्येक भलाई का मित्र तथा प्रत्येक पाप और असत्य का शत्रु है। मैंने स्वराज्य का रहस्य सत्यार्थप्रकाश में पाया। अगर यह हमारी प्राचीन जाति सत्यार्थप्रकाश की शिक्षाओं के अनुसार चले, तो इस पृथ्वी की कोई भी शक्ति हमारे स्वाधीनता के दिनों को नहीं हटा सकती।

—श्री० सी० ऐस रङ्गाअय्यर।

—::*::—

बारम्बार प्रणाम है

मेरा सादर प्रणाम हो उस महान गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आत्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा, जिसके मन ने भारतीय जीवन के सब अङ्गों को प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरु का उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर, सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था उसे मेरा बारम्बार प्रणाम है।

—श्री कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

—::०::—
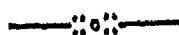
हमारी चिर कृतज्ञता का पात्र

यद्यपि मैं आर्य्य समाज के सब सिद्धान्तों से सहमत नहीं हो सकता, तथापि मैं उसके सिद्धान्तों और सेवा की, जो वह हमारे देश के लिये कर रहा है, हृदय से प्रशंसा करता हूँ। वह एकेश्वर वाद का समर्थक है और उसने क्रियात्मक रूप से जाति-बन्धन को तोड़ दिया है। मैं इस जाति-बन्धन को भारतीय राष्ट्र निर्माण की आकांक्षा में घोर शाप और भयानक बाधा के रूप में देखता हूँ। आर्य्य समाज ने अछूत जातियों के प्रति अपनी सहायता का हाथ बढ़ाया है और उन्हें समाज के अन्दर लेकर अपने गले लगाया है। उनके नेताओं में काम की लगन है, और उन्होंने अपने उद्देश्य के लिये महान् आत्मत्याग किया है, तथा अन्य अनुयायी लोग भी इस दृष्टि से किसी प्रकार पीछे नहीं हैं। मुझे डी० ए० वी० कालिज जाने और सब श्रेणियों तथा कालिज सम्बन्धी छात्रालयों के निरीक्षण का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। मैं शिक्षकों की निष्ठा उद्देश्य और कार्य तत्प-

रता से बहुत प्रभावित हुआ। आर्य्य समाज ने अपने कार्य्य क्रम में स्त्री-शिक्षा को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। आर्य्य समाज ने हमारी मातृ भूमि के उद्धार के लिये बहुत कुछ किया और वह हमारी चिर कृतज्ञता का पात्र है।

—डा० पी० सी० राय।

—::*::—

स्वामीजी सब से बढ़कर थे

महर्षि दयानन्दजी भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से हैं जिनका नाम संसार के इतिहास में, विशेषतया भारत के इतिहासाकाश में सदैव के लिये एक चमकते हुए सितारे की तरह प्रकाशित रहेगा। वह भारत माता के उन सपूतों में से हैं, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाय थोड़ा है। स्वामीजी बड़े निर्भय और पूर्ण सत्य सम्पन्न थे। अगर वह भारतवर्ष में पैदा न हुए होते, तो आज हमको महात्मा गांधी जी, महात्मा तिलक और लाला लाजपतराय जैसे देश-भक्तों के दर्शन भी न प्राप्त होते। नैपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट् एवम् विजयी संसार में हो चुके हैं, परन्तु स्वामीजी इन सब से बढ़ कर थे। उन्होंने अपने ऊपर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर ब्रह्मचर्य्य का पालन किया।

—श्री० खदीजा बेगम, एम० ए०।

—::*::—

दृढ़व्रती दयानन्द

सब वर्णनों से, जो स्वामी दयानन्द के विषय में मिलते हैं, उनसे वे असाधारण शारीरिक शक्ति सम्पन्न, प्रभावशाली व्यक्ति और महान्संकल्प वान् पुरुष सिद्ध होते हैं। उनकी विद्वत्ता सर्व

सम्मत थी। परन्तु सम्भवतः उनका साहस अध्यवसाय और स्वावलम्बन उन लोगों को बहुत प्रभावित करता था, जो अब तक प्रायः ऐसे ही भारतीयों से मिलते थे और जिनमें कि ये दोनों गुण न थे।

—श्री० एस० ई० स्टोक्स।

——::#::——

एकेश्वरवाद में एक मत

स्वामी दयानन्द ने जो रास्ता अख़्त्यार किया था, वह उस वक्त उन्हें मुनासिब ही मालूम हुआ था। सर सैयद अहमदख़ाँ, मिर्ज़ा साहब, राजा राममोहनराय और स्वामी दयानन्द ने क़ौम की बहबूदी के लिये जो कुछ किया, वह उनके नज़दीक ठीक था। स्वामीजी ने हिंदू मजहब को हमारे सामने इस तरह पेश किया कि, हम उस पर अक़्ल से ग़ौर कर सकें। मसलन स्वामी जी एक ख़ुदा के मानने वाले थे और इस मसले को हिंदू-धर्म में से बिलकुल नया हमारे सामने रक्खा। एकेश्वरवाद में हमारा और आर्य्य समाज का एक मत है।

—मौलाना अब्दुल बारी।

——::#::——

मेरे हृदय में श्रद्धा और प्रेम है

मुझे यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि, उस महान् कार्य्य के लिये, जो उत्तरीय भारतवर्ष में स्वामी दयानन्द जी की विचार तरङ्गों से तरङ्गित होकर हुआ है, मेरे हृदय में अगाध श्रद्धा और प्रेम मौजूद है। मैं महर्षि को नवीन भारत के निर्माताओं की सब से पहली कोटि में गिनता हूँ।

—जी० के० देवधर एम० ए०।

——::#::——

समाज-सुधारक दयानन्द

हिन्दू-समाज में संघटन पैदा करने की इच्छा अनेक जाति सुधारकों के हृदय में हुई, और यद्यपि उन सबके कार्यों को अपेक्षाकृत बुद्धि से जांचना हमारा काम नहीं, तथापि इतना कहना आवश्यक है कि, स्वामी दयानन्द सरस्वती को उन लोगों में, जिन्हों ने हिन्दू-संघटन का काम किया, बहुत अच्छा स्थान मिलना चाहिये। यद्यपि समस्त हिंदुओं ने प्रत्येक युग में वेदों को बहुत बड़ा मान दिया है, तथापि वेदों के अतिरिक्त और बहुत से ऐसे कल्पित ग्रन्थ बन गए हैं, जिन्हें लोगों ने अपनी सामाजिक और राष्ट्रिय उन्नति का आधार बनाना आरम्भ कर दिया है। इस विक्षिप्तता को रोकने के लिये स्वामीजी ने सब से पहले इस बात पर जोर दिया कि, वेदों को ही अपने लिये ज्ञान का केन्द्र मानो। संघटन की आवश्यकता का बीज सबसे पहिले उन्हों ने ही बोया। स्वामीजी ने इस नियम का भी प्रचार किया कि, जाति भेद गुण पर है, पैदायश पर नहीं; मेरी धारणा है कि जबतक स्वामीजी की उपर्युक्त दोनों बातों को पूर्ण रूप से कर्म रूप में परिवर्त्तन न किया जायगा, तब तक हिंन्दू समाज का भली भांति संघटन न हो सकेगा।

—राजा नरेन्द्रनाथ एम० ए०।

———:::———

संकीर्णता का दोष ग़लत है

स्वामी दयानन्दजी पर संकीर्णता का दोष भ्रमात्मक और ग़लत है। मैं उन लोगों में से हूँ, जो आर्य्य समाज को आदरणीय और पूजनीय दृष्टि से देखते हैं। दक्षिण के बहुत से मेरे भाई मेरे इस विचार से सहमत हैं।

—श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर।

———:::———

स्वामी जी की आवाज़

स्वामी दयानन्द सरस्वती इस एक नाम से कितने विचार, कितने उद्धार और कितनी सफलताओं का बोध होता है। आज जब कि संसार पुनर्जीवन की इच्छा से विह्वल हो रहा है, जब कि युद्ध की आपत्तियों और क्रान्ति की वेदनाओं से मनुष्यों के हृदय में निराशा छाई हुई है, वह आवाज केवल धर्म्म की और सत्य की है, जो हृदयों में आशा का संचार कर देती है। यही आवाज थी जो स्वामी दयानन्द जी ने उठायी, उस समय जब कि एक ओर लोगों में नास्तिकता बढ़ती जाती थी और दूसरी ओर विज्ञान जगत्-विधाता परम ऐश्वर्य्यवान् परमात्मा के अस्तित्व से मुनकिर था।

—प्रिंसिपल थडानी एम० ए०।

——::*::——

महान् ऋषि दयानन्द

स्वामी दयानन्द निस्सन्देह एक ऋषि था, सब पण्डितों ने उस पर पत्थर फेंके। उसने अपने में महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह आया तुम्हारे कारागार तोड़ने के लिये, तुम्हारी आत्माओं को बन्धन से छुड़ाने के लिये। वह तुम्हारे समाधि-स्थानों को खोलने आया। वह तुम्हारे राष्ट्र को पुनर्जीवन देने आया।

—श्री पालरिचार्ड (प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक)।

——::*::——

दयानन्द की महत्ता

इस बात का श्रेय केवल स्वामी दयानन्द को प्राप्त है कि, हिन्दू लोग पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा छोड़ कर, एक

अत्यन्त शुद्ध ईश्वरवाद को मानने लगे हैं। उस बड़े ऋषि ने जिसकी कि पवित्र स्मृति हम मना रहे हैं, इस बात को स्पष्ट करने की ओर—कि, परमात्मा में विश्वास ही, जीवन, स्वाधीनता और प्रेम का रहस्य है—एक बड़ा पग बढ़ाया था।

—प्रिंसिपल एस० के० रुद्र।

——::#::——

दयानन्द के कार्य

इस में सन्देह नहीं कि, महर्षि दयानन्द की दिव्य प्रेरणा से भारतवर्ष में आर्य्य समाज ने बहुत प्रशंसनीय कार्य्य किया है। हिन्दी भाषा का प्रचार, सामाजिक सुधार, शिक्षा की उन्नति, इत्यादि कुछ ऐसे कार्य हैं, जिनको मैं बहुत आदर की दृष्टि से देखता हूँ। परमात्मा से प्रार्थना है कि, आप लोगों के उद्योग से इन सब कार्यों में और भी अधिक सफलता प्राप्त हो।

—श्री माधवराव सप्रे।

——::#::——

स्वामीजी के उपकार

भारत में समय-समय पर प्रचलित हिन्दू-धर्म का संशोधन करने और हिन्दू जनता के हृदयों की त्रुटियों को दूर करने के लिये जिन-जिन व्यक्तियों ने जन्म लिया है, उन सब में से स्वामी दयानन्द भी एक हैं। राजा राममोहनराय की तरह दयानन्दजी का उद्देश्य भी लोगों को सृष्टि के आदि में आविर्भूत वेदों की ओर ले जाना था। राजा राममोहनराय की तरह स्वामी दयानन्द का काम केवल धर्म सम्बन्धी सुधार करना ही

न था, वह सामाजिक सुधार भी करना चाहते थे। स्वामी दयानन्द ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दू जाति में आवश्यकतानुसार परिवर्त्तन करने की आवश्यकता को अनुभव किया था। जिस आर्य्यसमाज की उन्होंने स्थापना की है, वह इन प्रयत्नों की प्रत्यक्ष स्मृति है, जो उन्होंने हिन्दू धर्म को उस की शान्ति-प्रिय मानसिक अवस्था से हटा कर कार्य शील और आक्रमण शील बनाने के लिये किये हैं। मैं स्वामी जी के इस उपकार के लिये—जो समय आने पर भारतवर्ष के धार्मिक आन्दोलन के इतिहास में एक मुख्य स्थान रखेगा—अपनी हार्दिक कृतज्ञता की भेंट प्रस्तुत करता हूँ।

—सर शिव स्वामी अय्यर।

—::*::—

जगद्गुरु दयानन्द

मेरी राय में स्वामी दयानन्द एक सच्चे जगद्गुरु और सुधारक थे, अर्थात् वह उन महान् पुरुषों में से थे, जिन्होंने न केवल मनुष्य-जीवन के उद्देश्य का चित्र साफ़-साफ़ देख लिया है, बल्कि जिनमें इस क़दर सामर्थ्य और प्रेम भी था कि जिस से वह इस योग्य होते हैं कि इस चित्र को बहुत से मनुष्यों को बतला और समझा सकें। ऐसे मनुष्य बहुत हैं जिन्होंने मनुष्य-जन्म के उद्देश्य की झलक देख ली है परन्तु ऐसे बहुत कम हैं जिनमें इन सब उत्तम गुणों का समावेश हो। ऐसा एक पुरुष दयानन्द था।

—मिस्टर फौक्स पिट् जनरल सेक्रेटरी
Moral Education League,
London.

—::*::—

आर्य समाज सर्वोत्कृष्ट है

पंजाब में जितने समाज हैं, उन सब में आर्य समाज सर्वोत्कृष्ट है। इस समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द काठियावाड़ के ब्राह्मण थे। आर्य समाज का सामाजिक प्रोग्राम स्वतन्त्र और लोकप्रिय है। यह बाल-विवाह का विरोधी, विधवा-विवाह का सहायक और स्त्री-शिक्षा का प्रचारक है। इसके अनाथालय, स्कूल, चिकित्सालय और अन्य लाभदायक संस्थाएँ बहुत उत्तम हैं। इसी लिए उस पर यह दोषारोपण किया जाता रहा है कि यह सामाजिक रूप से अपने सदस्यों की चेष्टाओं को पूरी सहायता देता रहा है। परन्तु आर्य समाज कोई राजनैतिक सभा या संसारी नहीं, किन्तु एक पूर्ण धार्मिक समाजिक है।

—सर एडवर्ड डगलस मेक्लेमन

भूतपूर्व गवर्नर पंजाब।

—::*::—

दो बड़े सुधारक

आर्यावर्त्त में उन्नीसवीं शताब्दी के सब से बड़े दो हिन्दू-सुधारकों में से राजा राममोहनराय के साथ स्वामी दयानन्द भी एक हैं। इन दोनों ने अपनी जाति में नव जीवन सञ्चार कर दिया। दोनों का जन्म कट्टर और पुराने विचार के माता, पिता के घर में हुआ था। दोनों इन्हीं विचारों में पले। दोनों पुराने साहित्य के पण्डित थे और दोनों का जीवन आध्यात्मिक था। बुद्धि और युक्ति में अद्वितीय, आचरण में महान् दोनों मानसिक प्रबलता के प्रभु थे, उनके सम्मुख केवल एक आदर्श, अर्थात् ईश्वराज्ञा का पालन करना था।

—श्री सी० वाई० चिन्तामणि।

—::*::—

प्रथम सुधारक

एक सनातन धर्मी की हैसियत से मैं स्वामी दयानन्द को वर्त्तमान भारत का सर्व प्रथम सुधारक समझता हूँ। स्वामी जी महाराज ने मरणोन्मुख हिन्दू जाति को उठाया और उसका प्राचीन आदर्श बतला कर सत्पथ में प्रवृत्त किया, इसके लिये हमें स्वामीजी का आभारी होना चाहिये।

—राजा धरखण्डी महेश प्रतापनारायणसिंह
शिवगढ़-राज्य।

—::※::—

सर्वश्रेष्ठ महा पुरुष

महर्षि दयानन्द ने भारतवर्ष और संसार मात्र की जो सेवा की है, उसको मैं भली भाँति समझता हूँ। वह भारतवर्ष के सर्वोत्तम महा पुरुषों में से थे और यह उचित ही है कि हम लोग यदा कदा अपना हार्दिक धन्यवाद लेखों के रूप में भेट करते रहा करें। यदि मुझ से पूछा जाय तो मैं कहूँगा कि, स्वामीजी ने मातृभूमि की सब से बड़ी सेवा यह की है कि, इस में जातीय शिक्षा का विचार पैदा कर दिया है। जातीय शिक्षा क्या है? यह कि हमारी शिक्षा-पद्धति हमारी जातीय आवश्यकताओं के अनुसार हो और उसमें हर एक विद्यार्थी को उसके धर्मानुसार धार्मिक शिक्षा दी जावे।

—श्री जी० एस० अरण्डेल प्रिंसिपल।

—::※::—

प्राचीनता का पुनर्जीवन

यह अत्यन्त कठिन है कि स्वामी दयानन्द के समान एक महान् आचार्य के विषय में संक्षेप से लिखा जा सके, विशेष कर ऐसी दशा में जब कि लेखक को उनसे उन के सांसारिक जीवन काल में ही परिचित होने का तथा उनके प्रवृत्त किए विस्तृत आन्दोलन की उन्नति के लगातार देखने का सौभाग्य-जो कि बहुत ही कम लोगों को है—भी प्राप्त हो। ऋषि दयानन्द ने 'प्राचीनता' को पुनर्जीवन करने का दावा किया था, किसी नवीन मत को स्थापित करने का नहीं, और मैं दृढ़ निश्चय के साथ अनुभव करता हूँ कि उन्हें यह कभी स्वीकार न होता यदि आर्यसमाज को किन्हीं ऐसे नामों से पुकारा जाता जो बहुधा नये विचारों या नवीन विचार विकासों को दिये जाया करते हैं। इस लिये वह कार्य जो ऋषि दयानन्द ने अपने लिये चुना अत्यन्त महान् था और उन्हों ने उसे बड़ी उत्तमता से पूरा किया। उन्हों ने वेदों को देव मन्दिरों के छिपे हुये कोनों से निकाल कर मनुष्य मात्र की पूजा के लिये रख दिया और उन सारी सङ्कुचित सीमाओं को जो वेदों के अध्ययन को कुछ मनुष्यों के लिए रोकती थीं तोड़ दिया। एक महान् योगी होने के कारण वे पुरानी प्रथा को उस के असली मतलब को नष्ट किए बिना तोड़ने में समर्थ हो सके। उन्हों ने हिन्दू धर्म के प्राचीन वृक्ष को योग्यता के साथ क़लम करके तथा उसकी खाद को बदल के उसे अधिक फलदायक बनाया। मैं अपनी भक्ति पुष्पाञ्जलि उस महान् दार्शनिक, महान् संन्यासी और पूजनीय आचार्य के चरणों में रखता हूँ।

—आनरेबिल जी० यस० खापर्डे।

लूथर और दयानन्द

दिवाली का दिन 'सम्मिलन-दिन' है, इस दिन भाई और बहिनें भिन्न भिन्न स्थानों से आते हैं और फिर एक दूसरे से एक ही परिवार के मेम्बर होने की हैसियत से मिलते हैं, इस दिन दिवङ्गत आत्माओं का पुनर्मिलन होता है और ऋषि दयानन्द इस दिन प्रति वर्ष राष्ट्रिय परिवार में लौट आता है; वह इस समय पर हमारे लिये क्या सन्देश लाता है। स्वामी दयानन्द की जीवनी में मैं :—

ईश्वर की शक्ति लीला

का खेल देखता हूँ। इस एक मनुष्य में कितनी शक्ति थी! वह दूर दूर तक भ्रमण करता है; वह ब्राह्म समाज के पूज्य आचार्य सर केशवचन्द्र सेन से मिलता है; वह अपने सिद्धान्तों का बम्बई से पूना तक, लाहौर से कलकत्ते तक प्रचार करता है और हजारों उसे सुनने आते हैं। वह लिहाज करने वाला मनुष्य नहीं; वह कर्ण-कटु सचाइयों को प्रकट करता है। वह जाति बन्धन, मूर्तिपूजा सर्व साधारण के हिन्दूधर्म के अन्य सिद्धान्तों का खण्डन करता है! क्यों वे हजारों की संख्या में इस उपदेश को सुनते हैं? उसके अन्दर आत्मिक शक्ति है जो हठात् ध्यान को आकर्षित करही लेती है। वह प्रामाणिकता के साथ बोलता है और वे सुनते हैं, जब कि वह खड़ा होकर उन के रीति रिवाज, धर्म और आचरण का खण्डन करता है। वह निर्भीक है, और निर्भयता के साथ राजाओं और जनता को ताड़ना देता है। दयानन्द मनुष्यों के बीच एक मनुष्य था। उसकी—

'लूथर'

के साथ तुलना की जाती है। अँगरेज़ी लेखक बहुधा इसे 'अर्वाचीन भारत का लूथर' विशेषण देते हैं। लूथर महान् था, परन्तु दयानन्द अधिक महान् था! तपस्या और ब्रह्मचर्य के लिए वह आत्मसमर्पण लूथर में कहाँ पाया जा सकता है, जिससे अर्वाचीन भारत के इस ब्रह्मचारी का जीवन उज्ज्वलित हो रहा है! लूथर ने एक परिव्राजिका से विवाह किया परन्तु दयानन्द ने अपना सारा जीवन आर्यावर्त्त की सेवा के लिए समर्पण कर दिया! लूथर के पास राजाओं से मेल जोल कराने वाले सलाहकार थे, पर दयानन्द कहीं अधिक असांसारिक पुरुष था कि वह राजाओं और ताक़त रखने वाले आदमियों की पर्वा करता! लूथर का अभिमान एक सांसारिक मनुष्य के लायक़ था, ईश्वर के भेजे दूत के योग्य नहीं। दयानन्द एक ऋषि था; लूथर एक सुधारक था। दोनों विद्वान् थे परन्तु मुझे प्रतीत होता है कि दयानन्द की विद्वता उच्च श्रेणी की थी। वह सचमुच विद्यासागर था वह संस्कृत विद्या का

एक चलता फिरता विश्वकोष

(A Moving Encyclopedia)

था। मैं अर्वाचीन भारत में किसी को नहीं जानता जिसे स्वामीजी के समान आर्य साहित्य का गम्भीर ज्ञान हो और वैसा तार्किक हो जैसा कि स्वामी था।

मैं ऋषि दयानन्द को आचार्य समझता हूँ। शंकर रामानुज और माधव आचार्य थे—वे मध्यकालीन भारत के आचार्य थे दयानन्द अर्वाचीन भारत का आचार्य था। आचार्य कौन है? वह मनुष्य जो विचार और आचार दोनों में एक साथ महान् है।

विचार सोचने की शक्ति और आचार आचरण की शक्ति है। पश्चिम में वहुत से विचारक हुये हैं, जिन में सोचने की शक्ति थी। परन्तु उनमें से कितनों की सदाचार में स्वामी दयानन्द से तुलना हो सकती है। सोपनहार एक शक्तिशाली विचारक था वह उपनिषदों का भक्त था। परन्तु जिन्होंने उसकी जीवनी पढ़ी है उन्होंने उस के क्रोध, अभिमान और अपने नौकरों से तीव्र झगड़े बखेड़ों की भी वात पढ़ी है और वे जानते हैं कि उसने अपना जीवन उपनिषदों की शिक्षा के अनुसार नहीं विताया—उसका 'आचार' उस के 'विचार' के अनुकूल न था; इसलिये इस जर्मन विचारक को हम आचार्य नहीं कह सकते। स्वामी दयानन्द केवल एक वड़ा विचारक, प्रभावशाली वक्ता, और प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् ही न था प्रत्युत आत्मिक साधनाओं से सम्पन्न और अन्तःप्रकाश की गहरी दृष्टि से युक्त मनुष्य था। उसे उसके गुरु मथुरा के प्रज्ञाचक्षु संन्यासी ने आदेश किया कि 'मैं तुझ से यही भिक्षा चाहता हूँ कि तू संसार के अविद्यान्धकार को दूर कर प्रकाश फैला।

उसने स्थान स्थान पर भ्रमण किया और प्रकाश फैलाया उसके सामने भी स्वतन्त्र भारत का दृश्य था। उसने देखा कि:—

वास्तविक भारत

अज्ञान, अन्धविश्वास और कठोर रीति रिवाज के बन्धन में जकड़ा हुआ है। वह भारत को इन शृङ्खलाओं से मुक्त करना चाहता था। उसका वास्तविक संदेश मेरी समझ में दो प्रकार का है—(१) भारत को अपना स्वरूप समझ लेना चाहिये और (२) अपने रूप में आने के लिये उसे पुरुषार्थ करना चाहिये। आज कल के युवक वेकन, वनियन, मिल और मिल्टन के उद्धरण देते हैं, उनमें से कितने ऐसे हैं जो शङ्कर कपिल, व्यास

और जैमिनि को जानते हैं। वे अरिस्टाटल के न्याय सिद्धान्तों का अध्ययन करते हैं परन्तु उन में कितनों को उन न्याय के सिद्धान्तों का पता है, जिनका विकास आर्यावर्त्त में हिन्दू और बौद्ध तार्किकों ने किया था। कितने लोग जो हेगल और स्पेंसर का अध्ययन करते हैं, हिन्दू अध्यात्म शास्त्र को जानते हैं, कितने लोग जो 'अज्ञात' (Unconscious) सम्बन्धी पाश्चात्य मनोविज्ञान पढ़ते हैं उस विषय पर प्रकाश डालने के लिये पतञ्जलि के योगदर्शन को पढ़ने की पर्वा करते हैं। कितने लोग जो आज कल राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के विचार में लगे हुए हैं यह जानने का यत्न करते हैं कि आर्यकालीन भारत में राज्यव्यस्था सम्बन्धी विचार तथा संगठन किस प्रकार के थे।

प्रो० मैक्डालन

ने, जो कि आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी में संस्कृत के मोडर्न प्रोफेसर हैं, कुछ समय हुआ बम्बई की रायल एशियाटिक सोसाइटी का स्वर्णपदक ग्रहण करते हुये कहा था कि 'आंगल भाषा में ऋग्वेद का अनुवाद करने के लिये अब ठीक समय आगया है' परन्तु हम लोग भारतीय विज्ञान, भारतीय सभ्यता, भारतीय ज्ञान सिद्धान्त और भारतीय साहित्य तथा कला के अध्ययन और समर्थन के लिये क्या कर रहे हैं।

यदि स्वामी दयानन्द ने इस बात पर जोर दिया कि भारतीयों को संस्कृत और हिन्दी पढ़नी चाहिये तो इसका कारण यह था कि उसके अन्दर इस बात की बड़ी उत्सुकता थी कि भारत माता अपने रूप को अपने प्रत्येक पुत्र और पुत्री के हृदय में देख सके। उसने देखा कि भारतवर्ष भयानक रूप से पश्चिम के सम्पर्क में आगया है। वह इस बात के लिये उत्सुक था कि भारत अपने धर्म, आत्मा और जीवन के गम्भीर संकलन (Synthesis of life)

का परित्याग न करे। भारत को दूसरे राष्ट्रों को अपना सन्देश सुनाने के लिये अपने रूप में होना चाहिये। ऐसा भारत का दृश्य इस प्रभावशाली स्वामी के हृदय पर उदित हुआ था। भारत को अपने रूप में होना चाहिये, हमारे राष्ट्रिय आन्दोलन का इस प्रकार का तात्पर्य और ऐसा सन्देश है।

यदि भारत आज अपने रूप में आना चाहता है तो एक मार्ग है जिस पर उसकी सन्तानों को अवश्य चलना होगा और वह मार्ग तपस्या का है। मैं अनुभव करता हूँ कि हमें अपने राष्ट्रिय जीवन को बचाने के लिए प्रत्येक वस्तु से अधिक 'तपस्या' की आवश्यकता है। विना इन्द्रिय निग्रह और विना आत्मसमर्पण के किस राष्ट्र की उन्नति हुई है? उन्नति करने की शक्ति तपस्या की शक्ति है।

जापानी पुस्तकों में

एक लड़की की कहानी आती है जो अपने देश की सेवा के लिये अत्यन्त उत्सुक थी जब कि जापान की रूस से लड़ाई हो रही थी। वह ग़रीब है, परन्तु देश सेवा की कामना से प्रज्ज्वलित हो वह अपने मन में कहती है कि 'मैं क्या दे सकती हूँ? उस के मन में उत्तर आता है 'अपने को समर्पित करो' वह अपने को जापान के लिये दे देती है, और देश-सेवा में मर जाती है। उसके देश वासियों का विश्वास है कि उसकी मृत्यु के समय स्वर्गीय जगत् से आवाज़ हुई कि तू धन्य है, तूने हमें देवताओं के साथ सहभोज के योग्य बनाया है'। स्वामी दयानन्द ने तपस्या की, वह, और उसके समान अन्य तपस्या' करने वाले मनुष्य हैं जो भारत के देवताओं के साथ सहभोज के योग्य बनाते हैं। 'मित्रो, हम लोग बहुत दिन से भोगविलास में पड़े हुए हैं, हमने जीवन की गम्भीर आवश्यकताओं को

भुला दिया है। हम लोगों ने दौलत और ताक़त की चाह में भारत को कुचल डाला है। हमें अवश्य तपस्या करनी चाहिये। तब हम भारत की सेवा करने के अधिकारी होंगे और भारत की ओर टकटकी लगाये हुए जगत् को भारत का सन्देश सुना सकेंगे।

——::०::——

अधमोद्धारक ऋषि दयानन्द

वेदों के अनुकूल ईश्वर सब का पिता है, इस लिये सब मनुष्य उसके पुत्र और आपस में भाई हैं। ईश्वर की दृष्टि में सब समान हैं और प्रत्येक मनुष्य को अपनी शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों के आधार पर सब प्रकार की उन्नति करने का पूर्ण अधिकार है। मनुष्यों का धर्म है कि एक दूसरे की उन्नति में सहायक होवें और योग देवें। किसी एक मनुष्य की उन्नति में बाधा डालना पाप है फिर लाखों करोड़ों मनुष्यों की उन्नति में झूठे जन्म-भेद के कारण रुकावट डालना कितना घोर पाप और अत्याचार है।

वैदिक समय में सब के लिए उन्नति का मार्ग खुला था। नीच कुल वा जाति में जन्म लेना कोई बाधा न थी। वसिष्ठ पाराशर, व्यास, मातंग आदि कितने ही नीच जन्म वाले मनुष्य ऋषि तक के उच्च पद को पहुँच गये।

परन्तु महाभारत के पश्चात् जब वैदिक धर्म का ह्रास हुआ तो ब्राह्मणादि द्विज लोग केवल जन्म से अपने आपको ऊँचा और शूद्रों को नीचा समझने लगे। वैदिक वर्ण व्यवस्था के स्थान में झूठा जाति-भेद फैल गया और वही वैदिक धर्म का मुख्य अंग समझा जाने लगा। जो शूद्र कुल में उत्पन्न हों उनको विद्या पढ़ना, धार्मिक कृत्य करना व अच्छे व्यवसाय

करके धन कमाना तक वर्जित हो गया। भारतवर्ष की आधी से अधिक जन संख्या इस प्रकार नीच मानी जाकर विद्या, धर्म और धनादि के उपार्जन से वंचित हो गई, शूद्रों पर अनेक प्रकार से अत्याचार होने लगा। महात्मा बुद्ध का हृदय जो क्षत्रिय वंश में जन्मे थे इन दीन शूद्रों की दशा से द्रवीभूत हो गया उन्होंने इन तिरस्कृत शूद्रों के उद्धार का बीड़ा उठाया और बड़े बल पूर्वक यह उपदेश किया कि केवल जन्म से कोई ब्राह्मण या उच्च नहीं हो सकता और न केवल जन्म के कारण कोई नीच हो सकता है, किन्तु अपने गुण-कर्मानुसार सब कोई अच्छे वा बुरे होते हैं। परन्तु महात्मा बुद्ध ने यह उपदेश वेदों के आधार पर नहीं किन्तु केवल युक्ति व न्याय के आधार पर किया था। परिणाम यह हुआ कि वैदिक धर्माभिमानियों ने उसको स्वीकार नहीं किया। बौद्ध धर्म कुछ समय के लिये धीरे धीरे सारे देश में फैल गया और उसके साथ यह झूँठा जाति-भेद भी लुप्त सा हो गया और शूद्रों पर अत्याचार बन्द हो गया, परन्तु उसकी जड़ बनी रही और जब इस देश से बौद्ध धर्म का लोप आरम्भ होकर यहाँ फिर वैदिकाभिमानी हिन्दू धर्म फैलने लगा तो यह जाति-भेद रूपी विष वृक्ष दोबारा हरा भरा होकर इस प्रकार बढ़ता गया और इसकी शाखायें इस प्रकार फूटी कि उसने पहिले से भी अधिक भयंकर रूप धारण कर लिया—अनेक नवीन जाति उपजातियें बन गई, बहुत से व्यवसाय करने वाले वास्तविक वैश्य भी शूद्रों के समान नीच गिने जाने लगे और इन नीच कहलाने वाली जातियों पर फिर उसी प्रकार अन्याय और अत्याचार होने लगा।

इसके पीछे गुरु नानक, कबीर, दादू, राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन आदि अनेक साधु महात्माओं ने भारतवर्ष

की इन निरपराध सन्तानों के उद्धार की चेष्टा की। उन सब के उपदेशों से इन दीनों की दशा का बहुत कुछ सुधार अवश्य हुआ। परन्तु इन सब महात्माओं ने भारतवर्ष की इन निरपराध सन्तानों के उद्धार की चेष्टा की। उन सब के उपदेशों से इन दीनों की दशा का बहुत कुछ सुधार अवश्य हुआ परन्तु इन सब महात्माओं के उपदेश भी केवल न्याय और युक्ति के आधार पर थे, वेदों के आश्रय पर नहीं थे। इसलिये उनके अनुयायी अलग पन्थ रूप समझे जाने लगे। साधारण हिन्दुओं के विचारों पर उनका पूरा प्रभाव नहीं पड़ सका। इन महात्माओं ने जाति भेद रूपी वृक्ष पर बल पूर्वक प्रहार किये पर वे प्रहार उसकी जड़ को न काट सके।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों का पूर्ण और सत्य ज्ञान प्राप्त करके यह सिद्ध कर दिया कि यह जाति बन्धन केवल अन्याय पूर्ण और अयुक्त ही नहीं है किन्तु वेदों के भी सर्वथा प्रतिकूल है। उन्होंने सारे देश में घूम कर काशी, पूना जैसे विद्या पीठों में व्याख्यान देकर और शास्त्रार्थ करके इस कल्याण-मय उपदेश को फैलाया। उनके जीवन समय में अथवा उसके पीछे अब तक किसी को वेदों से जन्म परक जाति-भेद को सिद्ध करने का साहस नहीं हुआ। स्वामी दयानन्द ने इस विष-वृक्ष की जड़ पर कुठार का आघात किया। जैसे जैसे स्वामी जी का उपदेश फैलेगा वैदिक धर्माभिमानी लोग इस अवैदिक अन्याय पूर्ण और अयुक्त जाति बन्धन को छोड़ते चले जायँगे और अपने उन करोड़ों निरपराध भाइयों को जिन पर बहुत काल से सामाजिक अत्याचार होता रहा है गले लगावेंगे।

—हिज़ हाइनेस महाराजा साहू छत्रपति कोल्हापुर।

——::o::——

नये युग का विधाता

भारत इस समय जिस मार्ग का अवलम्बन कर रहा है, वह, मध्य एवं पौराणिक काल से कम कटीला नहीं है। जिस हिन्दू-धर्म को सातसौ साल तक मुसलमानों की तलवार कमजोर न कर सकी; जिस हिन्दू-धर्म को बौद्धकालीन नास्तिकों के आक्रमण छिन्न-भिन्न न कर सके; जिस हिन्दू-धर्म को ४-५ सौ साल की ईसाइयत न मिटा सकी; वही हिन्दू-धर्म पश्चिम के नैतिक, आर्थिक और सामाजिक कांटों से चलनी होकर स्वयं नष्ट होने जा रहा है। तेतीस करोड़ देवताओं, पचासों पुराणों, सैकड़ों उपनिषदों वेदान्त-पुस्तकों, दर्शनों और वेदों तक के होते हुए भी हिन्दू-जाति में हिन्दू-धर्म को नीचे की ओर जाने से कोई बचाने वाला देख नहीं पड़ता।

भारत में इस समय धार्मिक विचारों के सम्बन्ध में दो दल देखे जाते हैं—एक वह दल है कि जो कई सौ सालों से विचार परिवर्त्तन करता हुआ और इधर उधर से भिन्न भिन्न प्रकार के संस्कार लेता हुआ प्राचीनता के नाम से नवीन सम्प्रदायों को चलाकर भी टस से मस नहीं होना चाहता। उसके मत में धर्म की जो इमारत पिछले पुरखों-हमारे बाप दादों ने बना दीं है, उसमें किसी को भी नाखून लगाने का अधिकार नहीं है। वह इमारत यदि किसी बाहिरी भूचाल के धक्के से गिरती हो तो, गिरने दो; उसे बचाने के लिये चाहे कोई भी उपाय करो, पर उसमें रहने वालों एवं उसकी रखवाली करने वालों की प्रसन्नता के विरुद्ध तुम उसमें तनिक भी फेर फार नहीं कर सकते। इस मत के अनुसार बात, जीवन, प्रथा, रहन, सहन, खान, पान, चाल, ढाल आदि जो कुछ भी होता चला आया है, वही धर्म, वही कर्म, वही आस्तिकता और वही वेदाज्ञा है।

दूसरा दल वह है जो, पूर्वोक्त दल के नेताओं से तंग आकर धर्मवाद के किसी भी अंश को अपनी जीवन दशा में रहने देना पसन्द नहीं करता। वह दल सोता, जागता, उठता, बैठता, हज़ारों मील सुदूरवर्त्ती—सात समुद्र पार-के यूरोपीय जीवन के सपने देख रहा है। इस दल का ख्याल है कि धर्म ही ने भारत को गारत किया है; इसी ने भारतीय हिन्दुओं को अनेकों जातियों, मतों और सम्प्रदायों में विभक्त करके बल वीर्य एवं ऐक्यता का नाश किया है; और इसी ने भारतीय जीवन की नस नस को वेदान्त, सम्प्रदाय एवं अन्यान्य अपनी रस्सियों से जकड़ कर सदा के लिये गुलाम और निकम्मा बना दिया है।

इसके मतानुसार धर्म की दुहाई बहुत हो चुकी इसके धर्माध्यक्षों ने बहुतेरों को लूट खसूट कर अपने आराम के सामान पैदा कर लिये; अतः इसे अब रखिये ताक में। दुनिया की दौड़ में भारत बहुत पिछड़ गया है—भारत का नैतिक और आर्थिक जीवन समाप्त सा होता जा रहा है।

यह ख़याल अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए उस दल का है—जिसे आधुनिक धर्माधिकारियों की मूर्खता, दुष्कर्म और स्वार्थान्धता के कारण धर्मवाद से ही सर्वथा अश्रद्धा हो गई है; और जो यूरोपीय आर्थिक उन्नति की चकाचौन्ध में पड़ कर अपनी आँखों से यूरोप के सिवाय और किसी दिशा की ओर देखने का अभ्यास ही नहीं रखता।

इन दोनों दलों में से पहला भारतीय उन्नति के बहुत से अंशों में बाधक है और दूसरा भारत को भारत ही नहीं रहने देना चाहता। दोनों दशाओं में भारत की भलाई नहीं, दोनों दल जिस मार्ग का अवलम्बन कर रहे हैं वह कण्टकाकीर्ण है।

दोनों ही सीमा से बाहर जा रहे हैं। पहला जहाँ मरम्मत करना भी पाप समझता है; दूसरा इस मकान को ही उड़ा देना माँगता है—दोनों हालतों में मकान की सत्ता नहीं रहती। अन्तरकेवल इतना ही है कि—पहले के मतानुसार धीरे धीरे नष्ट होगा और दूसरे के विचारानुसार एक दम नीचे जा रहता है।

आवश्यकता इस बात की थी और है कि भारत के इस प्राचीन मन्दिर की अच्छी तरह देख भाल करके मरम्मत की जाय। इसमें कुछ भी इधर उधर से आकर चिपक या चिपकाया गया है, उसे सर्वथा दूर करके विशुद्ध कर दिया जाय।

भारत की आर्थिक उन्नति के लिये चाहे जितने भी उपायों को काम में लाया जाय; मगर भारत का प्राचीन धर्मवाद ऊँचे टीले पर खड़े होकर ऊँची घोषणा करता हुआ कहने को तैयार है कि मैं आर्थिक या नैतिक उन्नति में कभी बाधक नहीं हुआ। यह सच है कि वर्त्तमान धर्मवाद भारत को एक राष्ट्र बनाने में बहुत कुछ काँटा बन रहा है; पर यह भी सच है कि यह धर्मवाद प्राचीन धर्मवाद से कोसों दूर है और प्राचीन वैदिक धर्म इन उन्नतियों में कभी भी बाधक नहीं हुआ; बल्कि वह सदा इनका सहायक रहा है। हाँ, यह बात निर्विवाद मानी जा सकती है कि वर्त्तमान धर्मवाद को क़ायम रखते हुए भारत को सर्वाङ्ग उन्नति करने के लिये सारी शक्तियाँ निष्फल होंगी, जब तक कि स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों को स्वीकार न किया जायगा, जिसने ऊँच, नीच, भेदभाव एवं साम्प्रदायिक झगड़ों को भारत से सदा के लिये निर्वासित करके जिन मार्गों पर चलने का भारतियों को उपदेश दिया है; वे सर्वथा निर्दोष, निष्कण्टक और सरल होते हुए भी भारत की प्राचीनता को क़ायम रखते हुए उन्नति की ओर जाने वाले हैं।

उसके मत से भारत का सुधार न तो प्रथम दल को आश्रय देने से हो सकता है और न दूसरे दल के मतानुसार काम करने से। वह अनैक्यता का प्रचारक नहीं बल्कि एकता का सूत्रधार है। वह अपने प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थप्रकाश को समाप्त करते हुए लिखता है "जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं पसन्द नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फँसा के परस्पर शत्रु बना दिया है। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सबको ऐक्य मत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सब से सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्व शक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र—भूगोल में—प्रवृत्त हो जावे, जिस से सब लोग सहज में धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नति और आनन्दित होते रहें।" इसी लिये हम उसे भारत का धर्म-गुरु और आदर्श संस्कारक मानते हैं।

सच तो यह है कि भारत में इस समय जितनी भी जागृति एवं कार्यपरता देख पड़ती है, उस में सब से बड़ा हाथ निर्भीक दयानन्द का है।

उसका मत स्पष्ट है और वह यह कि गिरते या चित्त होते समय पहलवान के शरीर पर लगी हुई मिट्टी माथे के तिलक की भाँति सदा लगी ही नहीं रहनी चाहिये। ग़ुलाम ग़ुलामी के समय पर अपने कान में ग़ुलामी की मुन्दरी पहनता है; पर स्वतन्त्र हो जाने पर उसे उतार कर फेंक ही देना उचित है। इसी तरह मध्यकाल में भारत और शुद्ध धर्मवाद पर जो कुछ भी कलङ्क आ लगे हैं अब उसे रखने की आवश्यकता नहीं रही उसे सर्वथा धो डालना चाहिये—और उस कलङ्क के कारण ही उस धर्म को न छोड़ बैठना चाहिए।

वर्त्तमान आर्यसमाज चाहे जिधर को जाये, चाहे वह इधर उधर से घूम कर फिर उसी मध्य काल के पौराणिक गढ़े में गिरे जिस से निकालने के लिये ही यदि दयानन्द का जीवन प्रयत्न था—;किन्तु यह सच है, यह वास्तविकता और असलियत है कि स्वामी के विचार ज्यों के त्यों भारत के आस्मान पर विचरण करते रहेंगे, और उनकी आत्मा को तब तक चैन न होगा जब तक कि वैदिक धर्म का पुनरुद्धार न हो।

—पूज्य स्वामी अनुभवानन्द जी शान्त।

——::c::——

सदा सत्य की विजय होती है

मानसिक और नैतिक हलचल तथा परिवर्त्तन के युग में, जिस में से कि भारतवर्ष निकल रहा है, शिक्षित जन समुदाय मात्रमें व्यापक सन्देहवाद के फैलने का डर सदा बना रहता है। मनुष्य पुरानी विद्याओं और विचारों को सन्देह की दृष्टि से देखने लगते हैं; पुराने विचार एक किनारे फेंक दिये जाते हैं क्योंकि मनुष्य 'समय' की लहर से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते, परन्तु वे फिर भी नये विचारों को स्वीकार नहीं करते क्योंकि वे, विचित्र और अपरिचित से मालूम पड़ते हैं। यह 'युग' ऐसे गुरु को चाहता है कि जो 'पुराने' की नयी व्याख्या कर सके तथा 'नये' को 'प्राचीन' का पूर्ण करने वाला बतला सके, और इस प्रकार क्रियात्मक जीवन तथा आगे की मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिये एक निश्चित आधार बना सके।

विशेष कर इस कार्य के लिये स्वामी दयानन्द ने अपने को प्रवृत्त किया तथा अपने उदाहरण द्वारा दूसरों को भी इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये प्रेरित किया। आर्यसमाज ने;

जिस को ऋषि ने स्थापित किया था, सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति में बहुत बड़ा कार्य किया है, परन्तु मैं विशेष कर आर्य समाज के मानसिक और आत्मिक कार्यों के विषय में संक्षेप से कहना चाहता हूँ क्योंकि मेरा विश्वास है कि स्थायी कार्य की बुनियाद मानसिक और आत्मिक आदर्श को सामने रख कर ही डाली जा सकती है।

भारतीय विचार और धर्म के आदि स्रोत वेदों में ऋषि दयानन्द ने, सारे आत्मिक उच्च सिद्धान्तों का बीज और केन्द्र पाया। एक ईश्वर में विश्वास, जो कि सर्वज्ञ और न्यायकारी है, सबका आदि कारण तथा सत्ता, चैतन्य और आनन्द इन तीनों गुणों का आश्रय, 'सच्चिदानन्द' है यह ईश्वर सम्बन्धी सर्वोच्च वैदिक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को सामने रखकर उन्होंने हिन्दुओं के पिछले ऐतिहासिक सम्प्रदायों की, वर्त्तमान हिन्दूधर्म की, और अन्य भारतीयमतों की आलोचनात्मक परीक्षा की। जिसे उन्हों ने सचाई समझा उसे स्वतन्त्रता पूर्वक स्वीकार किया तथा जिसे निकृष्ट और मिथ्या समझा उसे निर्भयता पूर्वक सबके सामने रख दिया।

उन्हों ने केवल पीछे ही नहीं देखा परन्तु आगे भी दृष्टि फैलाई। उन्हों ने सत्य और सदाचार की उन्नति में एक विश्व व्यापक नियम देखा और आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति की लहर को अच्छी तरह समझ कर उसका स्वागत किया। उन्हों ने उसे वेदों के विरुद्ध ही नहीं अपितु 'वेद' के सच्चे अर्थों के अनुकूल बतलाया।

यह कदाचित् सारे संसार को जीतने वाली 'सचाई' में एक मात्र दृढ़ विश्वास है जिसे ऋषि दयानन्द के शब्दों में मैंने अपने लेख का शीर्षक रक्खा है और यह सब से बड़ा खजाना है जिसे नई पीढ़ी को ऋषि दयानन्द ने दिया।

वे सत्यार्थ प्रकाश भूमिका पृ० ३ पर लिखते हैं कि-सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयान ।' अर्थात् सर्वदा सत्य की जय और असत्य की पराजय और सत्य से ही विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है; इस दृढ निश्चय के अवलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते।

इस आदर्श को स्पष्टता के साथ देखने की महान् दर्शनशक्ति होने के कारण हम उन्हें 'द्रष्टा' (Seer) या ऋषि कह सकते हैं।

यह निस्सन्देह हमारा काम है कि हम मानसिक और आत्मिक आवश्यकताओं तथा आधुनिक समस्याओं को उसी निर्भयता और सच्चे भावों से देखें और सचाई को स्वीकार करने के लिये, चाहे वह किसी जगह से प्राप्त हो, यह समझ कर सदा उद्यत रहें कि अन्ततः सब सचाइयों का स्रोत एक है और वह ईश्वरीय है। इस प्रकार हम अपने दैनिक जीवन को भी इसी आधार पर बनायें।

प्रत्येक मनुष्य को अपने सामने यह प्रश्न उठाना चाहिये कि कहाँतक मैं परीक्षात्मक दृष्टि से उस सचाई का शोध कर रहा हूँ जो मुझे भूतकाल से प्राप्त हुई है, और जो सच्चाई मेरे सामने आती है उसका कहाँ तक बिना किसी पक्षपात के स्वागत करता हूँ। कहांतक मैं अपने विचार जीवन, और 'कर्म-जीवन' में ईश्वरीय सत्ता के सच्चे आत्मविश्वास से प्रभावित हूँ?

मैं एक ईसाई मिश्नरी की हैसियत से लिखता हुआ उन आक्षेपों तथा गलतियों पर जिस पर कि मुझे निश्चय है कि वे निर्भर हैं दुख प्रकाशित किये बिना नहीं रह सकता, और मैं स्वीकार करता हूँ कि बहुत सी बातों में जो साधारण नहीं, मैं अपने आर्यसामाजिक मित्रों से मत-भेद रक्खे बिना नहीं रह

सकता। परन्तु एक ईश्वर की सत्ता और उस की सचाई के मूल भूत सिद्धान्तों के दृढ़ विश्वाश में जिसके विषय में मैंने लिखने का यत्न किया है सच्चे आर्यसमाजी और सच्चे ईसाई एक हैं, और उन्हें सच्चाई और आत्मिक सिद्धान्त तथा मनुष्य समाजको न्याय और आचार के सच्चे सिद्धान्तों पर स्थिर करने के क्रियात्मक कार्य में एक दूसरे का सहयोग देना चाहिये।

—रेवरेण्ड टी० डी० सले प्रिंसीपल सेण्टजौन्स कालेज आगरा।

गौरवगान

छप्पय

वैदिकता-विधि-पूत—वेदिका वन्दनीय वलि।
वेद—विकच—अरविन्द मंत्र-मकरन्द मत्त-अलि॥
आर्य-भाव कमनीय रत्न के अनुपम-आकर।
विविध-अन्ध-विश्वास—तिमिर के विदित-विभाकर॥
नाना-विरोध-वारिद-पवन कदाचार-कानन-दहन।
हैं निरानन्द-तरु-वृन्द के दयानन्द-आनन्द-घन॥१॥

वैदिक—धर्म न है प्रदीप जो दीप्ति गंवावे।
तर्क-वितर्कविवाद—वायु वह जिसे बुझावे॥
मलिन—विचार—कलंक—कलंकित है न कलाधर।
प्रभाहीन कर सके जिसे उपधर्म—प्रभाकर॥
वह है दिवि-दुर्लभ—दिव्य-मणि दुरित-तिमिर है खोरहा।
उसके द्वारा भू—वलय है विपुल—विभूषित हो रहा॥२॥

पंच-भूत से अधिक भूति—युत है विभु—सत्ता।
प्रभु—प्रभाव से है प्रभावमय पत्ता पत्ता॥

है त्रिलोक में कला अलौकिक—कला दिखाती।
सकल—ज्ञान—विज्ञान—विभव है भव की थाती॥
उन पर समान संसार के मानव का अधिकार है।
महि—धर्म-नियामक-वेद का यह महनीय-विचार है॥३॥

बिना मुहम्मद औ मसीह मूसा के माने।
मनुज न होगा मुक्त मनुजता—महिमा जाने॥
उनके पथ के पथिक विपथ चल हैं यह कहते।
रंग रंग से वाद तरंगों में हैं बहते॥
पर यह वैदिक—सिद्धान्त है उच्च—हिमाचल सा अचल।
मानव पा सकता मुक्ति है बने आत्मबल से सबल॥४॥

सत्य सत्य है और सत्य सब काल रहेगा।
न्याय—सिन्धु का न्याय वारि कर न्याय बहेगा॥
वहां, जहां हैं विमल—विवेक विमलता पाते।
होगा मानव—मान एक मानवता नाते॥
है जगत—पिता सब का पिता वेद बताते हैं यही।
प्रभु प्रभु—जन प्यारे हैं जिन्हें प्रभु के प्यारे हैं वही॥५॥

हो वैदिक ए वेद तत्त्व हम को थे भूले।
मूल त्याग हम रहे फूल फल दल ले फूले॥
धूमधाम से रहे पेट के करते धन्धे।
युक्ति भार से रहे उक्ति के छिलते कन्धे॥
थे बसे देश में पर न थे देश देश को जानते।
हम मन मानी बातें रहे मना मना कर मानते॥६॥

कर कर बाल विवाह अबल बन थे बल खोते।
दुःखी थे न विधवों के विधवापन से होते॥
समझ लूट का माल लूटते थे ईसाई।
मुसलमान की मुसलमानियत थी दिखलाई॥

हम दिन दिन थे तन विन रहे तन को गिनते थे न तन।
निपतन—गति थी दूनी हुई पल पल होता था पतन ॥७॥

भूल में पड़े, भूल को समझ भूल न पाते।
देख देख कर दुखी जाति दुख देख न पाते ॥
कर्म—भूमि पर था न कर्म का वहता सोता।
धम धर्म कह धर्म—मर्म था ज्ञात न होता ॥
उस काल अलौकिक लोक नेह में अलौकिक बल दिया।
आ दयानन्द आलोक ने आलोकित भूतल किया ॥८॥

पिला उन्होंने दिया आत्म गौरव का प्याला।
बना उन्होंने दिया मान—ममता—मत वाला ॥
जी में भर जातीय—भाव कर सजग जगाया।
देश—प्रेम के महा मन्त्र से मुग्ध बनाया ॥
बतलाया ऐ ऋषि वंशधर है तुम में वह अतुल बल।
जो सकल-सफलता दान कर कर विफल-जीवन सफल ॥९॥

वह नव—युग का जनक विविध—सुविधान विधाता।
बात बात में यही बात कहता बतलाता ॥
जो है जीवन चाह सजीवन तो बन जाओ।
नाना—रुज से ग्रसित जाति को निरुज बनाओ।
वे एक—सूत्र में हैं बँधे जिन्हें बाँधते वेद हैं ॥
बे-भेद भेद समझे नहीं जो मानते विभेद हैं ॥१०॥

प्रति—दिन हिन्दू-जाति पतन-गति है अधिकाती।
नित लुटते हैं लाल छिनी ललना है जाती ॥
हैं दृग के सामने आँख की पुतली कढ़ती।
होती है ला बला बला—पुतलों की बढ़ती ॥
मन्दिर हैं मिलते धूलि में देव—मूर्ति हैं टूटती।
अपनी छाती भारत-जननि कलप कलप है कूटती ॥११॥

जाग जाग कर आज भी नहीं हिन्दू जागे।
भाग भाग कर भय भयावने भूत न भागे॥
लाल लाल आँखें निकाल है काल डराता।
है नाना—जंजाल जाल पर जाल बिछाता॥
है निर्वलता टोले नहीं निर्बल तन मन की टली।
खुल खुल आँखें खुलती नहीं, नहीं बात खलती खली॥१२॥

है अनेकता प्यार एकता नहीं लुभाती।
है अनहित संप्रीति वात हित की नहिं भाती॥
रंग रहा है विगड़ बदल हैं रंग न पाते।
है न रसा में ठौर रसातल को हैं जाते॥
हैं अंधकार में ही पड़े अंधापन जाता नहीं।
है लहू जाति का हो रहा लहू खौल पाता नहीं॥१३॥

क्या महिमा मय—वेद—में है न महत्ता।
राम नाम में क्या न रह गई अब कुछ सत्ता॥
क्या धँस गई धरातल में सुर धुनि की धारा।
आर्य—जाति को क्या न आर्य-गौरव है प्यारा॥
क्या सकल—अवैदिक—नीतियाँ वैदिकता से हैं वली।
क्या नहीं भूत-हित-भूमि है भारत-भूतल की भली॥१४॥

सोचो सँभलो मत भूलो घर देखो भालो।
सबल बनो बल करो सब—बला सिरकी टालो॥
दिखला दो है जगत-विजयिनी-विजय हमारी।
रगरग में है रुधिर उरग-गति—गर्व-प्रहारी॥
वर कर वैदिक-विरुदावली वरद्-वेद-पथ पर चलो।
सब को दो फलने फूलने और आप फूलो फलो॥१५॥

—श्री० पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय।

राजस्थान में महर्षि दयानन्द

(उनकी मृत्यु का स्वयंज्ञात वृत्तान्त)

जब महर्षि ने भारतवर्ष (आर्य्यावर्त्त) के लिये जन्म धारण किया और देश को घोर निद्रा में पड़े हुए देखा और जगाने की चेष्टा की। जगना तो दूर रहा आँख तक न खुली! निद्रा में ही नहीं, प्रत्युत शताब्दियों से बाहर के और घर के आक्रमणों से क्लोरोफ़ार्म की दशा में बेहोश पड़े हुए देख कर महर्षि ने वेद रूपी एमोनिया छिड़का, तब भारतवर्ष होश में आया और आँखें खोलीं। महर्षि ने गम्भीर शब्दों में कहा। "मत डरो, साहस करो, गोमाता की रक्षा करो, देश की सेवा करो, धर्म्म पर आरूढ़ रहो, वेदों का उपदेश सुनो, साहस और धैर्य्य धारण करो, जैसी कि वेदों में आज्ञा है। चारों वर्ण, उसी के अनुसार चलो, यही तुम्हारे लिये बीजमंत्र है, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा और "ऐसा ही करने पर थोड़े दिनों में तुम्हारे घर बार का धन्धा तुम्हारे हाथ में आ जायगा।"

महर्षि ने जब यह घोषणा की, थोड़े ही दिनों में पञ्जाब और युक्तप्रान्त की आर्यभूमि में वैदिक धर्म का झण्डा गड़ गया। इसके पश्चात् महर्षि की दृष्टि नरेश्वरों पर पड़ी और देखा कि ये मदोन्मत्त विचर रहे हैं? तब वेद रूपी अंकुश हाथ में लेकर के ललकारा कि धर्म पथ पर आ जावो! कवि ने कहा है:—

मद मदान्द हाथी भयो ज्ञान महावत कीघ।
ज्यों ज्यों चले कुपन्थ में त्यों त्यों अंकुश दीघ॥

प्रथम महर्षि ने राजाधिराज शाहपुराधीश को सदुपदेश किया और उन्होंने ग्रहण किया, उसके पश्चात् महर्षि ने उदय-पुराधीश श्री महाराणा सज्जनसिंह जी को उपदेश दिया, और

उन्होंने मनु आदि ग्रन्थ अवलोकन किये और अपना नाम आर्य्य परोपकारिणी सभा के प्रधान पद पर सुभूषित कराया। फिर श्री मरुधाधीश महाराजा श्री जसवन्तसिंहजी साहिब बहादुर को भी यह लालसा हुई कि स्वामी जी का सदुपदेश सुनें और अपने को कृतार्थ करें। दरबार से महर्षि को निमन्त्रण भेजा गया और वह स्वीकार हो गया। महाराजा ने बड़े उत्साह से स्वामीजी को जोधपुर बुलाया, बहुत ही मान किया और कई प्रतिज्ञायें ऐसी की गईं जो प्राचीन समय के राजा महाराजा महर्षियों के सामने किया करते थे। भला यह बातें नीच प्रकृति पुरुषों को कब पसन्द आ सकती थीं? अन्ततः यह नतीजा हुआ कि महर्षि को बलिदान होना पड़ा।

उसका थोड़ा वृत्तान्त स्वयं जाना हुआ यहाँ लिखता हूँ। स्वामीजी के पास एक कल्लू रसोइया रहता था, उसने दो अशरफ़ी और एक दुशाला चुराया था। उस पर स्वामीजी ने मेरे सामने उसे उसके "पाप" के लिये बहुत ताड़ना की। इसके पश्चात उसने कुछ दुरात्माओं से मिल कर न मालूम खाने के अन्दर या दुग्ध में कुछ चीज़ दी कि सबेरे उठते ही बहुत ज़ोरों के साथ स्वामीजी को ज़ुकाम की शिकायत हुई; उनको मालूम हो गया कि मुझ को कोई ज़हर दिया गया है। तब वे पानी में नमक मिला कर क़ै करने लगे। किन्तु कोई फ़ायदा न हुआ और पसली में शूल शुरू हो गया, तो मुझ को बुलाया और कहा कि "श्री दरबार को अरज़ करो कि मेरी पसली में बहुत ज़ोर का शूल चलता है, और मेरी बीमारी सुन कर बहुत से आर्य्य लोग यहाँ आयेंगे, उनको कष्ट होगा, इसलिये मेरा अजमेर जाना ठीक है"? तब मैंने श्री दरबार को व महाराज श्री प्रतापसिंहजी साहब को सूचना दी कि स्वामीजी को बहुत तकलीफ़ है, उस पर श्री दरबार और महाराजा साहब पधारे

और उनके पाँव छूकर श्री दरवार ने प्रार्थना की कि, 'महाराज आप आबू पर पधारें। क्योंकि मेरे रहने का वहाँ बँगला है, उसमें आप रहिये और मेरे सर्जन डाकृर करनैल एडम वहाँ पर हैं वे आपका इलाज करेंगे'। अन्ततः स्वामीजी को आबू भेजने का निश्चय हो गया और साथ में डाकृर सूरजमलजी व मेरा कामदार नवलदानजी अमरदानजी मुन्शी दामोदर दासजी आदि को साथ भेजा गया। जिस समय स्वामीजी को पालकी में लिटा कर प्रस्थित किया गया, श्री दरवार स्वयं पालकी को पकड़ के हम लोगों के सहित साथ साथ चले। स्वामीजी के वहुत कहने पर कि आप वापिस पधारें श्री दरवार ने उनके पाँव छूकर ये कहा कि 'महाराज जल्द स्वस्थ हो कर हम को दर्शन दीजिये, इतना कहने के साथ दरवार की आँखों में से आँसुओं की धारा वहने लगी! हम लोग भी उनकी आज्ञा से चरणस्पर्श करके दरवार के साथ लौट आये। आगे चलने पर फिर पाली स्टेशन पर स्वामीजी को वेग से पेचिश के साथ दस्त होने लगे और शूल जोर से होने लगा, उस समय डाकृर सूरजमल ने कहा मैं आपको कुछ क्लोरोडिन देना चाहता हूँ जिससे कि दस्त में कमी हो। स्वामीजी महाराज ने पूछा कि इसमें क्या क्या औषधि हैं सूरजमलजी ने कहा इसमें अफीम है, स्वामीजी महाराज ने कहा "प्राण भले ही चले जायँ पर मादक द्रव्य सेवन कभी न करूँगा। अगर मैं मूर्छा की दशा में होऊँ तो भी तुम ऐसी औषधि कदापि काम में न लाना"।

इसके पश्चात् स्वामी जी कुछ दिन आबू रह कर अजमेर चले गये वहाँ वैदिक युग के इस चमकते सूर्य का अस्त हो गया। कुछ लोग स्वामीजी को असहिष्णु कहते हैं। क्या उसे असहिष्णु कहा जा सकता है, जिस ने अपने घातक रसोइया को अपने पास से खर्च देकर कहा कि "भाग जाओ नहीं तो महाराज तुम्हें दण्ड

देंगे" इस उदारता की तुलना कहाँ मिल सकती है। जिस दिन तक सूर्य और चन्द्र भूमण्डल पर प्रकाश करते हैं ऋषि की जीवनी मनुष्यों के जीवन को पथ-प्रदर्शक बनी रहेगी।

—श्री० राव राजा तेजसिंह जी वर्मा।

——::o::——

स्वामी दयानन्द

मैंने स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व पर जितना अधिकाधिक विचार किया और जितना अध्ययन किया उतना ही मुझे निश्चय होता गया कि उनके महान् प्रभाव का रहस्य उस ढङ्ग में पाया जाता है, जिससे कि वे अपनी मातृभूमि की आत्मा अर्थात् प्राचीन भारत के आदर्श को संगठित करके उसका प्रचार करना चाहते थे—ठीक उस समय पर जब कि लोग हताश होकर अपने पुराने भक्तिभावों तथा मर्यादा को तिलाञ्जलि दे रहे थे, ठीक उसी समय पर जब कि लोग बिना सोचे विचारे पश्चिम के रीति रिवाजों को समष्टिरूप से ग्रहण करते जा रहे थे। स्वामी दयानन्द इस प्रवाह के विरुद्ध खड़े हुए और अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के द्वारा बड़े उत्तेजक और जीवित रूप में यह प्रकाशित कर दिया कि वास्तव में प्राचीन भारतवर्ष कैसा था! और वह संसार में किस सिद्धान्त को लेकर खड़ा हुआ था—तथा उसका प्राचीन काल वा जीवित जाग्रत्-भाव कैसा था।

इस प्रकार से एक संशोधक के रूप में आकर स्वामी दयानन्द ने बड़े प्रशंसनीय प्रताप और निर्भीकता के साथ सैकड़ों प्रकार की पुरानी बुराइयों को एक तरफ हटा दिया—जो कि उसके परम-प्रिय देश की आत्मा को बेड़ियों में जकड़े हुए थीं। उसने अपने जीवन और कर्मों से यह साबित कर दिखलाया कि यह रीति-रिवाज वस्तुतः भारतवर्ष की सच्ची मर्यादा नहीं है।

उसने धार्मिक पूजा में से मूर्ति पूजा निकाल कर उसे पवित्र बनाया, उसने स्त्रियों की अवस्था का उद्धार किया—और बाल-विवाह की कुरीति का सुधार किया, छूतछात के बन्धनों को तोड़ डाला, लड़के और लड़कियों की शिक्षा पर समानरूप से बल दिया और उनको स्वदेशप्रेमी बनाया, उन्होंने जाति-पांति की कठोर बेड़ियों को तोड़ डाला, और यह बतलाया कि जाति अर्थात् वर्ण स्वयं व्यक्तिगत सदाचार पर निर्भर है, किसी सामाजिक स्थिति अथवा जन्म पर नहीं—जब कि हम इस बात का विचार करते हैं कि इतने बड़े संशोधन से जाति के सर से कितना भारी बोझ उतर गया तो हमारी समझ में आजाता है कि स्वामी दयानन्द का व्यक्तित्व कितना महान् होना चाहिये था जिसमें कि ऐसे बड़े परिवर्त्तन करने की शक्ति थी। देश में बहुत से मनुष्य आये और यह कहते हुए चले गये कि इन संशोधनों की अत्यन्त आवश्यकता है, उनमें से कतिपय सच्चे देश सेवक भी थे—परन्तु उनमें शक्ति की कमी थी, तब स्वामी दयानन्द अपनी विलक्षण प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा प्रचण्डशक्ति के साथ आविर्भूत हुए और उन्होंने वह संशोधन किये जो सदा के लिये मनुष्यों के हृदयों में अङ्कित रहेंगे—सहस्रों ने उनकी बात सुनी और उसका अनुकरण किया।

अब भी ऋषि दयानन्द की मृत्यु के इतने दिनों पश्चात् ये सचाइयाँ जीवित हैं और लोगों के हृदयों में असर कर रहीं हैं। अफ्रीका और अन्य स्थानों में ये आर्यसमाज के ही धार्मिक काम करने वालों का ही फल है कि उन दूर देशों में जहाँ भारत-वासी जा कर बसे हैं धर्म की ज्योति प्रज्वलित रही है।

इन आर्यसमाजी सेवकों ने जैसा कि मैंने स्वयं देखा है ऐसे स्थानों में जहाँ किसी अन्य प्रकार की शिक्षा नहीं दी जा सकती वहाँ बालक और बालिकाओं को बड़ी लाभदायक धार्मिक

शिक्षा देने में अपने समान शक्ति और धन को बलिदान किया है—उन्होंने दरिद्रों की सहायतार्थ धर्मालय स्थापित किये हैं और रोगियों तथा दुखियों की सहायता करते हैं।

मेरे गुरु ईसा ने मुझे धर्म पुस्तक में बतलाया है कि एक अन्तिम परीक्षा जो कि मनुष्यमात्र की हो सकती है वह यह है कि वे केवल उपदेश नहीं करते किन्तु काम करते हैं—स्वयं क्राइस्टके ये शब्द हैं "मैं भूखा था और तूने मुझे भोजन दिया, मैं प्यासा था, तूने मेरी प्यास बुझाई, मैं नङ्गा था, तूने मेरे शरीर को ढका। मैं अपरिचित था, तूने मुझे अपनी शरण में लिया, जब कभी मैं रोगग्रस्त अथवा कारावास में था, तूने मेरी देख भाल की, जो कुछ तूने मेरे इन भाइयों में से किसी एक के लिये भी किया वही तूने मेरे लिये भी किया।" ईसा ने इन शब्दों में किसी जाति व धर्म विशेष का भेद नहीं किया न किसी ईसाई धर्म के मानने या न मानने वाले का। मनुष्य का आन्तरिक भाव और व्यक्तित्व उसके प्रेमपूर्ण कार्यों से प्रकाशित होता है, और अन्त में मनुष्य के वास्तविक भावों का ही मान होता है।

केवल इसी कारण से कि मैंने आर्यसमाज के बहुत से सदस्यों को दूर देशों में अपने गुरु क्राइस्ट की आज्ञा का पालन करते हुए देखा था, मेरे दिल में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं इनकी स्तुति में लेखों तथा वक्तृताओं द्वारा कुछ कहूँ; क्योंकि ये लोग निःसहाय और दुखियों की सहायता करते थे, बच्चों को शिक्षा देते थे—भूखों को भोजन देते थे—इनके जीवन का यह सच्चा उत्साह है। इस बात का सब से बड़ा कारण है जिस ने मुझे स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व की सच्ची महत्ता को अच्छी तरह समझा दिया।

—श्री० सी० एफ़ एण्ड्रयूज़।

——::o::——

आर्य-समाज ने क्या किया।

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की सन् १८७५ में स्थापना की। एक विचारवान् के हृदय में प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि इन वर्षों में आर्य समाज ने क्या किया। यदि विचार की दृष्टि से देखा जावे तो आर्य्य समाज ने धार्मिक दुनिया में काया पलट कर दी है—एक ऐसा परिवर्त्तन उपस्थित कर दिया है—कि सारे धार्मिक संसार में एक हलचल सी मच गई है। यह जानने के लिये कि दयानन्द, आर्य-समाज स्थापित करके अपने लक्ष्य की पूर्ति में फलीभूत हुए या नहीं, यह जानना भी आवश्यक है कि ऋषि का लक्ष्य क्या था, और उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये महर्षि ने किन साधनों का उपयोग किया। स्वामी दयानन्द का लक्ष्य वैदिक धर्म का प्रचार, प्राचीन वैदिक सभ्यता का पुनरुद्धार करना था। जब से ऋषि को वैराग्य हुआ और उन्हें यह विश्वास हो गया कि प्रचलित हिन्दू धर्म मूर्ति पूजा आदि कुरीतियों में जकड़ा हुआ भारतवर्ष के सुख का हेतु नहीं हो सकता तभी से उन्होंने सत्य मार्ग की खोज में अनेकानेक कष्ट सहे—पहाड़ों की खोह में और नदियों के तट पर निर्भय होकर विचरे और अन्त में ऋषि विरजानन्द के चरणों में बैठकर वेदों के सत्य अर्थ का प्रकाश उनके हृदय में हुआ। गुरु विरजानन्द ने आदेश दिया कि वेदों का प्रचार भारतवर्ष में ही नहीं अपितु संसार भर में कर दो। ऋषि ने गुरु की आज्ञा का जीवन पर्यन्त पालन किया और अपना जीवन भी इसी प्रकार बलिदान कर दिया ऋषि के पश्चात् उनके उद्देश्य की पूर्ति का उत्तरदायित्व आर्य समाज पर है।

ऋषि का सबसे पहला उपकार यह था कि निराधार हिन्दू सभ्यता के लिये वेदों का पवित्र आधार उपस्थित कर दिया। पश्चिमी सभ्यता के सम्मुख कोई विशेष लक्ष्य न होने के कारण शताब्दियों से यूरोप, और अमेरिका शिक्षा की वृद्धि वा प्राकृतिक

विज्ञान की उन्नति में लगे हुए हैं परन्तु दुःख और अशान्ति घटने के स्थान में दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है। उचित समय पर भारतवर्ष में ब्रह्मसमाज का कार्य आरम्भ हुआ किन्तु उस के संचालकों से भारी भूल हुई। ब्रह्मसमाज के संचालकों ने वेद नहीं पढ़े थे उन्हों ने चार पण्डितों को नियत किया कि ये बनारस जाकर देखें कि वेद क्या बला हैं। और केवल उन पंडितों की साक्षी पर वेदों को भ्रान्ति पूर्ण मान लिया और इस बात की घोषणा करदी कि वेद या किसी अन्य प्राचीन पुस्तक को ईश्वरकृत प्रामाणिक मानना भूल है। इसका परिणाम बड़ा भयङ्कर हुआ ब्रह्मसमाज हिन्दू जाति के सुधार के स्थान में कई अंशों में हिन्दू जाति के बिगाड़ ने का साधन होगया। स्वामी दयानन्द से पूर्व वेदों के अर्थ किसी को ज्ञात न थे। स्वामी दयानन्द ने वेदों का भाष्य किया उनके भाष्यों को पढ़कर तमाम विद्वानों की सम्मति वेदों के सम्बन्ध में बदल गई। ऋषि का पहला उपकार वेदों को पुनः उनके पद पर करना था, इसके साथ ही स्वामी दयानन्द ने तर्क और श्रद्धा में समानता उत्पन्न करदी। धर्म और विज्ञान में कोई भेद न होना चाहिए यह सिद्ध कर दिया। जब यूरोप में विज्ञान की वृद्धि हुई तब वहाँ ईसाई धर्म प्रचलित था। ईसाई धर्म की बहुत सी शिक्षाएं व सिद्धाँत विज्ञान के अन्वेषण के प्रतिकूल थे और इस कारण वैज्ञानिकों और विद्वानों को ईसाई धर्म से घृणा होगई। कोई और धर्म वहाँ प्रचलित न होने के कारण धर्म से अरुचि रखना यूरोप में शिक्षितों का एक फैसन होगया। भारतवर्ष में पौराणिक हिन्दू धर्म की यही अवस्था थी। यहाँ के शिक्षितों में भी धार्मिक जीवन और धर्म में श्रद्धा नाम मात्र को भी न थी। स्वामी दयानन्द से पूर्व धार्मिक संचालकों ने मनुष्यों की बुद्धि पर ताला लगा दिया था, और उसकी कुञ्जी वह अपने हाथ में रखते थे। स्वामी दयानन्द

ने सबसे पहले यह घोषणा की कि धार्मिक सिद्धान्त को भी बिना बुद्धि पर परखे स्वीकार नहीं करना चाहिये। सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने के लिये सदा सर्वदा उद्यत रहने की शिक्षा ऋषि ने इसी कारण दी। स्वामी दयानन्द ने तीसरा उपकार जो किया वह धार्मिक जीवन को क्रियात्मक बनाना था। ऋषि से पूर्व धर्म या रिलीजन केवल कुछ सिद्धान्तों के मानने न मानने का नाम रह गया था। स्वामी दयानन्द के जो मन्तव्य थे उन्हीं का वे निर्भय होकर प्रचार करते थे। और जिन बातों का प्रचार करते थे उन्हीं के सांचों में अपने और अपने अनुयायियों के जीवन को ढालना चाहते थे। स्वामी दयानन्द ने देखा कि हिन्दू जाति बाल विवाह आदि कुरीतियों के कारण बड़ी निर्बल और निस्तेज हो गई है उन्होंने ब्रह्मचर्य को, इस अवस्था के सुधारने का साधन बतलाया। स्वयं जीवनपर्यन्त बाल ब्रह्मचारी रहे और भारत सन्तान को ब्रह्मचारी बनाने के लिये प्राचीन गुरुकुल प्रणाली की पुनः प्रतिष्ठा की। स्वामी दयानन्द यह जानते थे कि कोई गृहस्थी स्त्री और पुरुष दोनों के शिक्षित हुए बिना सुखी नहीं रह सकता। स्वामी दयानन्द ने देवियों को वेद पढ़ने का अधिकार बतलाया, स्त्री जाति के सुधार के लिये और भी अनेक साधन उपस्थित किये। विधवाओं की पुकार सुनना उनका ही काम था। आर्य जाति और मनुष्य जाति के सुधार के लिये सच्चे वानप्रस्थी और संन्यासी आवश्यक बतलाये। चारों वर्णों के स्थान में हिन्दू जाति चार हजार से अधिक जातियों और उपजातियों में विभक्त होगई थी। ऋषि ने सिद्ध किया कि वर्ण व्यवस्था गुणकर्मानुसार होनी चाहिये न कि जन्म के आधार पर।

दुर्भाग्य वश हिन्दू जाति का एक बड़ा अंश नीच समझा जाता था उनको उठाने के लिये सबसे पहला पग स्वामी दयानन्द

ने उठाया, और आज भारतवर्ष में स्वामी दयानन्द की जय प्रत्येक वेदी से सुनाई देती है।

जबतक किसी जाति की शिक्षा प्रणाली पूर्ण न हो तब तक वह जाति सुखी व उन्नतिशील नहीं होसकती। सर्वाङ्ग पूर्ण शिक्षा प्रणाली ऋषि दयानन्द ने प्रचलित की, शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये, निःशुल्क होनी चाहिये, मातृ भाषा द्वारा होनी चाहिये, और धार्मिक शिक्षा उसका पूर्ण अङ्ग होना चाहिए। यह सब गुण ऋषि दयानन्द की बनाई शिक्षाप्रणाली में पाये जाते हैं। क्रियात्मक रूप से उपकार करना आर्य्य-समाज का एक मुख्य नियम रक्खा गया है, और इस कारण से प्रत्येक सुधार और उपकार के कार्य में आर्य समाजी अग्रसर दृष्टि गोचर होते हैं। आर्य्य-समाज के काम को यदि ऊपर लिखे विचारों की दृष्टि से जाँचा जावे तो यह भली भाँति विदित हो सकता है कि, आर्य समाज ने, आर्य जाति को पुनर्जीवित कर दिया।

केवल किसी उत्सव में उपस्थिति कम देख कर यह कह देना कि आर्य समाज फेल हो गया, किसी प्रकार उचित नहीं। यह मानते हुए भी कि व्यक्तिगत रूप से आर्य्य समाजियों का जीवन उतना उन्नति शील न हो जितना कि होना चाहिये, परन्तु समुदाय रूप से जितनी उन्नति आर्य्य समाज ने की उतनी और किसी ने नहीं की। शिक्षा के विस्तार, अछूतों के उद्धार, स्त्री जाति के सुधार, आदि अनेक कार्यों में स्वामी दयानन्द की जय की ध्वनि सुनाई देती है; इस सारे उत्थान का मूल कारण वेद है। सब को वेदों की शरण लेनी चाहिये, और आर्य्य समाज का हाथ बटाना चाहिये।

—श्री बा० पूर्णचन्द्र जी बी० ए० एल-एल बी० एडवोकेट।

—::o::—

दलितोद्धारक दयानन्द

महर्षि श्री० १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज ने अपने तपोबल, विद्या, शौर्य्य, धैर्य्य, जितेन्द्रिय आदि शुभ गुणों से अर्द्ध निद्रित हिन्दू जाति को चैतन्य कर सँभाला। महर्षि ने गुरुडम के गढ़ को तोड़ कर मानसिक दासता को दूर करते हुए इस पवित्र ध्वनि को सर्व साधारण तक पहुँचाया, कि वेद भगवान् समस्त मानव-जगत् के लिए हैं; जो जन-समाज अछूत नाम से सम्बोधित कर रक्खा था, उसके प्रति प्रबल घोषणा करते हुए बतलाया कि, वे भी उसी प्रकार अपनी उन्नति कर सकते हैं, जिस प्रकार अन्य लोग करते हैं। उत्तम कर्मों से नीच से नीच व्यक्ति भी उच्च, और नीच कर्मों से उच्च से उच्च व्यक्ति अधम बन सकता है। श्री स्वामीजी महाराज, दलित कहाये जाने वाले मानव-समुदाय के बड़े ही हितैषी थे। उनका समस्त हिन्दू (आर्य्य) समाज पर बड़ा भारी ऋण है, जिसका सूद बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है। महर्षि के ऋण से उऋण होने और उनकी स्वर्गस्थ आत्मा को सन्तुष्ट करने के लिए अति आवश्यक है कि हिन्दू जाति के अन्दर से अछूतपन तथा जातीय भेद भाव बिल्कुल ही मेट दिया जाय। क्योंकि छूआ-छूत का मामला केवल भारतीय हिन्दू समाज से ही सम्बन्ध रखता है। आज कल हिन्दुओं का धर्म न तप में, न ज्ञान में, न यज्ञ में और न परोपकार में है। अपने अन्दर छूतछात अलबत्ता ही उन्होंने अछूत जाति की सृष्टि करली है। सात करोड़ अछूतों को जन्म देने वाली, यह जाति-पाँति तथा छूतछात है। जिस जाति का इतना बड़ा अङ्ग बेकार पड़ा रहे उसकी शुभकामना कब तक की जा सकती है। जब तक हिन्दू जाति में से यह अछूतपन न मिटेगा—तब तक उसका ठीक संगठन नहीं हो सकता। हिन्दू

जाति को जीवित—जाग्रत् तथा सही सलामत रखने के लिए यह अनिवार्य है कि उसके सपूत अपने तथा जाति के ऊपर दया करके छूआछूत के कलंक को धो डालें। अगर ऐसा न किया गया तो एक दिन हिन्दू जाति का इतना बड़ा और उपयोगी अंग भाइयों के अत्याचार से तङ्ग आकर हिन्दू जाति का सहयोग छोड़ देगा। साथ ही दलित कहाए जाने वाले भाइयों से नम्र निवेदन है कि वे भी अपने स्वरूप को विचारें। यह संसार कायरों के लिए नहीं अपने पैरों पर खड़े होने वालों के लिए है। इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि जिस पवित्र वैदिक धर्म का उनके पूर्वजों ने बड़ी आपत्तियों में भी परित्याग नहीं किया, उसकी सेवा के लिए वे सदैव सन्नद्ध रहे। अपने अधिकारों को माँगते हुए अपनी जाति से पदच्युत न हों।

—श्री बौहरे खेमचन्द्र।

—:o:—

स्वामी दयानन्द के आने की ज़रूरत

११ वीं सदी के मध्य में जिस तरह यहाँ पर पाश्चात्य सभ्यता ने अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश की थी—यदि वही रविश २० वीं सदी में भी क़ायम रहती तो आज काशी, प्रयाग, अयोध्या और मथुरा की पुरानी सभ्यताओं पर फ़िदा होने वालों या राम कृष्ण के नाम लेवाओं की शुमार करने वाले लोगों को, उनकी शुमार करने में बहुत आसानी होती—लेकिन "मेरे मन कुछ और है, विधना के कुछ और"—इस लोकोक्ति के अनुसार पाश्चात्य सभ्यता को अपना प्रभुत्व जमाने का काफ़ी मौक़ा हाथ न आया और न वह यहाँ के लोगों को अपना शौदाई ही बना सकी।

यह प्रत्यक्ष है कि "जिस जाति ने, किसी समय महान् आत्माओं को उत्पन्न किया है—तो उस जाति में वह शक्ति विद्यमान है कि अनुकूल समय मिलने पर फिर अपने में से महान् आत्माओं को उत्पन्न कर सके"। इसी सत्य सिद्धान्त के अनुसार भारत की रत्नगर्भा और वीर प्रसविनी भूमि ने अपने गर्भ से वह अमूल्य रत्न, अद्वितीय विद्वान् निर्भीक चेला, अटल ब्रह्मचारी और सच्चा देश भक्त—स्वामी दयानन्द उत्पन्न किया—जिसके अस्तित्व पर हिन्दू जाति ही को नहीं बल्कि भारत की सभी जातियाँ जितना अभिमान करें,—थोड़ा है।

स्वामी दयानन्द ने भारतवर्ष को बहुत बुरी अवस्था में पाया। हिन्दू जाति अपनी पुरानी सभ्यता और मर्यादा को मिटा देने के लिये उधार खाये बैठी थी। मग़रिब की दिलफरेब सभ्यता को कुछ लोगों ने अपना लिया था और कुछ लोग अपनाने के उधेड़बुन में लगे हुए थे। आर्य सभ्यता झूठे ढकोसलों और दिखाऊ व्यवहारों में ऐसी छिपी हुई थी कि ढूँढने से जल्दी पता लगाना टेढ़ी खीर था। बहुत से हिन्दू लोग अपने को ऋषि सन्तान कहने में हिचकते थे, और मुक़द्दस वेद की हस्ती को यूरोपीय विद्वानों के सार्टिफिकेट द्वारा तसव्वर करते थे। मग़रिबी रंगोरोग़न उन लोगों के चेहरों पर अपना बदनुमा नक़ाब डाल चुका था—लेकिन एक महर्षि दयानन्द ने अपने विद्याबल, कर्मबल और तपोबल से सारी कमज़ोरियों, अकर्मण्यता और बुराइयों को दूर कर दिया और हिन्दुओं को सच्चा हिन्दू आर्य सन्तान और वेदों का हामी और अनुयायी बनाया। वैदिक धर्म का झण्डा उठाया और सत्य सनातन धर्म का प्रचार करना शुरू किया। गुमराहों को राहेरास्ता पर लाया। बिछुड़े हुओं को गले लगाया और उन लोगों को सार्वभौम बन्धुत्व का पाठ पढ़ाया। एक बार फिर

कपिल, कणाद, जैमिनि, पतञ्जलि, गौतम और व्यास के नामों की शङ्ख-ध्वनि से आर्य्यावर्त गूँज उठा और चारों ओर वेद की ऋचायें सुनाई पड़ने लगीं। कुछ लोगों ने इस ब्रह्मचारी के विद्यावल और तेजोवल के सामने अपना सिर झुकाना क़बूल न किया और मुख़ालफ़त करने का मन्सूवा बाँधा—लेकिन उनकी मुख़ालफ़त की दलील इस विद्यावल के सामने टिक न सकी।

स्वामी दयानन्द जी ने हिन्दू समाज को उस पुरानी सभ्यता और रीति-रिवाज पर चलाने की कोशिश की, जिस सभ्यता को आर्य्य ऋषियों ने बहुत समय पहिले भारतवर्ष में क़ायम किया था। वैदिक धर्म का पुनरुत्थान किया और हिन्दुस्तानियों को सच्चा हिन्दुस्तानी बनने का मंत्र पढ़ाया। लोगों को देश की अवस्था का ज्ञान कराया और राष्ट्रियभाव की जागृति का उत्साह दिलाया। धार्मिक और सामाजिक उन्नति करने के लिये अपने अनुयायियों को मैदान में उतारा और स्वयं मैदान में आकर अपने विरोधियों को ललकारा। लेकिन अन्त में वही हुआ जिसकी गवाही संसार के इतिहास देने को तैयार हैं। सत्य का विजय हुआ—वैदिक धर्म का फिर से डंका बजा और भारतीयता का गौरव प्राप्त हुआ।

देश काल के अनुसार स्वामी दयानन्द जी ने धार्मिक और सामाजिक उन्नति के साथ-साथ राजनैतिक उन्नति की ओर आर्य्य सन्तानों का ध्यान आकर्षित किया और राष्ट्र निर्माण करने का प्रयत्न सोचा। आर्य्य सन्तानों के लिये विदेशी शासन मुज़िर और ख़तरनाक बतलाया। और उन को संगठित करने के लिए भारत में आर्य्यसमाज की नींव डाली। कुछ लोग इस समाज को देख कर चौकन्ने हुए लेकिन इस चौकन्ने होने में दो

लाभ हुए। भारतीयों की आँखें खुली और अपनी दशा को देख कर वेदार हुए और उठे। मेरे मुसलमान भाई इस बात के मानने से क़तई इन्कार करेंगे, और स्वामी दयानन्द जी की पाक हस्ती के उस प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष एहसानात से अपने को बरी होने की कोशिश करेंगे—लेकिन सच तो यह है कि अगर स्वामी दयानन्द जी १९ वीं सदी में न होते तो यक़ीनन हिन्दुस्तानियों पर मग़रिव तहज़ीव और तर्ज़ेमुआशरत मग़रिवी ख्यालात, मग़रिवी नोंक झोंक—हाव-भाव और वह बुरे आदात ने जो अपना गहरा ताअलुक़ात पैदा कर लिया था कुछ ही दिनों में यहाँ के पुराने मज़हवी जज़वात पर अपना असर डालते और उसे मिटा डालने की कोशिश करते। ईसाइयत और मग़रिवी तहज़ीव के मुख्य पुरखतर हमले से हिन्दुस्तानियों को सावधान करने का सेहरा अगर किसी व्यक्ति के सिर पर बाँधने का सौभाग्य प्राप्त हो—तो स्वामी दयानन्द जी की ओर इशारा किया जा सकता है।

यह वखूवी रौशन है कि, पड़ोसी का असर पड़ोसी पर पड़ता है। अगर हिन्दू, मग़रिवी तहज़ीव की प्रचलित बुराइयों में फँसे हुए थे—तो मुसलमान उससे पाक साफ़ न थे। दोनों अपने ख्यालात और सुभीते के अनुसार मग़रिव की दिल फ़रेव तहज़ीव के दिलदादः हो रहे थे, और मुमकिन था कि कुछ ही दिनों में हज़रत मसीह के तक़लीद की पैरवी करने पर आमादा हो जाते। आँधी चल रही थी, वृक्ष डोल रहे थे-आकाश में गर्दोगोवार छा गया था-ऐसे विकट समय में एक चतुर उपदेशक के प्रादुर्भाव की सख्त ज़रूरत थी-प्रकृति के नियम के अनुसार एक उपदेशक का प्रादुर्भाव हुआ उसने हवा के रुख को वदला। लोगों को अन्ध रुभक्कड़ों से वचाया और अपने उपदेशों से चारों ओर प्रकाश फैलाया।

जिस प्रकार हिन्दुओं के सिर पर मग़रिबी तहज़ीब, अख़लाक़ और तमद्दुन की अब्रोहमत अपनी साया किये हुई थी—ठीक उसी तरह मुसलमानों के सिर पर भी अपनी साया करने में उसने किसी तरह कोताही नहीं की। जिस प्रकार हिन्दू नास्तिकता के अन्धेरेग़ार में गिरे जा रहे थे—उसी प्रकार मुसलमानों ने अपने हमवतन भाइयों का साथ देना क़बूल किया था। किसी न किसी तरह मग़रिब की बुराइयों के शिकार—दोनों क़ौमें हो चुकी थीं—ऐसे वक़्त में उन मग़रिबी तहज़ीब की बुराइयों से बचाने वाला—हिन्दुस्तानियों की आँखों की पट्टी खोलने वाला अगर कोई था—तो बिला मोबालगह मानना लाज़िम होगा कि इन में स्वामी दयानन्द की जाति थी और उनका मिशन भी था, जिन्होंने हिन्दुस्तानियों की आँखों के सामने से मग़रिब की दामोफ़रेब का पर्दा उठा दिया और उनकी असलीसूरत दिखला दी। लोगों को बतलाया कि मग़रिब की हाव-भाव हिन्दुस्तानियों के लिये असबाबे बुराई है। हिन्दू चेते और राहेरास्त पर आये। कोई वजह नहीं थी कि हिन्दू भाइयों की देखा-देखी मुसलमान न सम्भलें—क्योंकि पड़ौसी की देखा-देखी पड़ौसी बेदार होता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार मुसलमानों ने हिन्दू भाइयों की देखा-देखी मग़रिब की दिल फ़रेब तहज़ीब की बुराइयों की ओर से अपने को खींचा—सच्चे मुसलमान कुछ कुछ वतन परस्ती का राग अलापने लगे अगर १९ वीं सदी में स्वामी दयानन्द जी न होते तो मग़रिबी तहज़ीब की बुराइयों से हिन्दुस्तानियों की आँखें न खुलतीं और न आज के दिन मज़हब और देश का राग अलापने की नौबत आती।

१९ वीं सदी में स्वामी दयानन्द जी ने भारत के लिये जो अमूल्य काम किया है उस से हिन्दू जाति के साथ साथ मुसलमानों

तथा दूसरे धर्मावलम्बियों को भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बहुत लाभ पहुँचा है।

अगर राजनैतिक दृष्टि से विचार किया जाय तो भी निःसंकोच मानना पड़ेगा—कि भारत की वर्त्तमान राष्ट्रिय जागृति में स्वामी दयानन्द जी और उनके उपदेशों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ प्रभाव हिन्दू जनता पर पड़ा है। एक प्रकार से यह कहना अनुचित न होगा कि १६ वीं सदी के भारतीय राष्ट्र निर्माण कर्त्ताओं में स्वामी जी की शुमार सब से पहिले नहीं, तो किसी कार पीछे भी नहीं हो सकती है। लाला लाजपतराय, लाला हरदयाल, श्याम जी, कृष्ण वर्मा, भाई परमानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द आदि उसी गुलशन के खुशगवार और सरसब्ज़ पौदे हैं, जिन को स्वामी दयानन्द जैसे चतुर माली ने अपने उपदेश जल से सींच-सींच कर इतना बड़ा बनाया है—जिनकी सायों के नीचे बैठने के लिये हर शख्स को रश्क होता है। भारत के राष्ट्रनिर्माण में स्वामी दयानन्द के मिशन ने बहुत कुछ आगे बढ़ कर काम किया है। आर्य्य समाज को भारतीय उत्थान का बहुत बड़ा श्रेय और गौरव प्राप्त हो सकता है, और इस समाज में राष्ट्र निर्माण का एक प्रधान स्तम्भ करार देना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। अछूतोद्धार के प्रश्न को राष्ट्रिय महासभा ने हल करने की अब असली कोशिश की है, लेकिन स्वामी दयानन्द जी ने इस मुहलिक मरज़ के हमले से बचाने के लिये पहिले ही से असली कोशिश कर रक्खी थी और बहुत कुछ सफलता भी हुई। अतएव इन सब बातों पर ध्यान देने से निःसंकोच मानना पड़ता है कि भारतीय राष्ट्रिय निर्माण में स्वामी दयानन्द और उन के मिशन का एक खास भाग है।

ऊपर की सारी बातों पर ध्यान देने से और निष्पक्षपात होकर विचारने से मालूम होता है कि स्वामी दयानन्द जी ने

भारतवर्ष की भलाई और राष्ट्रिय जागृति के लिये जो कुछ किया—वह केवल किसी समाज विशेष के लिये नहीं और न किसी जाति विशेष का हित सोच कर किया बल्कि वह भारतवर्ष के लोगों को उस सत्य-युग के आदर्श को सामने रखकर उसी के पथ पर भारतीयों को चलाने के लिये उठाने आया था।

—श्री० पीरमुहम्मद मूनिस।

——::o::——

ऋषि की दो शिक्षायें

जिन सिद्धान्तों का स्वामी दयानन्द ने प्रचार किया है, वे कुछ नये नहीं हैं। वे उतने ही प्राचीन हैं जितना कि हिमालय। वस्तुतः वे सच्चे अर्थों में हम को फिर से वास्तविक प्राकृतिक नियमों की ओर ले जाना चाहते हैं और समस्त प्रकार की धोखे-बाजी, मक्कारी, असत्यता और बनावटी बातों का वहिष्कार करना सिखाते हैं। इन सब सिद्धान्तों का सार दो शब्दों में रक्खा जा सकता है अर्थात् "उदारता और विश्वव्यापी प्रेम"।

विश्वव्यापी प्रेम का अभिप्राय केवल एक आदर्श तक पहुँचना ही नहीं है, अपितु यह विश्वास, कि हम को सदैव उच्चता और उन्नति की ओर बढ़ने का उद्योग करते रहना चाहिये। उन्नति के इस संग्राम में सुयोग्य सिपाही बनने के लिये यह परमावश्यक है कि हम बड़ी तपस्यापूर्ण साधना करें और वह केवल आत्मिक ही न होनी चाहिये, किन्तु शारीरिक और मानसिक भी। इसका स्वाभाविक फल यह होगा कि इस प्रकार से सच्चे और दोष-रहित नागरिक उत्पन्न होंगे।

आधुनिक काल में जब कि समस्त संसार में एक बड़ी हल-चल मची हुई है—ये बड़ा आवश्यक है कि स्वामी दयानन्द के

सिद्धान्तों का वलपूर्वक प्रचार किया जाय। भारतवर्ष इस समय राजनैतिक जोश रूपी वड़े भयानक तूफ़ान के भँवर में पड़ा हुआ है। भारत-जाति राजनैतिक परिवर्त्तनों के साथ-साथ जाग्रत् होती जा रही है—और होती रहेगी—शताब्दियों के जमे हुए विचार और विश्वास शनैः शनैः उखड़ते जा रहे हैं। हमारा मार्ग ऐसी कठिनाइयों से भरपूर है, जिनका यदि बुद्धिमत्ता से सामना न किया गया तो परिणाम वरवादी-मारकाट तथा नाश होगा। यदि स्वामी दयानन्द आज जीते होते तो उनका अपने भाइयों तथा शिष्यों के प्रति क्या परामर्श होता? अब भी वही होता जो पहिले था और जो कि सदैव रहेगा, अर्थात् जीवन की पवित्रता और भावों की सत्यता, तथा सब से बढ़ कर और विशेषतया उदारता और विश्वव्यापी प्रेम।

—श्री मेजर टी० यफ़० ओडोनल।

——::०::——

कर्म योगी दयानन्द

मैं किसी समाज का सभासद नहीं हूँ, तो भी मेरे हृदय में उस के लिए प्रतिष्ठा है। १६१४ में मैंने पञ्जाब, संयुक्त प्रान्त की बहुत सी आर्य-सामाजिक संस्थाओं को देखा, तथा भारतवर्ष और इँगलैण्ड में मेरे बहुत से आर्य समाजी मित्र हैं, इन दो कारणों से मेरे हृदय की प्रतिष्ठा समाज के लिए और अधिक हो गई है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महान् व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने अर्वाचीन भारत का निर्माण किया, और जो उसके आचार सम्बन्धी तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तरदाता हैं। हिन्दू समाज का सुधार करने में आर्यसमाज का बहुत बड़ा भाग है। राम कृष्ण मिशन ने बंगाल में जो कुछ किया उससे कहीं अधिक

पंजाब और संयुक्तप्रान्त में आर्यसमाज ने किया। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि पंजाब का प्रत्येक नेता आर्य समाजी है। स्वामी दयानन्द को मैं एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूँ। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि, उनकी स्थापित की हुई आर्यसमाजें अपने संस्थापक के अनुरूप हों, तथा भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा आध्यात्मिक मुक्ति का कारण बन सकें, जिसके लिए कि हम लोग इतना तरस रहे हैं।

—श्री सुभाषचन्द्र बोस।

—::o::—

बाल ब्रह्मचारी दयानन्द

सत्य से सनातनी की, आपसी तनातनी की;
द्वेष की दवाई आग, प्रेम के पुजारी ने।
नींद से जगाया, सत्य धर्म दिखलाया हमें,
देश को उठाया उसी, देश के पुजारी ने।
मार के अछूत—भूत, शुद्ध किए आर्य पूत,
क्रान्ति के बनाए दूत लाखों क्रान्तिकारी ने।
होके बलिदान ध्यान धर्म का दिलाया हमें,
ऋषि दयानन्द जैसे बाल ब्रह्मचारी ने॥

—सुवर्णसिंह वर्मा, 'आनन्द'।

—::o::—

दोहा

मुख्य नाम है ईश का, ओमनुभूत प्रसिद्ध।
योगी जपते हैं इसे, सुनते हैं सब सिद्ध॥

—महाकवि 'शङ्कर'।

नयी जागृति का जन्मदाता

सब वृतान्तों से जो स्वामी दयानन्द के विषय में मिलते हैं वे असाधारण शारीरिक शक्ति, प्रभावोत्पादक व्यक्ति और महान् सङ्कल्प शक्ति रखने वाले पुरुष थे। कर्नल आल्काट उनके विषय में कहते हैं कि वे लम्बे क़द के, अत्युच चरित्र युक्त और व्यवहार में उदार थे। निसन्देह स्वामी जी एक महान पुरुष, संस्कृत के गम्भीर विद्वान, उत्कृष्ट साहस और स्वावलम्बन से युक्त तथा वे मनुष्यों के नेता थे।

उपर्युक्त उद्धरण आर्य-समाज के प्रवर्त्तक के विषय में हेस्टिंग इन्साइक्लोपीडिया (Hastings Encyclopedia) से लिया है, और यह बतलाया कि वे यूरोपियन जिन्हें उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था किस प्रकार उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाते थे। उनकी विद्वता मानी हुई थी, परन्तु सम्भवतः उनका साहस और स्वावलम्बन ऐसे लोगों को बहुत प्रभावित करता था, जो अब तक प्रायः ऐसे ही भारतीयों से मिले थे, जिन में यह दोनों गुण न थे।

मेरी दृष्टि में यह दो ऐसे गुण हैं कि जो उन्हें उस नई जागृति का अवतार सिद्ध करते हैं। जो भारत में अभी उत्पन्न हुए हैं। और हमारा विश्वास है कि, भारतीयों को उनके उद्देश्य 'स्वराज्य' जिन पर उनकी आँखें लगी हुई हैं,—तक पहुँचावेगी।

अन्ततः असहयोग का वास्तविक अर्थ ही क्या है? क्या यह व्यक्ति और जाति के लिये स्वावलम्बन का सन्देश नहीं है? क्या महात्मा जी की शिक्षा का तत्व यही नहीं है कि दूसरों का सहारा मत लो, उस वस्तु को दूसरों की कृपा से प्राप्त करने का विश्वास मत रक्खो जो कि तुम्हें स्वतः अपने प्रयत्न से प्राप्त करनी है, मत माँगो और आत्मा को गिराने वाली कायरता के साथ दूसरों

के आगे हाथ मत फैलाओ! मनुष्यों के समान अपने पैरों पर खड़े होओ, और अपने में तथा अपने प्रयत्नों में विश्वास रक्खो।

निस्सन्देह यही तात्पर्य है उस सन्देश का जो आज भारत के कानों में गूँज रहा है, और जो राष्ट्र की मुक्ति का एक मात्र उपाय है। आर्य समाज का प्रवर्त्तक स्पष्ट रूप से इन नए भावों का प्रेरक एक ईश्वरीय दूत था। वह एक ऐसे राष्ट्र में उत्पन्न हुए जिसमें से आत्म विश्वास उठ चुका था। ऋषि ने उसे आशा का सन्देश सुनाया। स्वामी जी ने राष्ट्र के आगे उसके भूत काल का चित्र रखा, जिससे कि उसका मृतप्राय आत्मसम्मान फिर चमक उठा, और साथ ही राष्ट्र के भविष्य का दृश्य दिखाया जिससे उसके अन्दर नई कार्यशक्ति और आत्मवलिदान की योग्यता जाग्रत हो उठी। स्वामी जी ने भारतवासियों के अन्दर समाज सेवा के भाव उत्पन्न किए, और उनमें एक ऐसा जोश भर दिया कि, जिससे उनमें लगातार कोई प्रयत्न करना सम्भव हो सके। उनकी मृत्यु को ५० वर्ष होगए, परन्तु उनकी आत्मा आज भी उस आन्दोलन में वर्त्तमान है, जिसके वे जन्मदाता थे। यह नहीं कि उनका प्रभाव केवल आर्य-समाज में हो, किन्तु समाज के द्वारा उनकी शिक्षाओं का उन लोगों के मन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है जो कि समाज से बाहर हैं। यह सब कारण हैं जिनसे मैं उन्हें उत्तरीय भारत की जागृति का पिता समझता हूँ, यह जागृति उनके व्यक्तित्व और उनकी शिक्षाओं के कारण ही सम्भव हुई। वे भाव जो उन्होंने अपने अनुयायियों तथा उन अनुयायियों की संगति में रहने वाले पुरुषों को भर दिए, बीज के रूप में थे जो कि आज आत्मत्याग और मनुष्य सेवा के रूप में फूल फल रहे हैं यही भाव हैं जो और अधिक पवित्र और पूर्ण होकर स्वराज्य तक पहुँचावेंगे। —एस० डी० स्टोकस।

———:o:———

क्या होता ?

तुम कहते हो दयानन्द जो यहाँ न आते क्या होता ?
मैं कहता हूँ पड़ा पड़ा यह भारत तो बेसुध सोता ॥

पंच अविद्या-निशा अँधेरी वेद-इन्दु-बन्धन होता।
खल-खद्योतों का दल होता पापोलूक-सदन होता ॥

दर्शन के अति दुर्लभ दर्शन श्रुति को श्रोत न सुन पाते।
स्मृति विस्मृत सी हो जाती अंग-भंग सब हो जाते ॥

भूषा और वेश क्या होता क्या भावी भाषा होती ?
भाव भिन्न होते क्या जाने कैसी अभिलाषा होती ॥

पुस्तर प्रतिमा पूज पूज कर पथरा गए नयन होते।
फिर कैसे उस निराकार के कहो सखे ! दर्शन होते ॥

पड़े समझ पर पत्थर होते अति पाषाण हृदय होते।
पुस्तरयुग सा प्रस्तुत होता सब चेतन जड़मय होते ॥

मंदिर की मसजिद हो जाती फिर कुरान कर में होता।
बपतिस्मा लेकर या भारत अब गिरजाघर में होता ॥

यवन रंग या ढंग साहबी सब नूतन अभिनव होता।
यह विदेश या भारत अपना!!! ऋषियों को संशय होता ॥

दीनबन्धु गोपाल हितैषी यहाँ न जो आया होता।
शिखा सूत्र श्रीरामकृष्ण का चिह्न कहाँ पाया होता ॥

तुम कहते हो क्या होता जो यहाँ नहीं ऋषिवर आते।
मैं कहता हूँ एक आर्य भी नहीं कहीं ढूँढे पाते ॥

—पं० विद्याभूषण 'विभु'।

——::०::——

अर्द्धशताब्दी का पुनीत सन्देश

भारतवर्ष अज्ञानान्धकार से आच्छादित था। निराशानिशा में उत्साहहीनता का चक्र तेजी से घूम रहा था, मत मतान्तरों की आँधी चिरकालीन सभ्यता का संहार कर रही थी, आर्य-संस्कृति का नाश हो रहा था—कोई आश्रय न था। मत्सर, डाह, वैमनस्य ने इतनी उग्रता धारण करली थी कि, मनुष्य एक दूसरे के उत्कर्ष-उत्थान को नहीं देख सकता था। विषमता का व्यवहार दिन प्रति दिन देश का ह्रास करता चला जा रहा था। उस समय देश को किसी ऐसे मार्ग प्रदर्शक की आवश्यकता थी, जो वाममार्ग के अनाचार तथा हिन्दू धर्म की कुरीतियों को भस्मीभूत कर के विशुद्ध वैदिक धर्म की काञ्चनमयी माला भारतवासियों के गलहार के लिये प्रस्तुत कर सके। ऐसे समय में गुजरात प्रान्त के मोरवी नामक स्थान से एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई। उसकी आभा से देश में अलौकिक प्रकाश छा गया, संजीवनी वायु का संचार हुआ और उस मौत के सन्नाटे में खलबली मच गई। उस ने भूलों को मार्ग दिखलाया—उन्निद्रों को जगाया। अज्ञानान्धकार को दूर कर वैदिक-भानु का प्रकाश देशवासियों को प्रदान किया।

मदान्ध लोगों को वस्तुस्थिति का सच्चा ज्ञान न हो सका—नृशंस उन्मत्त की भाँति उस से लिपट गये—उसे तरह तरह के कष्ट दिये—पत्थर फेंके, किन्तु उस स्थिरप्रज्ञ को इसकी क्या परवा। वह पुरुष-सिंह अपने व्रत पर अटल बना रहा, उसी तरह उसके मस्तिष्क से वह ज्योति प्रस्फुटित होती रही—उसी तरह उसकी वाणी से विद्युद्-धारा प्रवाहित होती रही।

जिन लोगों के उद्धार के लिये उसने अपना व्रत धारण किया था, उन्होंने उसे जहर दिलवा दिया। वह दीपावली के दिन इस

असार संसार से सदैव के लिये कैवल्य के विशाल वदन में छिप गया—ज़हर खाकर भी अमरत्व को प्राप्त हो गया। यह निर्वाण अर्द्धशताब्दी उसी के "बलिदान" का सन्देश लाई है। आइये आज एक जगह एकत्र होकर मत्सर को त्याग कर, अछूतों को गले लगा कर उस महर्षि की पुनीत जीवनी पर विचार करें, उसका मनन करें, उसके शुभ आदेश पर ध्यान दें, और उसके अनुसार कार्य प्रारम्भ कर दें।

ऋषे! आज आप इस संसार में नहीं हैं, किन्तु आपकी दिव्य ज्योति, देदीप्यमान ज्ञान-भानु हर एक आर्य के हृदय को प्रकाशित कर रहा है—भारत आप के बताये हुए मार्ग पर आ रहा है। जो लोग आपके विरोधी थे, वह भी, आज, मुक्तकण्ठ से आपकी प्रशंसा कर रहे हैं। वह दिन भी शीघ्र आने वाला है, कि जब भारत ही नहीं सारा संसार आपका अनुयायी बनेगा।

—श्री नारायण गोस्वामी वैद्य।

——::०::——

ऋषि जीवन के दो पहलू

जो लोग केवल चर्म चक्षुओं से देखते हैं, वह समझते हैं कि ऋषि दयानन्द एक सम्प्रदाय का प्रचारक था। ऋषि के जीवन की घटनाओं पर साधारण विचार कर वह इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उसने धर्म को संकुचित कर हिन्दुओं में एक झगड़ालू हिस्सा पैदा किया है। जो विचारशील पाठक ऋषि के हृदय को, उसके ऊँचे लक्ष्य और ध्येय को समझना चाहते हैं उन्हें कुछ गहराई में जाना पड़ेगा। उन्हें याद रखना पड़ेगा कि शरीर और आत्मा में, दिल और गुर्दे में, शब्द और भाव में कोई भेद भी है। ऋषि दयानन्द के शब्द गम्भीर थे। सरसरी नज़र से उनके असली भाव समझ में नहीं आ सकते। उनका असली

आशय समझना बहुत कठिन है। कठिनता का अनुमान लगाने के लिए हम एक ही दृष्टान्त पेश करते हैं।

आज कल की एकता—प्रकार के असली महत्त्व को न समझने वाले लोग कहा करते हैं कि ऋषि दयानन्द ने हिन्दुओं को असहिष्णु बना दिया। उसने हिन्दू धर्म को संकुचित कर दिया। बहुत से देश प्रेमियों की शिकायत है कि लग भग ६०० साल सहिष्णु रह कर हिन्दू लोग ऋषि की जागृति की घुट्टी पीकर असहिष्णु हो उठे हैं। ऐसे आक्षेपकर्त्ता भूल जाते हैं कि ऋषि दयानन्द के कार्यक्रम के दो भाग थे। एक रचनात्मक और दूसरा खण्डनात्मक। इस कार्य क्रम के दोनों भाग समस्त जीवन और समस्त साहित्य में ओत प्रोत दिखाई देते हैं। जो लोग आक्षेप करते हैं कि ऋषि दयानन्द ने हिन्दुओं को लड़ना झगड़ना सिखाया है, वह यह भूल जाते हैं कि उन्होंने हिन्दुओं को परस्पर मिलना, उदार दृष्टि से दुनिया को देखना और जाति की खातिर मरना भी सिखलाया है। ऋषि ने यदि सत्यार्थ प्रकाश का उत्तरार्द्ध लिखा है तो पूर्वार्द्ध भी लिखा है अगर भाष्यकार दयानन्द ने सायण महीधर के वेदभाष्यों की पोल खोली है तो स्वयं भी लगभग दो वेदों का भाष्य किया है। जिस पहलू को देखिये, ऋषि का कार्य क्रम दो हिस्सों में बँटा हुआ मिलेगा।

ऋषि के दो रूप थे-एक रुद्र रूप, दूसरा शिव रूप। पाखण्ड के लिए वह रुद्र रूप थे। जो व्यक्ति पाखण्ड के लिए रुद्र रूप नहीं होसकता, वह कभी सुधारक नहीं बन सकता। आजतक कभी पाप पुंज में आग लगाए बिना धर्म का यज्ञ पूरा नहीं हुआ हर एक सुधारक को पुराने कुसंस्कारों को खोद कर, और मिथ्याविचारों की काई को हटा कर मनुष्य जाति के लिये शाँतिदायक जल निकालना पड़ता है, जिसके हृदय में विदाहक

दशाओं को देख कर आग नहीं लगी वह कभी सुधार के लिए कमर कस कर खड़ा नहीं होसकता। परमात्मा का रुद्र रूप संसार को पाप से बचाता है। केवल शिव रूप से परमात्मा ब्रह्मांड को नहीं चला सकता। ऋषि दयानन्द में भी रुद्र रूप पर्याप्त राशि में विद्यमान था।

—श्री वेदालङ्कार पं० इन्द्र जी विद्या वाचस्पति।

——::०:——

दयानन्द की महत्ता

मेरे निर्बल शब्द ऋषि की महत्ता का वर्णन करने में असमर्थ हैं। ऋषि के अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्य संग्राम और उनकी कठोर तपश्चर्य्या के लिये अपने हृदय के पूज्य भावों से प्रेरित होकर ही मैं यह वन्दना करता हूँ।

मैं ऋषि को शक्ति-सुत अर्थात् कर्मवीर योद्धा समझ उनका आदर करता हूँ। सचमुच दयानन्द का जीवन, राष्ट्रनिर्माण के लिए स्फूर्तिदायक, बलदायक और अध्ययन करने योग्य है।

ऋषि का जीवन एकान्त और विरागमय था। अर्थात एकान्त और आकर्षक; एकान्त और शक्ति सम्पन्न; एकान्त और वीरतामय, एकान्त और दिव्य सुन्दर जीवन! भगवान् करे वह सुअवसर शीघ्र प्राप्त हो, जब राष्ट्रिय-पर्व की भाँति, ऋषि उत्सव सारे भारत में मनाया जाय।

दयानन्द उत्कट देशभक्त थे, अतएव मैं राष्ट्रवीर समझ उनकी वन्दना करता हूँ। उन्होंने अस्पृश्यता के ही नहीं प्रत्युत जातिबन्धन के विरुद्ध भी युद्ध किया। वह स्वदेशी, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रिय शिक्षा के प्रबल प्रचारक थे। उन्होंने नापित आदि

छोटी जाति के कहे जाने वालों को भी अपने आध्यात्मिक सखाओं की श्रेणी में सम्मिलित किया था।

क्या दयानन्द ने भारतीय संस्कृति और भारतीय सभ्यता को प्रमाणित नहीं किया ? उनका आधारभूत सिद्धान्त ब्रह्मचर्य था—भोग नहीं। सचमुच दयानन्द ब्रह्मचर्य के आदर्श का अवतार थे। उन्होंने भली भाँति अनुभव किया कि, वास्तविक भारतीय सभ्यता अध्यात्मवाद के बल पर स्थित है। इसी धारणा ने भारत को संस्कृति का सुन्दर सदन और मानवता का मंजु-मन्दिर बनाया। इसी विचार ने इतिहास के प्रारम्भ में आर्यावर्त को अन्य राष्ट्रों का पथ-प्रदर्शक सिद्ध किया।

दयानन्द का जीवन और उनके उपदेश ऋषि-युग अर्थात् भारतीय भारत के सन्देशों से ओत-प्रोत हैं। यह वही सन्देश है, जिसकी आज हमें आवश्यकता है। आधुनिक भारत की सच्ची स्वतन्त्रता अनुकरणशीलता पर नहीं प्रत्युत स्वानुभूति पर निर्भर है। भविष्य काल के ऐतिहासिक, हमारी इस शताब्दी को, 'पश्चिमीय पतन की शताब्दी' कह कर पुकारेंगे। भारत के लिए यूरोप की नक़ल करना उसका और भी अधःपतन की ओर जाना है।

अतएव मैं नवयुवकों से अनुरोध करता हूँ—अनुकरण शीलता के सुखमय मार्ग से बचो! पश्चिम के चेरे न बनो! उत्पादक शक्ति प्राप्त करो! और एक ऐसा 'नवीन भारत' बना कर दिखादो, जो श्रीराम के समय और वैदिक काल के ऋषियुग से भी विशाल और बढ़ चढ़ हो।

—साधुवर्य-टी० एल० वास्वानी।

—::०::—
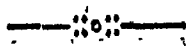
आदर्श पुरुष

दोहा

शारीरिक बल में प्रबल, विद्या बल में एक।
इस जग में अद्वैत था, जिसका आत्म-विवेक॥
जिस महर्षि का नाम था, दयानन्द भगवान्।
मैं उसके शुभ गुण कहूँ, हीरा आज बखान॥

[१] विद्या बल

दयानन्द ऋषि वीर सकल सुख सम्पति त्यागी।
दयानन्द मुनि परम धीर विद्या अनुरागी॥
देश देश में फिरे फिरे वह जङ्गल जङ्गल।
सत्य ज्ञान के लिये ढूँढ़ डाले सब जल थल॥
सह कर कष्ट कठोर चढ़े पर्वत के ऊपर।
बिल्कुल नंगे पाँव चले काँटों की भू पर॥
धूपें सही प्रचण्ड बर्फ़ में देह गलाई।
विद्या जैसी वस्तु हाथ तब इनके आई॥
ऐसे श्रम से बने चार वेदों के ज्ञाता।
मानव कुल के लिये धर्म के ज्ञान प्रदाता॥
वेद वचन का सत्यार्थ इस ऋषि ने जाना।
हम सबके कल्याण हेतु चहुँ ओर बखाना॥
घर घर किया प्रचार एक भी नगर न छोड़ा।
काशी जैसे प्रबल पोपगढ़ को भी तोड़ा॥
पीर पादरी, पोप सामने, एक न आया।
दयानन्द का रोब जगत् के ऊपर छाया॥
बजा वेद का नाद धर्म की फिरी दुहाई।
लाखों ज्ञानी पुरुष बने उसके अनुयाई॥
दयानन्द की वेद भाष्य शैली जो जाने।
विद्या का अवतार उसे माने फिर माने॥

[२] आत्मिक बल

दयानन्द का जन्म हुआ श्रुति के हित धारण।
दयानन्द का मरण हुआ वेदों के कारण॥
दयानन्द थे आर्य धर्म के पुनरुद्धारक।
दयानन्द थे आत्म ज्ञान के पूज्य प्रचारक॥
दिव्य शक्ति के पुँज परम योगी थे स्वामी।
महावीर भय रहित दया के स्रोत अकामी॥
सत्य वचन के भक्त सत्य पर मरने वाले।
सत्य हेत बलिदान प्राण तक करने वाले॥
कर्म वीर थे धर्म धुरन्धर थे यह ऋषि वर।
सत्य कथन में उन्हें नहीं होता कुछ डर॥
बाँस बरेली गये सच बोले भय तज कर।
सत्य कथन से उन्हें रोक नहिं सका कलक्टर॥
जोधपुर को गये सत्य के हित विष खाया।
एक वेद के लिये वहीं सर्वस्व गँवाया॥
पापी पामर उन्हें देख काँपे थे थर थर।
वह थे लेकिन दयावान करुणा के सागर॥
जिस पापी ने उन्हें जहर का पान खिलाया।
उसे उन्होंने हवालात से मुक्त कराया॥
और कहा क्या प्रकट हुआ हूँ क़ैद कराने।
मैं आया हूँ पाप फन्द से इसे छुड़ाने॥
जिस पिशाच ने प्राण लिये इनके विष देकर।
इनकी दया अपार हुई उसके भी ऊपर॥
उसको खुद धन दिया और नैपाल भगाया।
निज घातक को प्राण दण्ड से आप बचाया॥
जो विष देवे तुम्हें उसी को दो तुम जीवन।
तुम सा दया निधान कौन होवेगा भगवान्!

आप धन्य हो नाथ ! धन्य है दया तुम्हारी !
तुम सा होगा कौन जगत् का सङ्कट हारी ॥
परमेश्वर का भक्त प्रेम के पथ का गामी ।
तुम से बढ़ कर और कौन होगा हे स्वामी !
उसकी इच्छा जान प्राण कर दिये निछावर ।
स्वर्ग धाम को चले गये धर्मेन्द्र धुरन्धर ॥
ब्रह्मचर्य की मूर्त्ति, तेज मय हे तपधारी !
दयानन्द, हे दीनबन्धु, हे पर उपकारी !
तेरे यश का पार कहाँ तक पावे "हीरा" !
तेरी कीर्त्ति अपार कहाँ तक गावे "हीरा" ॥
तव चरणों में भक्ति सहित वह शीष नवावे ।
निज जीवन का तुझे पूज्य आदर्श बनावे ॥
बोलो मित्रो दयानन्द स्वामी की जय हो !
ऋषियों के सरताज मोक्ष धामी की जय हो !!

—श्री हीरालालजी सूद, बी० ए० लवजज ।

स्वामीजी का विशाल व्यक्तित्व

धर्म-भूमि भारतवर्ष में १९वीं शताब्दी के अनन्तर जितने भी विमल पंथ-प्रवर्त्तक या तत्व-वेत्ता हुए, उनमें महत्त्व, प्रचार तथा स्थायी कार्य्य की दृष्टि से स्वामीजी का पद बहुत ऊँचा है। २०वीं शताब्दी में पश्चिमीय भौतिकवाद का प्रचार होने के अनन्तर ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, देवसमाज, आदि कई मतमतान्तरों के प्रस्थापक पैदा हुए; पर उपयोगितावाद की दृष्टि से स्वामीजी के सिद्धान्त ही स्थायी रूप से यहाँ पर प्रचलित हो सके हैं। प्रसिद्ध धर्म-सुधारक लूथर ने जो कार्य यूरोप में किया, उससे भी अधिक ठोस कार्य स्वामीजी ने भारत में किया है। लूथर को तो

भौतिकवादी पाश्चिमात्यों से ही सामना करना था, उसे तथा उसके अनुयायियों को अनेक कष्ट भी सहने पड़े, पर स्वामीजी का कार्य्य-क्षेत्र तो अत्यन्त कण्टकाकीर्ण था। शताब्दियों से पाताल तक जमी हुई बुढ़िया-पुराण रूपी काँस की जड़ को स्वामीजी के सिद्धान्तों ने निर्बल करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यही कारण है कि उनके समकालीन स्थापित मत-मतान्तरों के अनुयायियों की संख्या आज अँगुली पर गिने जाने के योग्य रह गई है; किन्तु आर्य्यसमाज विश्वव्यापी हो गया है। कौन कह सकता है कि, यदि स्वामीजी के सिद्धान्तों में स्थायित्व न होता, तो हमारी सामाजिक प्रगति इतनी द्रुत गति से हो जाती ? आर्य-समाज के इतिहास पर दृष्टिपात करने से सहसा हमें 'योग्यतमका विजय' (Survival of the fittest) इस अमिट सिद्धान्त का स्मरण हो आता है, और वास्तव में वे ही सिद्धान्त स्थायी हो सकते हैं, जिनमें कुछ दम होता है और जो सत्य की भित्ति पर स्थापित होते हैं।

भारतवर्ष के कई प्रान्तों में घूम कर सहस्रों व्याख्यानों के द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। देश के तत्कालीन प्रायः सब ही नेता, पण्डित, राजा, धनिक आदि से उनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परिचय हुआ। स्वामी जी का पत्र व्यवहार भी ख़ासा था। इन पंक्तियों के लेखक को भी स्वामीजी के लिखे पत्रों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। वास्तव में देखा जाय तो तत्कालीन सामग्री के द्वारा श्रीस्वामीजी के जीवन की बहुत सी बातें ज्ञात हो सकती हैं। स्वामीजी के दर्शनों से पुनीत हुए अब भी सम्भवतः कुछ मनुष्य होंगे, उनसे, जिन स्थानों में स्वामीजी ने व्याख्यान दिये वहाँ से तथा तत्कालीन विभिन्न प्रान्तीय समाचार-पत्रों से भी बहुत सी बातें ज्ञात हो सकती हैं। स्वामीजी के

व्याख्यान बम्बई, अहमदाबाद; नासिक, सितारा आदि दक्षिण प्रान्तीय कई स्थानों पर हुए। लोगों ने भी बड़ी श्रद्धा से उन्हें निमन्त्रित किया और व्याख्यान सुने; पर पूना का कार्यक्रम तो बड़ा अजीब रहा। सन् १८७५ ई० के जुलाई अगस्त दो मास तक स्वामीजीके व्यक्तित्व का पूना की समस्त जनता पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि देश नेता रानाडेजी से लगाकर अति साधारण मनुष्य भी स्वामीजी की वाक्सुधा का पान करने में अहोभाग्य समझते थे। पूना जैसे विद्या के केन्द्र स्थान पर, दिन-रात सहस्रों मनुष्यों का स्वामीजी के आस-पास जमघट बना रहता था। पूना जहाँ विद्या केन्द्र है, और जहाँ उसमें बड़े बड़े अध्ययनशील, जिज्ञासु और नेता हो गये तथा हैं, वहाँ वह पर-मत-असहिष्णु भी बड़ा है। तनिक से मत भेद पर, श्रोता लोग व्याख्याता का नाक में दम कर देते और उस पर आवाज़ कसने लगते हैं। परन्तु ऐसे नगर में भी स्वामी जी का लगातार दो मास तक व्याख्यान देना और वहाँ की जनता को अपनी ओर आकृष्ट कर लेना उनके अपूर्व व्यक्तित्व का ही अद्भुत प्रभाव कहा जा सकता है। स्वामी जी के उपदेश सुनकर पूना के तत्कालीन अनभिषिक्त राजा देश-पूज्य महामति रानाडे आदि विद्वान् उनके अनन्य भक्त बन गये थे। दो महीने व्याख्यान देने के बाद ५ सितम्बर १८७५ ई० को बिदाई के दिन स्वामीजी को हाथी पर बिठा कर पूना में जुलूस निकाला गया। इस दिन कुछ विरोधी गुण्डों ने बड़ा कोलाहल मचाया और जुलूस के ऊपर कीच मिट्टी फेंकी! परन्तु निरर्थक। स्वामीजी तथा उनके साथियों ने शान्तिपूर्वक सब उपद्रव सह लिया। स्वर्गीय रानाडे की धर्मपत्नीजी ने स्वामी जी के इस प्रचार तथा जुलूस का वर्णन अपनी आत्म जीवनी में बड़ी सुन्दरता से किया है। सचमुच ऋषि दयानन्द का व्यक्तित्व महान् था। यदि परमात्मा ने उन्हें महाराष्ट्र में अधिक दिनों तक प्रचार करने का

अवसर प्रदान किया होता, तो निःसन्देह वहां अब तक समाज का बड़ा कार्य हो जाता। अब आर्यसमाज के नेताओं को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

—श्री० पं० भास्कर रामचन्द्र भालेराव।

महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव

महर्षि के आगमन काल में आर्य जाति की क्या दुरवस्था हो गई थी, इसे सोच कर सहसा शरीर में रोमांच हो जाता है। मैक्समूलर, विलसन, ग्रिफिथ और वीवर आदि विदेशी विद्वान् वेदों को बच्चों की बिलबिलाहट और गड़रियों के गीत सिद्ध कर चुके थे। राजा राजेन्द्रलाल मिश्र और रमेशचन्द्रदत्त आदि एतद्देशीय आंग्ल-विद्याविशारद विद्वान् उनकी हाँ में हाँ मिला चुके थे। काशी के संस्कृत विद्या के पारंगत पोथाधारी पण्डित भानुमती का पिटारा और अजायबघर बनाये हुए थे। उनका कथन था कि वेदों में मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, मृतकश्राद्ध, भूत-प्रेत, जादूटोना, मारण-मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, द्यूतविधान, मद्यपान, गोमेध, अश्वमेध, नरमेध, अजामेध और ऐसे ही अनेक विधान पाये जाते हैं। साधारण हिन्दू-जनता गायत्री मन्त्रों से भी विहीन हो गई थी, वैदिक गुण-कर्मानुसारिणी वर्ण-व्यवस्था का गगनचुम्बी गढ़ गिर चुका था; चतुर्दिक् चार आश्रमों की बनी हुई चहारदीवारी नष्टप्राय हो चुकी थी; ईश्वर उपासना का स्थान प्रकृति पूजा ने ले लिया था। ब्रह्मचर्य के विशाल तरुवर के मूल को बाल, वृद्ध और बहु-विवाह के कुल्हाड़े बड़ी ही द्रुतगति से काट रहे थे। बाल विधवाओं के करुण-क्रन्दन से आकाश कम्पायमान हो रहा था; अनाथों के आर्तनाद से मेदिनी थर्रा उठी थी। विधर्मियों के प्रहार से आर्यजाति का जीर्ण-शीर्ण

शरीर जर्जरीभूत हो चुका था, जिसमें मादक द्रव्य सेवन और अनेक कुरीतियों के कीड़े पड़ गये थे। भारत की ऐसी दीन-हीन दुरवस्था पर दीनानाथ को दया आई और उसने एक ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण का प्रादुर्भाव किया, जिसने आर्यसमाज की स्थापना की। जिस समय महर्षि दयानन्दजी महाराज वैदिक धर्म-प्रचारार्थ कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए, उन्हें अनेक विघ्न-बाधाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जैनी, पुरानी, किरानी और कुरानी बेतरह टूट पड़े। परन्तु महर्षि के ब्रह्मचर्य, विद्या तप और अगाध धर्म-प्रेम के सामने सब को शिर झुकाना पड़ा। महर्षि ने अपनी मिशन-पूर्ति के लिए ही आर्यसमाज की स्थापना की। मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि आर्यसमाज महर्षि की प्रतिध्वनि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं।

संसार में सेवा-धर्म अत्यन्त कठिन है, कहा भी है—सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः। आर्यसमाज के दस नियमों में से षष्ठ नियम बताता है कि—"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।" मेरी धारणा है कि उपकार और सेवा पर्यायवाची शब्द हैं; जो परोपकार के लिए तैयार होगा, वह अपनी सेवा से ही परोपकार कर सकेगा। मुझे इस बात को कहते अपार हर्ष होता है कि आर्यसमाज का इतिहास सेवा के विचार से भी अत्यन्त समुज्ज्वल रहा है। आर्यसमाज की सेवा बड़ी ही व्यापक है। आज देश में एक दर्जन से ऊपर गुरुकुल चल रहे हैं, जिनमें सहस्रों बालक-बालिकाओं को शिक्षा-दीक्षा दी जा रही है। जहाँ सहस्रों वर्षों से गुरुकुल और ब्रह्मचर्य का नाम तक मिट चुका था; स्त्रियों का पढ़ाना आश्चर्य समझा जाता था, वहाँ अल्प संख्यक होते हुए भी, गुरुकुलों का संचालन कुछ कम सन्तोष की बात नहीं है। माना कि हमें आदर्श तक पहुँचने में विलम्ब है, तथापि उसका मार्ग भी यही है। जहाँ कई कालेजों,

अनेक हाई स्कूलों द्वारा आंग्लभाषा का जनता को पाण्डित्य प्राप्त कराया है, वहाँ धार्मिक विचारों का प्रसार भी प्रभूत कराया है। ब्रह्मचर्य-प्रणाली का पुनरुद्धार कर आर्यसमाज को बाल-विवाह की जड़ ने कठिन कुठाराघात किया है। जहाँ स्त्रियों को पढ़ाना पाप समझा जाता था, वहाँ आर्यसमाज ने कन्या गुरुकुल खोल कर सहस्रों देवियों को शिक्षित किया और अनुचित पुरानी भावनाओं को धूल में मिला डाला। जहाँ ईसाई और मुसलमान सहस्रों हिन्दू बालक-बालिकाओं को प्रति वर्ष विधर्मी बनाया करते थे, वहाँ आर्यसमाज ने अनाथालयों की स्थापना करके विधर्मियों के इन अस्त्रों को भी निकम्मा बना दिया। विधवाओं की सेवा का कार्य भी जो कुछ आर्यसमाज के द्वारा हो रहा है, वह भी उपेक्षणीय नहीं है। यद्यपि यह कार्य बड़ा ही उत्तर-दायित्वपूर्ण है, तथापि इस सम्बन्ध में आर्यसमाज ने सराहनीय कार्य किये हैं। यदि बाल-विवाह भारतवर्ष से उठ जाय, तो हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि बाल-विधवा-विवाह शब्द को मुख से उच्चारण करने तक की आवश्यकता न होगी।

—राजा अवधेशसिंह बहादुर।

—::*::—

ऋषि की स्मृति में

दयानन्द हो ? हिन्दूपनकी, या तुम पहली परिपाटी हो ?
हे महर्षि ! क्या आर्य जगत् के, पथ की मूर्तिमती घाटी हो ?
सुगम अगम का संमिश्रण हो, या सदुदार वेद पाटी हो ?
अथवा तुम 'पाखण्ड खण्डिनी' विजय-पताका की लाठी हो ?

(२)

तुम ही सब कुछ हो भारत की, जागृति की पहली करवट हो।
दीना जननी की पुकार के, तुम प्रत्युत्तर रूप प्रकट हो॥

पोपों के बकवाद जाल की, आग बुझाने को जलघट हो।
लौकिक लम्पटता-लङ्का के, दाहन को हनुमान सुभट हो॥

(३)

दश दशकाव्दियाँ बीती हैं, बीत जाँयगी सहस्राब्दियाँ।
हम बिगड़े फिर बन जायँगे, यह 'है' हो जायेगी थीं हाँ॥
किन्तु दूर भावी के तल से, उट्ठेगी ध्वनि यही—'सँभलना'।
भूल नजाना विप्लवकारी, शिशु ऋषि दयानन्द का पलना॥

—नवीन।

—::०::—

स्वामी दयानन्द

उस सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् का यह अटल नियम है कि वह समय समय पर मनुष्य के सुधार के लिए किसी न किसी उच्च आत्मा को भेजता रहता है, इसी लिए कि वह अपनी शिक्षा से उनको प्रेम और शान्तिमय जीवन व्यतीत करना सिखलाये, ऐसे लोगों की शिक्षा को केवल वही लोग अविश्वास और अश्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं जो मनुष्य को परतन्त्रता के बंन्धन में रखना चाहते हैं। स्वामी जी ने भी न केवल मूर्तिपूजा और जाति बन्धन के विरुद्ध आवाज़ उठाई बल्कि और बहुत से सुधार जैसे विधवा विवाह इत्यादि के समर्थन में भी स्वामी जी ने जाति के सम्मुख जो जो सुधार रखे वे नितान्त आवश्यक और उचित थे। एक सुधारक की परीक्षा इसी कसौटी पर होती है।

—आग़ा मुहम्मद सफ़दर साहिब।

—::*::—

दोहा

आमक्षर के अर्थ का, धरलो ध्यान पवित्र।
बोध बना देगा तुझे, अमृत मित्र का मित्र॥

—महाकवि 'शङ्कर'।

स्वामीजी का सम्बन्ध

जहाँ तक हमें मालूम है स्वामी दयानन्द का सम्बन्ध अपने जीवन काल में मुसलमानों से अच्छा था और मुसलमान लोगों ने भी इन के साथ सदैव अच्छा व्यवहार किया। यहाँ तक कि जब सनातन धर्मी हिन्दू लोगों ने उनको अपना अतिथि भी बनाना पसन्द न किया तो जनाब डा० रहीमखाँ साहब ने स्वामी जी को अपने घर में जगह दी और पूज्य अतिथि के योग्य स्वागत किया। आवश्यकता है कि अब भी वैसे ही प्रेम मेल से काम लिया जाय। स्वामीजी ने हिन्दू धर्म के सुधार के लिए घोर प्रयत्न किया इसके लिए हिन्दू लोग उनके जितने आभारी हों कम है। आर्य्यसमाज की सामाजिक व शिक्षा सम्बन्धी उन्नति बहुत कुछ स्वामीजी के प्रयत्न पर ही निर्भर है

—जनाब मिर्ज़ा याक़ूब बेग साहब।

निर्भय दयानन्द

स्वामी दयानन्द एक महान् आत्मा और निर्भय पुरुष थे। वह अपने धार्मिक विश्वासों पर अटल रहे, इस लिये नहीं कि वे अपने विचारों के कट्टर पक्ष पाती थे किन्तु इस लिये कि वे सत्य के परम भक्त थे, इसी कारण अनेक हिन्दुस्तानी व अन्यदेशवासी उन पर अटूट श्रद्धा रखते हैं।

आर्य समाज एक सुधारकसमाज है, वह सब को गले लगाने के लिये तय्यार रहता है—पतित, अछूत जातियों और अन्त्यजों को अपने में मिला लेता है।

जो कुछ असहिष्णुता स्वामीजी के पश्चात् दिखलाई दे रही है वह सम्भवतः स्वाभाविक ही थी। इतने कट्टरपन के बिना

यह समाज स्यात् जीवित भी न रह सकता था यह बात कि यह न केवल जीवित रहा है किन्तु अधिकांश भारतवासियों के हित का साधन बन गया है। इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि न केवल इसने सत्य का पुनः प्रकाश किया बल्कि इसने उसे एक विशेष रूप दे दिया।

—एस० एल० पोलक।

——::o::——

महर्षि दयानन्द

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती को सदैव गत शताब्दी के उन महान् पुरुषों में से एक समझता रहा हूँ जिन्होंने परमहंस रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जैसे महान् पुरुषों की तरह नवीन हिन्दू धर्म की गहरी और दृढ़ नींव डाल दी और इसको पौराणिक भ्राँतियों से शुद्ध कर दिया।

—एस० एल मिकाएल पूना।

——::o::——

सुवक्ता दयानन्द

स्वामी दयानन्द बड़े सुवक्ता महान् तार्किक और पूर्ण उत्साही पुरुष थे। वह कार्य-क्षेत्र में हिम्मत बाँध कर कूद पड़े और लोगों को विवश किया कि वह उन की बात सुनें और उस पर विचार करें—उन्होंने सत्य के विरोधी, दोस्त-दुश्मन पर ऐसे साहस के साथ आक्रमण किया कि उनकी इस बात की उन सब लोगों को प्रशंसा करनी चाहिये जिनको यह ज्ञान है कि उन्हें कितने विरोध सहकर अपना कार्य करना पड़ा था। स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों में सत्यार्थप्रकाश सर्वोत्तम है। उन्होंने इस पुस्तक में स्पष्ट रूप से बतलाया है कि मैं हिन्दुओं में कोई नया मत स्थापित करना

नहीं चाहता बल्कि वह ईश्वरीय ज्ञान जो वेदों के द्वारा मनुष्य के लिये भेजा गया है, मनुष्यों पर पूर्णरूप से प्रकाशित कर देना ही मेरा मिशन है।

—श्रीमती जोजेफाइन रेन्सम।

—::o::—

पुष्पाञ्जलि

ऋषि दयानन्द ने प्राचीनता को पुनरुज्जीवित करने का दावा किया था किसी नवीन मत को स्थापित करने का नहीं—और मैं दृढ़ निश्चय के साथ अनुभव करता हूँ कि उन्हें यह कभी भी स्वीकार न होता यदि—आर्य समाज को किन्हीं ऐसे नामों से पुकारा जाता जो बहुधा नये विचारों या नवीन विचार विकासों को दिये जाते हैं। इसलिये वह कार्य जो ऋषि दयानन्द ने अपने लिये चुना अत्यन्त महान् था और उन्होंने उसे बड़ी उत्तमता से पूरा किया। उन्होंने वेदों को देव मन्दिरों के छिपे हुए कोनों से निकाल कर मनुष्य मात्र की पूजा के लिए रख दिया और उन सारी संकुचित सीमाओं को जो वेदों के अध्ययन के लिये कुछ मनुष्यों को रोकती थीं तोड़ दिया—एक महान् योगी होने के कारण वे पुरानी प्रथा को उसके असली मतलब को नष्ट किये बिना तोड़ने में समर्थ हो सकें उन्होंने हिन्दू धर्म के प्राचीन वृक्ष को योग्यता के साथ क़लम करके तथा उसकी खाद को बदल के उसे अधिक फल दायक बनाया—मैं अपनी भक्ति पुष्पाञ्जलि उस महान् दार्शनिक महान् संन्यासी तथा विचार शक्ति और देश भक्ति के पूजनीय आचार्य के चरणों में रखता हूँ।

—दादासाहब, जी० एस० खापर्डे।

—:o:—

स्वामी दयानन्द

जिस समय लोग अपने धर्म को छोड़ इधर उधर विधर्मी होते चले जा रहे थे उस समय विश्वास था कि अब हिन्दू धर्म का नाम लेवा मिलना कठिन होगा। उस समय अपने नियमानुसार परम पिता परमात्मा ने धर्म व जाति की रक्षा के लिये अपने परम भक्त और प्यारे पुत्र बाल ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द को भेजा—जिन्होंने हिन्दू जाति को तो विधर्मी होने से बचाया ही किन्तु भूल से गये हुए भाइयों के वापिस ले नेका भी मार्ग दिखाया इसी से आज हिन्दू जाति का नाम मौजूद है- हमें इस के लिए स्वामी जी महाराज को धन्यवाद देना चाहिए। विद्या और शिक्षा के बारे में जो काम स्वामी जी ने किया है वह अनुकरणीय है।

—श्री प्रिन्स नरेन्द्र शमशेर जंग राना बहादुर,
आफ़ नैपाल।

—::※::—

त्यागी दयानन्द

स्वामी दयानन्द जी एक बड़े सुधारक थे, उन्होंने भारतवर्ष और हिन्दू जाति के सुधारने के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया था; मतों और सिद्धान्तों के बारे में उन्हों ने बुद्ध कबीर, नानक और दूसरे सुधारकों का कार्य्य जारी रक्खा। स्वामीजी ने लोगों को हानिकारक रिवाजों से बचाने की भी बहुत कोशिश की। उदाहरणार्थ श्राद्ध, नदी स्नान से मुक्ति इत्यादि। स्वामी जी ने विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, शुद्धि और संस्कृत-प्रचार के लिए जो काम किया वह बहुत ही महत्त्व पूर्ण था। इस तरह स्वामी जी ने भारतवर्ष के वृक्ष की जड़ को पानी दिया उन के इस शुभ प्रयत्न से विविध प्रकार के मनोहर फलों की प्राप्ति होगी। स्वामी जी ने हिन्दू युवकों के हृदय में त्याग,

परोपकार और देश भक्ति की ज्योति जगादी इसी की हमारे अभागे दुःखित देश को सब से अधिक आवश्यकता थी। हिन्दूजाति को जो धर्म—शिक्षा इस समय मिली है उसका सारा श्रेय स्वामी जी को है, क्यों कि इस महर्षि ने ही त्याग की गङ्गा बहाकर उसके द्वारा उत्तरीय भारत के समस्त आन्दोलनों की पुष्प वाटिका को सिंचन किया था, भारतवर्ष के इतिहास में स्वामी जी का नाम बड़े सुधारकों की पवित्र श्रेणी में सोने के अक्षरों से लिखा जायगा। —श्री लाला हरदयालु जी एम० ए०।

—::o::—

आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द

यह बात हम सभी जानते हैं कि महर्षि श्रीस्वामी दयानन्द जी सरस्वती काठियावाड़ निवासी ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हुए थे। कौमार अवस्था ही में इन्होंने अपनी तर्कबुद्धि के द्वारा सत्यासत्य का निर्णय करना सीख लिया था इसलिए वे अवगुण जो बालकों में संग-कुसंग से स्वतः ही पैदा हो जाया करते हैं इनके पास तक न पहुँचने पाये थे। पिता इनकी कुशाग्रबुद्धि देख कर उत्तमोत्तम शिक्षा देते और सब से प्रथम उनमें धार्मिक शिक्षाएँ दृढ़ करना चाहते थे। स्वामीजी स्वभावतः सन्मार्ग-गामी थे और पिता की शिक्षा को भी ध्यानपूर्वक सुनते व मानते थे, परन्तु उनके मनमें यह खोज प्रबल रूप से लगी हुई थी कि वास्तव में कल्याणकारी मार्ग कौनसा है ? मुझ से स्वामीजी ने कहा था कि इस अन्वेषण में, मैं किंकर्त्तव्य विमूढ़ था कि शिवरात्रि का दिन आया और मुझ पर ईश्वर की कृपा हुई और मेरा ध्यान मूर्त्तिपूजादि सारहीन कर्म्मों की तरफ़ से हट गया।

स्वामीजी ने किस प्रकार गृहत्याग किया व कैसे कैसे संकट सहे इस बात से उनके जीवन-चरित्र के पाठक भली भाँति

परिचित हैं। स्वामीजी के सत्संग का जब मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ और मैंने उनमें ब्रह्मचर्य्य के कारण जो सद्गुण देखे वे इस प्रकार हैं:—

स्वामी जी पुष्टकाय, दृढ़जत्रु, और बड़े बलिष्ठ थे। उनके शरीर से इस समय के बलवानों की जो तुलना करता हूँ तो बड़ा भारी अन्तर पाता हूँ। उनके अंग-प्रत्यंग ऐसे सुदृढ़ व सुडौल थे कि वैसे आज तक देखने में नहीं आये। वे नित्य प्रति प्रातःकाल योग साधन के लिये जंगल में जाते और प्राणायाम की क्रियाएँ करते थे। एक दिन मैं भी उनके साथ गया तो उन्होंने कुछ प्राणायाम की विधि जो वे मुझे नित्य प्रति सिखाया करते थे सिखा कर विदा करना चाहा किन्तु मेरी इच्छा उनके साथ ही रहने की हुई परन्तु स्वामीजी जंगल में दौड़ लगाते थे इसलिये उन्होंने मुझसे कह दिया कि तुम इतना परिश्रम न कर सकोगे। पर मैंने नहीं माना और मैं भी उनके साथ दौड़ने लगा तो थोड़ी देर बाद थक गया और स्वामीजी बराबर दौड़ते चले गये। शायद उन्होंने पाँच मील से कम की दौड़ न लगायी होगी और लौट आने पर भी उनके फेफड़े न फूले थे। मैंने उस दिन से यह बात समझ ली कि स्वामी जी के पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का ही फल है।

स्वामी जी की स्मरणशक्ति इतनी प्रबल थी कि जो विषय एक बुद्धिमान् लिख कर भी समय पर याद नहीं रख सकता उसे वे सदैव याद रखते थे। ५० मनुष्यों के किये गये प्रश्नों का उत्तर वे स्पष्ट रीति से समझा कर प्रत्येक को अलग अलग दे देते थे। आलस्य, निद्रा, और थकान के तो स्वामीजी में चिन्ह भी न पाये जाते थे। मैंने जब देखा तभी उनको कुछ न कुछ कार्य्य करते देखा और मेरे उनके चिर-सहवास में भी ऐसा अवसर कभी नहीं मिला कि किसी समय मैंने स्वामी जी को किसी प्रकार

की औषधि सेवन करते देखा हो। वे प्रातःकाल दूध के साथ ब्राह्मी सेवन किया करते थे।

स्वामीजी की वक्तृत्व शक्ति के लिये इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उनका भाषण धारा प्रवाह, दोष रहित और ओजस्वी होता था। श्रुति व स्मृतियों के प्रमाण व शास्त्रों के वचन सुन कर लोग यह जानते थे कि स्वामी जी ने संसार भर के धर्म्म ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया है और जो कुछ वे कहते हैं निष्पक्ष, सारगर्भित और निर्भीकता से कहते थे। एक समय कुछ वेद पाठी ब्राह्मण शाहपुरा में आये और उन्होंने स्वामी जी महाराज को वेद मन्त्र सुनाये। मैंने उन ब्राह्मणों से मंत्रों का अर्थ पूछा तो उन्होंने कहा कि वेद मन्त्रों का अर्थ तो केवल ब्रह्माजी ही जानते हैं; यह सुनकर स्वामी जी ने उनसे यही मंत्र दूसरी बार बुलवा कर पूरा अर्थ कह सुनाया।

व्याख्यान के समय का यह हाल था कि उनके शरीर में एक ऊँचे दर्जे का जोश उत्पन्न होता था और उनके दिये हुए प्रमाण व युक्तियाँ अकाट्य होती थीं। किन्तु इसके विपरीत शान्ति के समय वे पूरे शान्त व गम्भीर रहते थे। व्यग्रता उनमें देखने को भी नहीं मिलती थी। देशोद्धार का नाम मैंने सबसे प्रथम स्वामी जी के ही मुख से सुना। वे बड़े देश प्रेमी थे। भारतवर्ष की हीनावस्था देख कर वे बड़े दुःखी होते थे और रातदिन देश के उद्धार की कामना करते थे। उन्होंने मुझे देश हित के अन्य साधनों के साथ यह भी साधन बतलाया कि भारतवासियों को अपने देश के हित के लिये स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करना चाहिये। ऐसा करने से देश की कारीगरी की वृद्धि होती है। विद्या बढ़ती है और धन की वृद्धि होती है। इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर उन्होंने मेरे लिये जोधपुर से देशी खादी मँगवा कर मेरे वस्त्र बनवाये।

स्वामीजी ने देशोद्धार के अन्य अनेक साधनों के साथ शुद्धि कार्य को सब से प्रथम करणीय और परमावश्यक बतलाया था और यहाँ तक कहा था कि यदि भारतवासी इस परम करणीय कार्य्य को त्याग देंगे तो हिन्दू जाति का नाम ही उठ जायगा जैसे जैसे काबुल कंधार और गजनी* से उठ गया।

हमारे महर्षि त्रिकालज्ञ थे वे अच्छी तरह से जानते थे कि संसार परिवर्तनशील है और मनुष्य चल प्रकृति वाला होता है उससे शुभाशुभ कर्म होते ही रहते हैं, और उत्थान व पतन भी अवश्यम्भावी हैं। इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर अपने आदि-व्यवस्थापकों ने शुद्धि की व्यवस्था दी है। मैंने स्वामी जी से शुद्धि के विषय में कई प्रकार के प्रश्न किये थे जिस पर उन्होंने अनेक उदाहरण व युक्तियों द्वारा मेरे मनको पूर्ण सन्तोष दे दिया था। उस समय का ऋषि के द्वारा बोया हुआ शुद्धि का बीज मेरे हृदय में अंकुरित था। उसी को लेकर मैंने इस शुभ कार्य का आरम्भ किया। मैं मानता हूँ कि अविद्या के कारण मेरे इस कार्य को इस समय भले ही कोई भला बुरा समझे परन्तु हिन्दू जाति की भावी सन्तान इस बात का निर्णय करेगी।

स्वामीजी भारतवर्ष के प्रचलित अनेक मत मतांतरों की कड़ी आलोचना करते थे। परन्तु साथ ही वे यह भी कहते थे कि रोगी को कड़वी दवा पिलाये बिना उसका रोग दूर नहीं हो सकता, इसी सिद्धान्त को लेकर मैं मत मतांतरों की कड़वी आलोचना करता हूँ नहीं तो मनुष्य मात्र से मेरा भ्रातृभाव का सम्बन्ध है, मैं उनको सत्पथ पर लाना चाहता हूँ, शुद्ध वैदिक धर्म को जो प्रकृति की थपेड़ से शिथिल हो गया है पुनः देश में प्रचलित करना चाहता हूँ। यों तो जो धर्म सच्चा है वह अपनी सचाई के

* गजनी महाराजा गजसिंह की बसाई हुई है।

गुणों के कारण सदैव स्थिर रहता है। उसका विनाश नहीं होता किन्तु मनुष्यों की मानसिक दुर्बलता के कारण वा विद्या के अभाव से उसमें कुछ परिवर्त्तन हो जाता है। यही दशा इस समय वैदिक धर्म की है। वह सत् शास्त्रों के अध्ययन से सच्चे साधु महात्माओं के उपदेशों से अपने मूल स्वरूप को पा लेगा और ईश्वर की उपासना की सच्चीविधि फिर भी भारतवर्ष में प्रचलित हो तो भारतवासी शीघ्र ही वैदिक धर्म को ग्रहण करेंगे और मिथ्या मत मतांतर मिट जायँगे।

स्वामीजी के मस्तिष्क में ऐसे ऐसे दिव्यभाव भरे थे कि मैं उनका शतांश भी वर्णन करने में असमर्थ हूँ। इसका मूल कारण यही मालूम हुआ कि महर्षि दयानन्द पूर्ण ब्रह्मचारी थे, और इसी के प्रताप से उनकी सब शक्तियाँ प्रबल थीं। उनमें ब्रह्मचर्य ही एक ऐसी वस्तु थी जिसने उनको एक असाधारण पुरुष बना दिया व देशोत्थान के वह भाव उनके मस्तिष्क में जाग्रत् किये जो वर्णनातीत हैं। मैं तो यही कहूँगा कि स्वामीजी के गुणों का वर्णन करना व उनके भाव तथा विचारों कि कुछ व्याख्या करना साधारण मनुष्यों का काम नहीं है। इस बात का अनुभव उन्हीं को है जिन्होंने कि महर्षि का सत्संग किया था।

—हिज़्हाईनैस, राजाधिराज, सर नाहरसिंहजी वर्मा बहादुर।

——::o::——

निर्भयता की मूर्ति दयानन्द

ऋषि दयानन्द ने राजपूताने में भ्रमण करते हुए मेवाड़ राज्य उदयपुर में पदार्पण किया और वहाँ महाराणा श्री सज्जनसिंहजी को मनुआदि ग्रन्थ पढ़ाये। फिर कुछ दिन पश्चात् शाहपुरा पधारे, तो यहाँ श्रीमान् मान्यवर राठौर कुल कमल दिवाकर महाराजाधिराज श्री श्री १०८ श्री जसवन्तसिंहजी को भी यह खबर सुन कर

उत्साह हुआ कि ऐसे विद्वान् संन्यासी के दर्शन करना अत्यावश्यक है। इस के बाद मुझे आज्ञा मिली कि, स्वामीजी महाराज की सेवा में जोधपुर पधारने का निमन्त्रण पत्र भेजो तथा स्वामी जी के पधारने के लिए सब प्रकार का प्रबन्ध करो। मैं उस समय असिस्टेण्ट मुसाहिब आला के पद पर नियुक्त था, इसलिए ऑफ़िशियल पत्र महाराजा साहब की आज्ञानुसार स्वामीजी की सेवा में भिजवा दिया। उसे स्वामीजी महाराज ने स्वीकार कर लिया तथा जो प्रबन्ध के लिए लिखा सो तुरन्त करा दिया गया। यहाँ स्वामीजी महाराज राजकीय कोठी में ठहराये गए और अच्छी तरह उनका आतिथ्य-सत्कार होता रहा। स्वामीजी महाराज सायङ्काल को चार से छः बजे तक नित्य वैदिक-धर्म-मण्डन तथा ईसाई आदि मतों का खण्डन किया करते थे। पाँच हज़ार के लगभग नित्य उपस्थिति होती थी और महाराजा श्री सर प्रतापसिंहजी साहब व किशोरसिंहजी साहब, रा० रा० जवानसिंहजी साहब, रा० रा० श्री सोहनसिंहजी साहब आदि जो कि संस्कृत के बड़े विद्वान् थे, नित्य उपस्थित हुआ करते थे, इसके पश्चात् रात्रि में ७।। से ८।। बजे तक नित्य श्रीमान् दरबार साहब प्राचीन इतिहास के विषय में बात-चीत किया करते थे। एक दिवस स्वामीजी ईसाई मत के विषय में कुछ कह रहे थे, उस समय फ़ैजुल्लाखाँ लेट मिनिस्टर के भतीजे मोहम्मदहुसेन ने हाथ में तलवार लेकर बल्कि मूँठ पर हाथ धर कर कहा कि, स्वामीजी हमारे मजहब के सम्बन्ध में कुछ मत कहना। उस समय निर्भय दयानन्द ने उत्तर दिया कि, मैं ईसाई मत पर बोल रहा हूँ, इसको पूरा करके तुम्हारे मोहम्मद साहब की पोल और इस्लाम मजहब की धज्जियाँ उड़ाऊँगा। फिर क्या था, थोड़ी ही देर में ज़मीन, आस्मान व सातों आस्मानों तक की व्याख्या की गई। उस समय भैया फ़ैजुल्लाखाँ ने अपने भतीजे

को बहुत डाँटा और कहा कि अब इसका जवाब क्या देता है? वहाँ से मोहम्मदहुसेन का भागना मुश्किल हो गया। न मालूम हुल्लड़ में किस समय भाग गया। परन्तु निर्भय स्वामी उसी प्रकार गरजता रहा। उस समय वहाँ मि० बीन नामक एक यूरोपियन मौजूद थे, वे व्याख्यान सुन कर इतने मुग्ध हो गए कि फूट-फूट कर रोने लगे व स्वामीजी के चरणों में टोपी रख पाँव पकड़ कर कहने लगे कि हम को अपना शिष्य बना लो। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि शिष्य बनाना मठाधीशों का काम है, हम तो सदुपदेश करते हैं, सो तुम यहाँ आया करो और सत्य को ग्रहण करो यही हमारा उद्देश्य है। इसके बाद तीन ढूँढिये आए और उनसे मूरती विषय पर वार्त्तालाप हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने मूरतियों को तोड़ कर फेंक दिया और वैदिक धर्म स्वीकार किया। स्वामीजी प्रातःकाल वायु सेवनार्थ रातानाड़ा के पहाड़ पर जाया करते थे और वहीं पर योगाभ्यास आदि किया करते थे। उस पहाड़ पर बहुधा हिंसक पशु रहते थे, इसलिए श्री दरबार साहब ने स्वामीजी से निवेदन किया और मेरे से भी कहा कि, स्वामीजी का उस पहाड़ पर अँधेरे में अकेला जाना ठीक नहीं, इसलिए उनके साथ एक रिसाले का सवार भेजने का प्रबन्ध कर दो। मैंने अपने रिसाले में से एक हैयादबख़्श नामक सवार स्वामीजी के साथ आने-जाने के लिए नियत कर दिया। जिस समय स्वामीजी को यह ज्ञात हुआ कि मेरी रक्षा के निमित्त श्रीदरबार साहब की आज्ञा से रावराजा श्री तेजसिंह ने एक सवार नियत किया है तथा वह मेरे बाहर जाने के समय तक दूर-दूर साथ रहता है, तब स्वामीजी ने उस सवार को अपने साथ जाने से रोक दिया, और कहा कि जो परमात्मा प्राणी मात्र की रक्षा करता है, वही मेरी रक्षा करेगा। तुम्हारे रक्षा करने से मैं रक्षित नहीं रहूँगा। मुझे परमात्मा ने जो

बाहुबल दिया है वही पर्याप्त है, मैं उसी का भरोसा करता हूँ। दूसरों के बल का सहारा मैं नहीं तकता हूँ। निर्भयता के इन शब्दों से हम लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा।

—श्रीमान् राव राजा तेजसिंहजी वर्म्मा जोधपुर।

——::०::——

ऋषि दयानन्द की सफलता

ऋषि दयानन्द की सफलता असन्दिग्ध है। कड़े समालोचक भी इससे इनकार नहीं कर सकते। कोई उस सफलता से प्रसन्न है, और कोई नाराज़ है, परन्तु इनकारी कोई भी नहीं हो सकता। निश्चित सफलता के कारणों पर जब विचार करने लगें तब मत-भेद आरम्भ होता है। महात्मा गांधी से पूछिये तो वह ऋषि की सफलता का एक मात्र कारण ब्रह्मचर्य को बतलायेंगे। एक कट्टर मुसलमान से प्रश्न कीजिये तो वह कहेगा कि 'एक ईश्वर में दृढ़ विश्वास ही स्वामीजी की विजय का कारण हुआ' एक आर्यसमाजी से पूछिये तो वह वेद पर विश्वास को ही कारण बतलायगा और एक मनोवैज्ञानिक पर सवाल डालिये तो वह उत्तर देगा कि 'ऋषि दयानन्द की अद्भुत सफलता का प्रधान कारण उनकी प्रतिभा थी'। एक इतिहास लेखक सभी प्रकार के विचारकों की सम्मति पर विचार करता है और गुण तथा दोषों को तोल कर देखता है, उसे कोई भी प्रश्न इतना गहन नहीं दिखाई देता कि उसका उत्तर न दे सके, और न इतना सरल ही दिखाई देता है कि उसका एक शब्द में चुभता हुआ जवाब दिया जा सके। वह सफलता के सभी कारणों को जोड़ता है और परिणाम निकालता है।

ऋषि दयानन्दजी की सफलता में तीन तरह के गुण कारण थे। (१) शारीरिक, (२) मानसिक, (३) आध्यात्मिक।

शारीरिक गुणों में से हृष्ट-पुष्ट उन्नत शरीर, तेजस्वी चेहरा, और सिंह सदृश आँखें थीं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि ऋषि की सफलता में उनके शारीरिक गुणों का एक बड़ा हिस्सा था।

मानसिक कारणों में से प्रतिभा और स्मृति प्रधान थे। प्रतिभा के कारण बड़े से बड़े वाद में सैकड़ों प्रतिपक्षियों के बीच में उनकी वाणी अटूट अर्थों का प्रयोग करती थी। स्मृति की सहायता के बिना काशी के धुरन्धर पण्डितों को कौन चुप करा सकता था? किताब की विद्या शास्त्रार्थ में काम नहीं देती। वहाँ तो याद ही सब से बड़ा हथियार है। प्रतिभा और स्मृति—यह दोनों बहिनें स्वामीजी की वशवर्ती होकर काम देती थीं।

आत्मिक गुणों में से योग, ब्रह्मचर्य और तप यह मुख्य थे। इन तीनों को संक्षेप से कहें तो 'ईश्वर विश्वास और संयम' इन दो के अन्तर्गत हो जाते हैं। यह दोनों भी एक दूसरे पर आश्रित हैं। ईश्वर विश्वास के बिना पूरा संयम नहीं हो सकता। कर्मशील उग्र आत्मिक भाव ही संयम योग और तप का आधार है।

शरीर की पुष्टि, प्रतिभा और आत्मिकता यह तीन गुण थे, जिनसे ऋषि दयानन्द को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई। किसी एक अकेले गुण को तलाश करने में दिमाग़ न लड़ा कर यदि हम ऋषि चरित्र पर व्यापी नज़र दौड़ायें तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि सर्वांगीण उत्कृष्टता ही उसके गौरव का मूल हेतु थी। यही महापुरुष के महत्त्व की निशानी है। जिसमें केवल गुणों का एक देशी विकास है वह पूरे महत्त्व तक नहीं पहुँच सकता। सर्व देशी विकास ही महत्त्व का हेतु है। जो केवल शारीरिक या केवल मानसिक गुणों पर भरोसा रखता है वह पूरी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

अपनी सर्वांगीणता के लिए ऋषि का जीवन आदर्श रूप है। इसकी व्यापक ज्योति से सदियों तक प्रजा अपने अपने दिया जलाया करेगी।

—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति।

——::०::——

स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानन्द सत्य के उपासक थे। जब उन्हें यह प्रतीत होता कि कोई वस्तु सत्य है तो वे उसका अनुसरण और प्रचार करते चाहे वह कितनी ही दुष्कर क्यों न हो।

स्वामी जी स्वदेशप्रेमी थे लेकिन उनका प्रेम केवल स्वदेश में ही आबद्ध नहीं था। वे केवल भारतवासियों का ही कल्याण नहीं चाहते थे बल्कि समस्त मानवजाति का कल्याण चाहते थे। वेद को ही ईश्वरीय वाणी मानकर विश्वास करने के कारण यह समझने में उन्हें कुछ भी देर न लगी कि वेदोक्तधर्म समस्त मानवजाति की ही कल्याण प्राप्ति का उपाय है। इसी वजह से उनकी सम्मति में वैदिकधर्म के ग्रहण करने में किसी देश की किसी जाति के किसी आदमी के मार्ग में कोई बाधा नहीं हो सकती थी। किसी विशेष जाति या विशेष वंश में जन्म लेने से मनुष्य वेदोक्तधर्म का अधिकारी नहीं हो सकता ऐसा विचार उनके मन में कदापि नहीं आ सकता था और उनकी कोटि का कोई मनुष्य ऐसा विचार कर भी नहीं सकता। इसीलिये उनके द्वारा प्रचारित धर्म में मुसलमानों तक को स्थान है, और नाममात्र की अस्पृश्य और पतित जातियों को भी आश्रय है। इससे ही यह बात स्पष्टतया समझ में आती है कि स्वामी जी मानवजाति के सम्पूर्ण अङ्गों की पुष्टि में ही कल्याण समझते थे। समाज के अङ्ग विशेष की पुष्टि उनकी समझ में पुष्टि ही नहीं थी। इसी

वजह से स्वामी जी द्वारा प्रचारित धर्म ईसाई मत को रोकने में बहुत कुछ समर्थ हुआ।

स्वामीजी की दृष्टि केवल धर्म संस्कार में ही आवद्ध नहीं थी, उन्होंने समाज के अन्यान्य अङ्गों का भी संस्कार किया। देश की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक इस त्रिविध उन्नति की ओर उनकी पूर्ण दृष्टि थी। इन सब संस्कारों को करते हुए यह बात उनकी समझ में स्पष्टतया आ गई थी कि युक्ति तर्क द्वारा यथोचित रूप से समझाये बिना केवल अनुशासन द्वारा आदमी समझ नहीं सकते। इसीलिये उन्होंने जिस ओर जो कुछ कार्य किया उसको तर्क द्वारा सब को समझाने की पूरी पूरी चेष्टा की।

शिक्षासंस्कार उनका एक प्रधान कार्य था। उन्होंने यह बात ठीक ही समझी थी कि शिक्षा को ब्रह्मचर्य के ऊपर प्रतिष्ठित किये बिना शारीरिक और मानसिक शिक्षा किसी प्रकार भी उपयुक्त नहीं हो सकती। उन्होंने प्राचीन ब्रह्मचर्य आश्रम के आदर्श का अनुसरण किया था किन्तु इस कारण उन्होंने शिक्षणीय विषय समूह को प्राचीन विषयों में ही आवद्ध नहीं रक्खा था किन्तु नवीन विषयों को भी उन्होंने ग्रहण कर लिया था। प्राचीन और नवीन दोनों के उपयुक्त योग से उनकी शिक्षाविधि सम्पूर्ण हुई थी।

वे केवल लड़कों की ही शिक्षा की व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं हुए, स्त्री शिक्षा के लिये भी उनका उतना ही उत्साह और उद्योग था। ब्रह्मचर्य पालन करके कन्याओं को भी उपयुक्त शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये यह बात उन्होंने केवल युक्ति से ही नहीं बल्कि वैदिक प्रमाणों से भी सिद्ध करदी थी। इसी के परिणाम में आज आर्यसमाज में बहुत सी कन्या पाठशालायें काम करती हुई दीख पड़ती हैं। स्वामीजी बालक और बालिका दोनों की ही शिक्षा को अनिवार्य करने के पक्षपाती थे।

बाल विवाह और वृद्ध विवाह के विरुद्ध खड़े होकर स्वामीजी ने समाज के एक और अङ्ग का बड़ा भारी कल्याण किया। पतिपुत्र हीना विधवाओं की सन्तति चलाने के लिये उन्होंने प्राचीन शास्त्रों की नियोगविधि का अनुमोदन किया। वर्त्तमान युग में नियोग के सम्बन्ध में लोकमत अत्यन्त विरुद्ध होने पर भी स्वामी जी ने जो नियोगप्रथा का अनुमोदन किया इससे यही प्रकट होता है कि नारी जाति के प्रति वे बड़ी करुणा की दृष्टि से देखते थे। विशेष विशेष अवसरों पर उन्होंने विधवा विवाह का भी समर्थन किया है।

स्वामी जी गोरक्षा के विशेष पक्षपाती थे। इस विषय में उन्होंने बड़े बड़े उच्च पदाधिकारियों से भी बातचीत की थी। आन्दोलन भी बहुत हुआ था। यद्यपि स्वामीजी की मातृ-भाषा गुजराती थी, तथापि प्रचार के लिये उन्हें हिन्दी स्वीकृत करनी पड़ी। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि स्वामी जी के द्वारा हिन्दी का महान् उपकार हुआ है। वे अँग्रेजी नहीं जानते थे लेकिन इससे उस समय भी उनके प्रचार कार्य में कोई बाधा नहीं हुई। इस समय अँग्रेजी बिना सम्पूर्ण भारत में प्रचार नहीं हो सकता किन्तु आशा है कि कुछ दिन बाद हिन्दी द्वारा ही भारत में सर्वत्र प्रचार का काम होने लगेगा।

वैदिक धर्म के साथ साथ स्वामी जी ने वैदिक साहित्य का भी बहुत प्रचार किया था। यद्यपि उनकी वेद व्याख्याप्रणाली से अनेक मनुष्य सहमत न हों तथापि इस बात में बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं है कि देशनिवासियों की दृष्टि को उन्होंने वैदिक-साहित्य की आलोचना की ओर विशेषरूप से आकर्षित किया था। उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज का प्रभाव व कार्य केवल भारत में ही नहीं बाहर भी प्रकट हो रहा है। आर्यसमाज का

अदम्य उत्साह और गम्भीर निष्ठा प्रशंसनीय है। अपने परोपकारपूर्ण कार्यों के द्वारा आर्यसमाज स्वयं ही भविष्य में खूब फूले फलेगा, यह कहना बाहुल्यमात्र है।

—पं० विधुशेखर भट्टाचार्य प्रिंसीपल।

——::o::——

स्वामी दयानन्द का गौरव

भारतीय नवयुग में, भारतीय सन्तान के नेत्रों के सामने जितने अनूठे व्यक्ति उपस्थित होंगे उनमें से एक ऐसा व्यक्ति होगा जो अन्यों की अपेक्षा एक निराली ही विशेषता लिए हुए होगा, वह अपने ढङ्ग का उसी प्रकार अपूर्व होगा कि जिस प्रकार उसके कार्य अनुपम हैं। वह व्यक्ति थे ऋषि दयानन्द। यह काठियावाड़ की भूमि थी जिसने उस सुधारक तथा नवीन प्राण संचारक को जन्म दिया था उनके आत्मा में कुछ तो उस अनूठे प्रान्त की आत्मिक और प्राकृतिक शक्ति भर गई थी, कुछ गिरनार पर्वत, चट्टानों और पहाड़ियों की विशेषता, कुछ हिन्द महासागर का नाद और उसकी शक्ति की विशेषता जिसका जल काठियावाड़ के किनारों से टकराता है, और कुछ उस मनुष्यता की विशेषता भर गई थी जो शुद्ध प्रकृति से बनी प्रतीत होती है, जिसका शरीर सुन्दर और पराक्रम पूर्ण, जिसकी स्वाभाविक बुद्धि शुद्ध और स्वाभाविक शक्ति से सम्पन्न, जो बाल्यावस्था में मृदु किन्तु ऐसी उन्नत अवस्था में थी कि जिसमें सुन्दर रचना करने की महान् शक्ति थी।

दयानन्द के कार्य करने का ढंग अन्य सब सुधारकों से निराला था। वे ऐसे पुरुष थे कि जिन्होंने रीति के विरुद्ध पदार्थों की अनिश्चित गति में अपने को नहीं डाल दिया वरन् अपने

प्रभाव का मनुष्यों और पदार्थों पर अमिट चिह्न अङ्कित कर दिया। वे ऐसे थे कि उनके नियमबद्ध कार्य ही उनके आत्मिक शरीर के पुत्र हैं, जो सुन्दर सुदृढ़ और सजीव हैं और अपने कर्त्ता के प्रत्याकृति हैं। वे एक ऐसे पुरुष थे जिन्होंने स्पष्ट और पूर्णरीति से उस कार्य को जान लिया जिसके करने के लिये वे भेजे गए थे, जिन्होंने उस कार्य के सम्पादन के लिए सारी सामग्री चुन ली और अपनी स्थिति का स्वाध्यात्मिक शक्ति द्वारा दृढ़ निश्चय कर एक सच्चे कार्य कर्ता की नाईं अपने विचारों को बड़ी दृढ़ताके साथ कार्य रूप में परिणत किया। जब मैं परमात्मा के कारखाने में इस आश्चर्य जनक शिल्पकार के स्वरूप का ध्यान करता हूँ तो विवाद और कार्य, विजय और विजय पूर्ण अध्यवसाय की मूर्तियों के झुण्ड के झुण्ड सम्मुख आउपस्थित होते हैं। तब मुझे अपने आप ही कहना पड़ता है कि वे प्रकाश-पूर्ण, परमात्मा की सृष्टि में महान योद्धा, मनुष्य और संस्थाओं को सुधारने वाले शिल्पी और उन कठिनाइयों के वीर विजेता थे, जिन्हें प्रकृति जीवात्मा के सम्मुख उपस्थित किया करती है। यह सारी बातें हमारे हृदय क्षेत्र पर उनकी कार्य रूप आत्मिकता का बड़ा प्रभाव पैदा करती हैं, इन दो शब्दों का मिलाप ही, हमारे विचारों में जिनके मध्य बड़ी विपरीतता पाई जाती है, मेरी सम्मति में दयानन्द की सच्ची परिभाषा है।

दयानन्द ने जो कुछ सीखा, बड़ी दृढ़ता से ग्रहण किया, उसे ग्रहण कर अपने भीतर ऐसा स्वरूप देकर स्थित किया, जैसा उन्होंने ठीक समझा और पुनः उन्होंने उसे ऐसे स्वरूप में प्रकट कर दिया जैसा उन्होंने ठीक समझा। उनकी वीरता के भीतर जो बात हमारे ऊपर अधिक प्रभाव उत्पन्न करती है, वह उनका आत्म-परिचय था। वे निरे प्रकृति के हाथों ढल जाने वाले नहीं थे, प्रत्युत वे जीवन और प्रकृति पर अपने स्वत्व के पहिचानने

वाले थे, जिन्हें वे इच्छानुसार बना सकने वाले पदार्थ समझते थे। हम ख्याल कर सकते हैं कि उनकी आत्मा अब भी हमारे अपर्याप्त मनुष्यत्व और कार्य की ओर देखकर ललकार रही है, "हे भारतवासियो! अपने को अनन्त समझ कर अनिश्चय पूर्वक उन्नति करने में ही न सन्तोष कर लो, किन्तु देखो कि परमात्मा तुम्हें कैसा बना हुआ देखने की इच्छा करते हैं! उनके महत्वाकांक्षा के प्रकाश में तुम दृढ़ निश्चय कर लो कि तुम्हें किस अंश तक बढ़ना है, उसे देख कर तुम प्राप्त करो, उसे जीवन से ही प्राप्त करो। तुम विचार करने वाले बनो, किन्तु साथ ही कार्य करने वाले बनो। परमात्मा के सेवक बनो, किन्तु साथ ही प्रकृति के स्वामी भी बनो।" इसी उपदेश के अनुसार वे स्वयं भी थे। वे एक मनुष्य थे कि जिनकी आत्मा में परमात्मा का प्रकाश था, उनके नेत्रों में उनकी कल्पना का तेज था और उनके हाथों में वह शक्ति थी, कि जिसके द्वारा वे अपने जीवन से अपने विचारों को कार्य का स्वरूप दे सकते थे। वे स्वयं दृढ़ चट्टान थे; उनमें शक्ति थी कि, चट्टान पर घन चला-चला कर वे पदार्थों को सुदृढ़ बना सकते थे।

दयानन्द के जीवन में हम सदैव दृढ़ चट्टान के सदृश इस कार्य रूप आत्मिकता का दर्शन करते हैं, उनके कार्य पर सर्वत्र ही पूर्णता और उनकी स्वाभाविक शक्ति की मुहर लगी हुई है। यह कैसा वास्तविक अन्तर्ज्ञान था कि कार्यारम्भ के लिए उनकी तीव्र दृष्टि बड़ी शीघ्रता से भारतीय-जीवन और नीति के मूल में पड़ी और प्रथम फल से ही मौलिक नव-जीवन के लिए बीज एकत्र किया। यह कितने महान् आध्यात्मिक-साहस का कार्य था कि उन्होंने उस पवित्र पुस्तक को यथावत् ग्रहण किया, जो अज्ञानपूर्ण भाष्य और अन्यथा अर्थों के कारण दूषित हो गया था और जिसके विषय में यहाँ तक कहा जाता था कि

यह जंगली लोगों की रचना है और उसके भीतर उसके धर्म पुस्तक होने के वास्तविक मूल्य का अनुभव किया, जिसमें हमारे उन पुरुषाओं के गम्भीर्य और तेजस्वी विचार भरे पड़े हैं, जिन्होंने इस देश और जाति की रचना की थी। यह धर्म-पुस्तक पवित्र ज्ञान, पवित्र भक्ति और पवित्र कर्त्तव्य की पुस्तक है। स्वामी दयानन्द ने वेद को युग-युगान्तर से चले आने वाले चट्टान की नाईं देखा और जो कुछ उसके अन्तर्गत उसकी तीव्र दृष्टि ने अनुभव किया, उसी के ऊपर शिक्षा, मनुष्यता और जातीयता के खड़े करने का उन्होंने साहस-पूर्ण विचार बाँधा।

स्वामी दयानन्द ने निरुक्त में से प्राचीन भारतीय भाषा तत्त्वशास्त्र (अर्थात् शब्द के मूल को जानने की विद्या) का खूब प्रयोग किया और उसी को अपना आधार बनाया, वे संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् थे, इस कारण उन्होंने अपनी उस सामग्री का बड़ी स्वतन्त्रता और बड़ी प्रबलता के साथ उपभोग किया है। संस्कृत के धातुओं के नियम से जो एक-एक शब्द के कई-कई अर्थ निकलते हैं, इस भाँति भिन्न-भिन्न अर्थ निकालने की रीति स्वामी दयानन्द की ही विशेषता है। स्वामी दयानन्द का भाष्य इस विचार को लिए हुए है कि वेदों में धर्म, आचार और विज्ञान की सचाइयों का पूर्ण विचार है। वे एक ईश्वर का प्रतिपादन करते हैं और भिन्न-भिन्न वैदिक देवता एक ही परमात्मा के गुणों के भिन्न-भिन्न नाम हैं। साथ ही वे नाम परमात्मा की शक्तियों को प्रकट करते हैं, जो कि जगत् में काम करती हुई हमें देख पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त वेदों के सच्चे अर्थों के समझ लेने से हम विज्ञान की उन सब सचाइयों को ज्ञात कर सकते हैं, जिनको आधुनिक विज्ञान ने ज्ञात किया है।

—तपस्वी श्रीयुत अरविन्दघोष।

——::o::——

प्रेम की आग

"मुझे एक आग दिखाई पड़ती है जो कि सर्वत्र फैली हुई है, अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलाने वाली है, और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही है। अमेरिका का शीतल मैदानों, अफ्रीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतों और यूरोप के विशाल राज्यों पर मुझे इस सब को जलाने वाली और सब को इकट्ठा करने वाली आग की ज्वालायें दिखाई देती हैं। इसका चर्चा निम्नस्थ देशों से उठा है, अपने सुख और उन्नति के लिए इसे मनुष्य ने स्वयं प्रज्वलित किया है। पृथ्वी पर मनुष्य ही एक ऐसा व्यक्ति है जो आग को जला कर उसे स्थायी बना सकता है, जो कि पार्थिव सृष्टि में वागीश (नातिक़) भी यही है। अतएव अपने घरों में नारकीय अग्नि भड़काने में सब से प्रथम है। हाँ, प्रोमीथस की तरह नारकीय घरों को प्रेम से पवित्र और बुद्धि से प्रकाशित करने वाले ईश्वरीय अग्नि को लाने के लिए भी यही अग्रसर है। इस अपरिमित अग्नि को देखकर जो निस्सन्देह राज्यों, साम्राज्यों और संसार भर के प्रबन्ध और नीति के दोषों को पिघला डालेगी। मैं अत्यन्त आनन्दित होकर एक उत्साहमय जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। सब ऊँचे ऊँचे पहाड़ जल उठेंगे, घाटियों के रमणीय नगर भुन जायँगे, प्यारे घर और प्रेमपूर्ण हृदय साथ साथ पिघलेंगे, पाप पुण्य संयुक्त होकर यों अन्तर्हित होंगे, जैसे सूर्य की सुनहरी किरणों में ओस। असीम उन्नति की विद्युति से मनुष्य का हृदय हिल रहा है, आज उसकी केवल चिनगारियाँ आकाश की ओर उड़ती हैं, वक्ताओं, कवियों और ग्रन्थ निर्माताओं की शिक्षाओं में इधर उधर ज्वालायें दीख पड़ती हैं। यह आग सनातन आर्य धर्म को स्वाभाविक पवित्र दशा में लाने के

लिए एक भट्टी में थी, जिसे आर्य समाज कहते हैं; यह आग भारतवर्ष के एक परम-योगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशमान हुई थी। हिन्दू और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिए चारों ओर वेग से दौड़े, परन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई कि जिसका इसके प्रकाशक दयानन्द को भी ध्यान भी न था और ईसाइयों ने भी जिनके धर्म की आग और पवित्र दीपक पहले पूर्व में ही प्रकाशित हुए थे। ऐशिया के इस नये प्रकाश के बुझाने में हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क उठी, और सर्वत्र फैल गई, सम्पूर्ण दोषों का संघटन नित्य की शुद्धि करने वाली भट्टी में जलकर भस्म हो जायगा, यहाँ तक कि, रोग के स्थान में आरोग्यता झूठे विश्वास की जगह तर्क, पाप के स्थान में पुण्य, अविद्या की जगह विज्ञान, द्वेष की जगह मित्रता, वैर की जगह समता, नरक के स्थान में स्वर्ग. दुःख के स्थान में सुख, भूतप्रेतों के स्थान में परमेश्वर और प्रकृति का राज्य हो जायगा। मैं इस अग्नि को माँगलिक समझता हूँ। जब यह अग्नि सुन्दर पृथिवी को नवजीवन प्रदान करेगीतो सार्वजनिक सुख अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ होगा।

—अमेरिका के परम विद्वान् एण्ड्रो जैक्सन डेविस।

——::c::——

आये

(१)

वैदिक ज्योति जगाने आये!
भारत का अज्ञान अँधेरा, मार भगाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(२)

भव्य भाव उर भरने आये, भला सभी का करने आये।
जगभर में पाखण्ड खण्डिनी-ध्वजा उड़ाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(३)

विद्या-व्रत आचरने आये, सिंह समान विचरने आये।
शास्त्रार्थ रण रोप निरन्तर, विजय मनाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(४)

शोक, मोह, मद हरने आये, परहित जीने मरने आये।
अघ-अवगुण बन में विवेक की, आग लगाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(५)

कर्म-परायण होने आये, बीज दया का बोने आये।
निशि वासर अति आनन्दामृत, पान कराने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(६)

शिष्टाचार सिखाने आये, सच्चा मार्ग दिखाने आये।
नव जीवन प्रद आर्य धर्म का, पाठ पढ़ाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(७)

सद्विचार फैलाने आये, वाद विवाद मिटाने आये।
शङ्का समाधान कर मानस-कमल खिलाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(८)

बोध-वारि बरसाने आये, शिक्षण चक्र घुमाने आये।
सदुपदेश कर गत गौरव की, याद दिलाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(९)

भाग्य भानु चमकाने आये, आदर-मान बढ़ाने आये।
वर्त्तमान का भूतकाल से, मेल मिलाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(१०)

प्रेम-प्रभाती गाने आये, साज समाज समाने आये।
घर घर मातृ-भूमि वेदी पर, होम रचाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(११)

छूआछूत छुड़ाने आये, नींच-ऊँच समझाने आये।
सूद्र सहित सदियों के बिछुड़ों-को अपनाने आये॥
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(१२)

दीन दशा पर रोने आये, मैली चादर धोने आये।
बन आदर्श सुधारक, बिगड़ी बात बनाने आये।
वैदिक ज्योति जगाने आये!

(१३)

शुभ सन्देश सुनाने आये, महापुरुष पद पाने आये।
'कर्ण' दिवाली के दिन दैहिक-दीप बुझाने आये।
वैदिक ज्योति जगाने आये!

—श्रीयुत 'कर्ण' कविजी।

—::०::—

स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द जी, की बातों से कोई पूर्ण रूप से सहमत न हो परन्तु इस बात को अवश्य स्वीकार करेगा कि, ये विशुद्ध आर्य संस्कृति के सुन्दर मधुर फल थे। स्वामी दयानन्द को पाश्चात्य संस्कृति का संपर्क नहीं हुआ था। वे सोलह आने भारत की वस्तु थे। केवल स्वशिक्षा=वेद-शास्त्र के बल पर ही उन्होंने इतना बड़ा कार्य किया। यदि कहीं स्वामी जी अँगरेजी पढ़े होते तो संसार यही कहता दिखलायी पड़ता कि स्वामी जी ने जो कुछ कहा, सुना, लिखा, किया वह सब पाश्चात्य संस्कृति के संपर्क में आने से हुआ; इस विषय में भारत का सौभाग्य कि इस उन्नीसवीं सदी में, जब कि पाश्चात्य संस्कृति के पैर जम चुके थे, स्वामीदयानन्द ऐसे महापुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने पौरस्त्य रीति नीति संस्कृति के बल पर पाश्चात्य संस्कृति को इस तरह पछाड़ा कि अब भारतीय भूमिभाग में फिर उसके पैर जमने कठिन हो गये। इस सदी में पाश्चात्य देश वाले स्वयं पाश्चात्य संस्कृति से ऊब उठे हैं, इसलिये उसको वहाँ से—स्वजन्म भूमि से भी धक्के मिल रहे हैं, और भारत भूभाग पर भी वह बुरी तरह लथेड़ी जा रही है। इस प्रकार पाश्चात्य संस्कृति को समुद्र में डूब जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नहीं रहा—

स्वामी दयानन्द को ऐसे समय में काम करना पड़ा जब कि पाश्चात्य व पौरस्त्य संस्कृतियों का प्रबल संघर्ष होकर पौरस्त्य संस्कृति पीछे पैर हटाने लग गयी थी। इस अंश में भगवान् शंकराचार्य से भी बढ़ कर कार्य करना पड़ा। भगवान् शंकर को तो स्वसंस्कृति वालों से ही युद्ध करना पड़ा था, स्वामी दयानन्द को दुहेरा युद्ध करना पड़ा—और कौन कहेगा कि वे विजयी नहीं हुए—

तुलना

पौरस्त्य संस्कृति	पाश्चात्य संस्कृति
१ त्याग	१ भोग
२ अभ्युदय व निःश्रेयस	२ केवल अभ्युदय
३ अध्यात्मवाद	३ भौतिकवाद
४ धर्म प्रधान	४ विज्ञान प्रधान
५ आधार वेद शास्त्र	५ आधार भौतिक शास्त्र
६ दैवी सम्पद्	६ आसुरी सम्पद्
७ इह व परलोक दोनों लोकों को मानने वाली	७ केवल इसी लोक को मानने वाली
८ विश्वबन्धुत्व	८ नाम का विश्वबन्धुत्व
९ संसार को सुख शान्ति समृद्धि का आगार बनाने की शक्ति रखने वाली	९ स्वस्व संकुचित स्वार्थ पोषिणी
१० परिणाम सुखवादिनी	१० आपातरम्य, परिणामदुःख दायिनी
११ स्वाभाविक	११ अस्वाभाविक

इस स्थूल तुलना से दोनों संस्कृतियों का भेद स्पष्ट हो जायगा। आज श्री रवीन्द्रनाथ टेगोर स्वविश्वभारती में पाश्चात्य व पौरस्त्य संस्कृतियों का सुन्दर मिलन देखने की इच्छा रखते हैं। आज श्री रवीन्द्र कवीन्द्र सांस्कृतिक स्वराज्य Cultural Swaraj की बातें कह रहे हैं, पर आज से पचास वर्ष पूर्व स्वा० दयानन्द ने कलचरल स्वराज्य की बात कही थी, यह बात भूलने को नहीं है। स्वा० दयानन्द ने जब अपनी घोषणा की थी तब संसार ने उनकी बातों का उपहास किया था, पर आज संसार

प्राय: उनकी बातों को मानने के लिये तैयार हो गया है और दयानन्द को अपना समझ रहा है, यह विस्मय की बात है। स्वामी दयानन्द प्रतिपादित स्वधर्म स्वरीति-नीति संस्कृति में "स्व" शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ के द्योतक है। उनका "स्व" जगत् का "स्व" था। उनका "स्व" जगत भर का धर्म था। उनका "स्व" जगत् भर की शिक्षा थी। उनका "स्व" संसार भर का उपकार था। उनकी शिक्षा दीक्षा 'स्व' में ही हुई थी। वे 'स्व' के ही रक्षार्थ आये व 'स्व' के लिये ही मर मिटे—भारत के सौभाग्य कि इस उन्नीसवीं सदी में स्वा० दयानन्द हुए और भारत में हुए। इस युग के तीन ही महापुरुष हुए हैं स्वा० दयानन्द, लोकमान्य तिलक, व महात्मा गांधी। लोकमान्य तिलक व महात्मा गांधी को संस्कृतियों का मिश्रित फल कह सकते हैं पर इन दोनों पर भी प्राचीन संस्कृति का ही विशेष प्रभाव रहा। स्वा० दयानन्द तो सोलह आने विशुद्ध आर्य संस्कृति का विशुद्ध सुन्दर मधुर फल था। इस बात का संसार ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर लिया है।

—नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ।

——::०::——

मङ्गल-कामना

जो न हटा मुख फेर, बढ़ा जीवन भर आगे।
जिसको साहस हेर, विघ्न भय संकट भागे॥
सबल सत्य की हार, अनृत की जीत न होगी।
ऐसे प्रबल विचार, सहित बिचरा जो योगी॥
उस दयानन्द मुनिराज का, प्रकृत पाठ जनता पढ़े।
प्रभु शङ्कर आर्यसमाज का, वैदिक बल गौरव बढ़े॥

—महाकवि शङ्कर।

धर्मोद्धारक दयानन्द

(१)

फिर दिवाली आज है, आई हुई,
फिर ऋषी की याद है छाई हुई।
आवो मिल कर उसके गुण वर्णन करें,
ध्यान द्वारा हम ऋषी दर्शन करें॥

(२)

था अँधेरा सब तरफ़ छाया हुआ,
जिसको देखो था वही अन्धा हुआ।
मूर्ति-पूजक थे सभी हिन्दू हुए,
बन गए थे आप ही पाषाण से॥

(३)

नीचता में इतने थे यह आगए,
थे मुसलमा और ईसाई हुए।
हाल था ईसाइयों का भी बुरा,
इनमें भी था भेद यह आकर पड़ा॥

(४)

कोई प्रोटेस्टेंट कैथोलिक कोई,
नास्तिक था और था बेमत कोई।
एक ईश्वर की जगह ली तीन ने,
छीन ली थी इनकी बुद्धी तीन ने॥

(५)

और हालत थी मुसलमानों की क्या,
हो चला था इनके यां हर एक खुदा।
पीर ख्वाजः हर कोई पुजने लगा,
जिसको देखो क़ब्र को झुकने लगा॥

(६)

जैनियों में जैनता थी नाम को,
वे ही सोचे करते थे हर काम को।
जीव-रक्षा करते-करते वाह! वाह!!
ईश को भी छोड़ बैठे वाह! वाह!!

(७)

गप भरा साहित्य इनका इस क़दर,
थे चकित यह आप उसको देख कर।
दुख से पीड़ित जब कि यों संसार था,
ख़ास कर भारत की थी यह दुर्दशा॥

(८)

ले रहा था हिचकियाँ यह मौत की,
भर रहा था सुबकियाँ यह मौत की।
जिसको देखो था वही यह कह रहा,
अब मरा यह. अब मरा यह, अब मरा॥

(९)

हे दयानन्द! उस समय बस आपने,
मरने वाले की अवस्था देख के।
वेद अमृत की बना कर औषधी,
की चिकित्सा ऐसी कुछ जादू भरी॥

(१०)

मौत की जिससे न फिर कुछ भी चली,
लेके मुँह अपना सा बस चलती बनी।
होगया सत्यार्थ का परकाश जब,
फिर अँधेरा शेष रह सकता था कब॥

—श्री निरंजनसिंह 'अरोड़ा'।

:o::——

स्वामी दयानन्द के निधन पर
अंग्रेजी पत्रों की सम्मतियाँ

बंगाली कलकत्ता—

स्वामी दयानन्द सरस्वती कोई साधारण कोटि के मनुष्यों में से नहीं थे। लोगों ने इनके निर्धारित धर्म मार्ग और सदुपपादित वेदार्थ को सम्मान नहीं दिया तो न दें, परन्तु हम कहते हैं कि धर्मोपदेश करने में उन की शक्ति और उत्साहादि गुण उनमें निसन्देह अद्वितीय थे। यद्यपि उन्होंने जन्म से इस असार संसार का परित्याग कर दिया था और वे पूरे योगी थे तथापि जैसा सर्वोत्तम ज्ञान उनमें देखने में आया वैसा कदाचित ही किसी अन्य में देखने में आवे। उनका परलोक होने से केवल उनके संस्थापिक समाजों की ही अनिवार्य हानि हुई हो ऐसा नहीं, किन्तु विचार पूर्वक देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनकी मृत्यु से भारत खण्ड मात्र को इस समय असीम जोखम पहुँची। उनकी अप्रतिम विद्वत्ता कभी किसी को भूल नहीं सकती। वल्कि पूर्ण निश्चय है कि सदैव समझदार लोग उनको स्वदेश का भूषण कह कह कर अपने चित्त में हुलसते रहेंगे।

हिन्दू पेट्रियट कलकत्ता—

स्वामी दयानन्द सरस्वती बड़े उत्तम वेदान्ती थे और वेदों की ऋचाओं का नया ही अर्थ करते थे। जिस समय प्रशंसित महाशय संस्कृत वोलते थे तो उनके उस भाषण की मिठाई व सुघड़ाई चित्त को अजीव आनन्द दिया करती थी।

हिन्दू आव्जरवा मद्रास—

संस्कृत के सच्चे और पूरे पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने सच्चे उत्साह के साथ काम करने वाले एक मनुष्य थे।

उनका परलोक होने से भरतखण्ड को बड़ा ज़बरदस्त सद्मा बैठा। क्या यह थोड़ा शोक है !!!

ट्रिब्यून लाहौर—

स्वामी दयानन्द हमको दारुण शोक सागर में डुबोकर परम धाम में जा विराजे, स्वामीजी महाराज के उपदेशों का प्रभाव केवल आर्य-समाजों पर ही पड़ा हो ऐसा नहीं किन्तु अन्य समस्त मत और सम्प्रदायी लोगों के जी पर भी उनके उपदेशों के सांचे का नक़्शा ऐसा जम गया है कि जिससे उन सब का आन्तरिक अभिप्राय साफ़ तबदील व बदल की कोशिश पर कोशिश कर रहा है। उनका तमाम कथन व उपदेश हम सर पर धर बैठे हैं ऐसा नहीं तो भी यह कहे बिना निर्वाह नहीं होता कि वे वास्तव में बड़े सुयोग्य पुरुष थे तथा उनकी बुद्धि अत्यन्त विशाल थी।

इण्डियन एम्पायर कलकत्ता—

आर्य समाजों के सुप्रसिद्ध संस्थापक आज़कल के परम नामवर सुधारक श्रीमान् दयानन्द जी महाराज के लोकान्तर गमन कर जाने की दारुण दुःख दाई वार्त्ता प्रसिद्ध करने का हमको बड़ा ही शोक और पश्चात्ताप होता है। उनकी अगाध विद्वत्ता खण्डनमण्डनादि अनुपम कोटिक्रम और परम प्रशंसनीय स्वातन्त्र्य प्रीति आदि अपूर्व गुण कभी किसी को भूलने वालेनहीं हैं।

इण्डियन क्रानीकल कलकत्ता—

संस्कृत का पूरा मर्मज्ञ होना आर्यों के धर्म ग्रन्थों की पारंगतता, मनोहर वाक्चातुर्य्य, उत्तम आदरातिथ्य इत्यादि जो जो दिव्य गुण उत्कृष्ट धर्मोपदेशकों में चाहिए वे सब स्वामी दयानन्द जी में निवास पा रहे थे। धर्म का ठीक ठीक सुधार होने मात्र की ग़र्ज़ से जो उन्होंने आर्यसमाज जहाँ तहाँ स्थापित किए वे थोड़े ही दिन टिकेंगे, ऐसा कोई भूल कर विचार में न लावे।

आगे हिन्दुस्तान में किस प्रकार का धर्म चलता होगा? इसका निर्णय करने के समय कभी कोई स्वामीजी को नहीं भूलेगा। हिन्दू धर्म में फिर कर पूर्ववत् शुद्धता लाकर उसमें आधे से ऊपरी परमाधुनिक पाखण्ड मतों को निकाल बाहर कर देना मात्र केवल स्वामी जी के उद्योग का मुख्य हेतु था।

गुजराज-मित्र सूरत—

हा! परम प्राचीन रीति की भाँति धर्म के सुधार करने वालों में से आज एक भरतखण्ड का अनुपम चमकीली मुकुटमणि खो गया; हा! परम पवित्र सर्वाद्य वेद ग्रन्थों का समीचीन विचार युक्त सभ्य मान्य अर्थ दिखाने वाला दयानन्दाभिमानी भास्कर का अस्त हो गया, हा! इतिहासों में निर्मल कीर्ति-ध्वजा के चमकाने वाले परम पण्डितवर का अवतार आज समाप्त हो गया, इन्होंने सिद्ध कर दिखाए वेदार्थ की सत्यता में यदि कोई सन्देह माने तो मानो परन्तु इनका उपदेश करने में औत्सुक्य, भाषा का माधुर्य, वाक्चातुर्य सब को अपने सम्मुख प्रसन्नता पूर्वक वात की बात में चुप कर देने की अपूर्व शक्ति, हृदयंगमता, सद्भाव और हेतु की निर्मलता, निश्चय किए हुए विषयों की दृढ़ता—चित्त का सीधा और सादापन, चाल ढाल और वृत्ति की स्वतन्त्रता तथैव धर्म भ्रम, मूर्ति पूजा और निरर्थक दम्भ आदि के प्रचारों से घोर संकष्ट सागर में डुबोये गए स्वदेश को फिर कर उन्नत शिखर पर धर देने की प्रबल उत्कण्ठा आदि सद्गुण अब कहीं दृष्टि गोचर नहीं होंने के! ऐसा अनुभव इस देश के प्रत्येक मनुष्य को अब सदैव आता रहेगा। हा शोक!!!

टाइम्स-पंजाब रावलपिंडी

स्वामी दयानन्द में अति प्रचुर परोपकार स्वदेशाभिमान के हेतु से उन की याद उनके देशबान्धव निरन्तर करते रहें

यह तो परम इष्ट ही है, लेकिन सत्य और निस्सीम स्वदेशाभिमान के जोड़ में और जो जो गुण दरकार होते हैं वे भी सब उन में विराजमान थे। श्री मच्छङ्कराचार्य और तत्कालीन अन्य इतर विद्या महासागरों पूर्ण तुलना के ये पंडित शिरोवतंस थे। हाल के अति निकृष्ट समय में परमोत्साह, बुद्धिमत्ता उद्योग, और दृढ़ता आदि प्रशंसनीय गुण कहीं किसी मनुष्य में खोजने से नहीं पाए जाते; वे इन में मानों कूट कूट कर परमात्मा ने भरदिए थे। उन्हीं का बताया हुआ धर्म और उनकी स्वीकार की हुई बातों को यदि कोई मान्य न करे तो मत करो परन्तु अब तक इस भारतखण्ड में जैसा अन्य और कितने ही परम सुप्रसिद्ध महापुरुष होगए हैं उन्हीं की कोटि के इस समय में एक दयानन्द जी हुए, ऐसा न मानना बड़ी ही बुजदिली कहावेगी। श्री जगदीश्वर इस कार्पण्य दोष से सब को बचावे।

'थियोसोफिस्ट'—

हमारे पत्र प्रेरक आश्चर्य में हैं कि स्वामी दयानन्द जैसे योगी को जिसमें कि योगविद्या की शक्तियें विद्यमान थीं, यह बात विदित न थी कि उनकी मृत्यु से भारतवर्ष को बड़ी हानि पहुँचेगी, क्या यह योगी नहीं थे? क्या वह महर्षि नहीं थे? हम शपथ पूर्वक कहते हैं कि स्वामीजी को अपनी मृत्यु का ज्ञान दो वर्ष पहले ही से था। उनके अन्तिम शिक्षा पत्र (वसीयत-नामे) की दो प्रतिलिपि जो कि उन्होंने कर्नल आलकट और मुझ सम्पादक के पास भेजीं (ये दो लिपियाँ हमारे पास उनके पूर्व मित्र भाव का स्मारक हैं) इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने हम से मेरठ में कई बार कहा कि, हम सन् १८८४ ई० को नहीं देखेंगे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

प्रेम से चित्त को आकर्षण करने वाले परोपकारी की मृत्यु के समाचार सुन कर कौन पुरुष था, जिसने कि सचमुच रुधिर के आँसू न बहाये हों। जिन लोगों ने उनके दर्शन किए या उनका उपदेश सुना या उनके रचित ग्रन्थ देखे थे, वे उनकी मृत्यु का समाचार सुनने पर आश्चर्य और शोक के समुद्र में डूब रहे थे। पाँच सहस्र वर्ष के पश्चात् पृथिवी की पुरानी राजधानी आर्यावर्त्त को महर्षि को उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, परन्तु कर्मगति ने उस सौभाग्य को छीन लिया। कहाँ बूढ़ा भारतवर्ष अपने सुपुत्र के यश को सुन कर प्रफुल्लित हो रहा था और कहाँ उसको उसके वियोग का दिन देखना पड़ा।

—अमेरिका का एक विद्वान्।

——::o::——

ऋषि दयानन्द के पीछे चलो, तभी कल्याण होगा ?

दयानन्द का भारत में आना श्री कृष्ण महाराज के गीता में कहे गए वचनों के अनुसार प्रतीत होता है। भारत को दयानन्द की आवश्यकता थी। आवश्यकता होने पर ही भगवान् आया करते हैं। दयानन्द महाराज का जन्म संसार के हित के लिए हुआ था। स्वामीजी नें अपने योग-बल से भारत की भावी आवश्यकताओं को कई वर्ष पहले जान लिया था। आज भारत के नेता जो कुछ कर रहे हैं वे सब स्वामीजी के कथनों की पुष्टि कर रहे हैं। हम लोगों का कर्त्तव्य है कि हम उस योगी के चरण-चिह्नों पर चलें, इसी में हमारी भलाई है। मेरी तो प्रभु से यही प्रार्थना है कि ऋषि की दी हुई शिक्षा भारत में फैले, क्योंकि भारत का सच्चा कल्याण उसी शिक्षा द्वारा ही हो सकता है।

यह राजस्थान जिस पर स्वामी जी ने विशेष कृपा की थी और जिस में अन्त समय उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी—उनका आभारी है। यहाँ के एक एक बच्चे का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि ऋषि के ऋण को चुकाये। वह ऋण तभी चुकाया जा सकता है जब वैदिक धर्म की सच्ची शिक्षा राजस्थान में फैलाई जावे। परमात्मा कृपा करें और वह दिन शीघ्र दिखावें जब हम ऋषि के सच्चे अनुयायी बन कर उनके आदेश के अनुसार जीवन व्यतीत करें।

—श्री० महाराजकुमार श्री उमेदसिंह जी शाहपुरा।

——::०::——

मैं ऋषि का आदर क्यों करता हूँ ?

ऋषि दयानन्द के देवोपम चरित्र में अनेक सद्गुणों का विकास इस प्रकार हुआ है; कि वह मुझे वरवस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। कुछ लोग महर्षि के जिस गुण को—एवं उसके विकास को दोष समझते हैं, उसे ही मैं एक महत् और आवश्यकीय गुण समझता हूँ। बालक मूलशंकर की शिवरात्रि सम्बन्धी घटना लेकर, ऋषि दयानन्द की पुराण, कुरान, बाइबिल आदि की स्वतन्त्रालोचना तक, लोग उस पर विचार-स्वातन्त्र्य और अन्य धर्मों की ओर घृणात्मक दृष्टि का लाञ्छन लगाते हैं! परन्तु उसने कब और कहाँ अन्य धर्मों पर घृणात्मक दृष्टि की है—मुझे तो इसका पता नहीं चलता। उसने यह तो कहीं नहीं कहा कि अमुक धर्म बुरा एवं घृणा योग्य है, अतः उस धर्म के अनुयायी उसे मानना छोड़ देवें। उसने 'सत्यार्थ-प्रकाश' में अन्य धर्म-सम्बन्धी जिन ग्रन्थों की आलोचना की है, वह उसके विचार-स्वातन्त्र्य का सुन्दर उदाहरण है। स्मरण रखना चाहिए; कि विचार-स्वातन्त्र्य कोई भयंकर वस्तु नहीं।

उसी से संसार में युगान्तर उपस्थित होता है—वही संसार को उत्थान के मंच पर ले जाता है। विचार-स्वातन्त्र्य से घबराना कोरी कायरता है। यदि ऋषि ने 'सत्यार्थप्रकाश' में अन्य धर्मों की स्वतन्त्रालोचना की है, तो पुण्य-कर्म ही किया है। अन्य धर्म वालों को उससे न तो घबराना चाहिए न चिढ़ना ही चाहिए। उनका कर्त्तव्य है, कि वे स्थिर चित्त से उस पर विचार करें, और उन्हें यदि ऋषि के बतलाए हुए दोष ठीक जचें, तो प्रसन्नतापूर्वक अपने धर्म का संस्कार करें। इससे तो उन्नति ही होगी। अतः ऋषि की विचार-स्वतन्त्रता पुण्य-वस्तु है। संसार उससे लाभ उठा सकता है। क्या ऋषि का यह गुण सम्मान योग्य नहीं ?

ऋषि के हृदय में अदम्य साहस की वेगवती सरिता प्रवाहित हो रही थी। संसार के सामने अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत कर उसने यह भली भाँति दर्शा दिया कि, साहस कैसी वस्तु होती है। विचारों के अनुकूल चलना सरल कार्य नहीं है। दुनिया में ऐसी आत्माओं की कमी नहीं है, जो विचार तो कुछ रखती हैं, पर आचरण दूसरे ही प्रकार का करती हैं। ऋषि ऐसी आत्माओं से परे था—अत्यन्त उच्च था। उसके विचार सदा कार्य रूप में ही प्रदर्शित होते थे। अपने निर्भीक विचार प्रकट करने तथा उनके अनुकूल आचरण करने में उसकी वेगवती कर्मधारा कभी कुण्ठित गति को प्राप्त नहीं हुई। उन दिनों आरत भारत अज्ञानान्धकार में सुप्त हो रहा था, बड़े बड़े धर्मधुरीण विद्वान् और कर्मठ पण्डित पुरानी लीक पीटने में ही अपना गौरव समझते थे। ऋषि जानता था और भली भाँति जानता था, कि मेरे विचार सुन कर भारतीय समाज में तहलका मच जायगा, सारा भारत मेरा विरोध करेगा, अनेक अज्ञानी जीव मेरे शत्रु बन जायँगे, कोई मेरी वाणी सुनने को तैयार न होगा,

पर, इन वातों से वह हत साहस नहीं हुआ। वह खूब बोला—सिंह के समान गरजा! देश के विरुद्ध रहने पर भी अपना स्वर ऊँचा चढ़ाना साधारण साहस का कार्य नहीं है। क्या ऐसा अपूर्व साहस सम्मान की वस्तु नहीं है?

अन्त में वही हुआ, जो बहुधा ऐसे महात्माओं के साथ हुआ करता है। प्रायः सारा भारत उसे शत्रु रूप में देखने लगा। मुसलमान उससे असन्तुष्ट हुए, ईसाई और जैनी उससे विगड़े और सनातन धर्मी तो उसके पीछे सत्तू बाँध कर ही पड़ गए। उसे अपमानित और त्रस्त करने में कितने प्रयत्न नहीं किये गए—पर ऋषि के पवित्र जीवन पर इन कुचेष्टाओं का रत्ती भर भी प्रभाव न पड़ा। उसके हृदय में निमिप मात्र के लिए भी म्लान भाव उत्पन्न न हुआ। उसके हृदय में विश्व-प्रेम की विमल धारा प्रभावित हो रही थी। क्या शत्रु, क्या मित्र सभी उसकी दृष्टि में एक समान थे। उसके पवित्र प्रेम की वर्षा सभी पर एक समान होती थी। 'वसुधैव कुटुम्बकं' उसकी प्रधान नीति थी। क्या आर्य, क्या मुसलमान, क्या जैनी, क्या ईसाई और क्या सनातनी सभी के लिये उसके विशाल एवं पवित्र हृदय में एक समान प्रेम की भावना विद्यमान थी। उसके इस अपूर्व विश्वप्रेम से, वे अछूत भी, जिन्हें आज भी अधिकांश भारतीय पशु से भी हीन समझते हैं; वंचित न रह सके। उसने उनके लिये मनुष्यत्व और धर्म का द्वार उन्मुक्त कर दिया। उसने धर्म के पाखण्डी ठेकेदारों को प्रेम का पाठ पढ़ाया और उन्हें वतलाया मनुष्य-मनुष्य सव एक समान हैं, मनुष्यत्व के नाते मनुष्य को चाहिए कि वह प्रत्येक मनुष्य पर प्यार करना सीखे। आज अछूत किस वस्तु को प्राप्त कर मुर्दे से जीवित हो रहे हैं? यह वस्तु ऋषि का वही विश्वप्रेम रूपी अमृत है—और कुछ नहीं। क्या विश्वप्रेम की अपूर्व साधना भी सम्मान पाने योग्य नहीं है?

भले ही उस समय देश पर उसके संदेश का विशेप प्रभाव न पड़ा हो; और ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है, पर आज उसके संदेश का मूर्तिमान स्वरूप दिखाई दे रहा है। स्वराज्य का स्वर ऊँचा हो रहा है, समाज का संस्कार किया जा रहा है, धर्म की बुराइयाँ दूर की जा रही हैं। इस सब का श्रेय स्वामी दयानन्द को है।

जहूरबख्श 'हिन्दी-कोविद'।

——::o::——

आर्यसमाज का लोकतन्त्र संघटन

श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज ने दो सभाएं अपने जीवन काल में स्थापित कीं। एक सभा अपनी सम्पत्ति का प्रवन्ध करने तथा अपने ग्रन्थों का निरन्तर प्रकाशन करने के अभिप्राय से वनाई और उसका नाम "परोपकारिणी सभा" रक्खा। उस सभा में सब सदस्य श्री० स्वामीजी महाराज ने अपनी ओर से मनोनीत किए। उनमें श्री महादेव गोविन्द रानाडे जैसे गण्य मान्य पुरुष भी सम्मिलित थे। उस सभा के प्रथम प्रधान श्री मन्महाराजाधिराज सर सज्जनसिंहजी राणा, उदयपुर थे। उनके पश्चात् श्रीमन्महाराज जेनरेल सर प्रताप सिंह, ईदर नरेश उक्त सभा के प्रधान पद पर सुशोभित हुए। आजकल श्री मन्महाराजा सर सियाजीराव गायकवाड़ उक्त सभा के प्रधान हैं। श्री मन्महाराजा सर नाहरसिंहजी, शाहपुराधीश इस सभा के चिरकाल तक मन्त्री रहे। स्वर्गीय श्री मन्महाराजा सर साहू छत्रपतिजी कोल्हापुर नरेश भी उक्त सभा के सदस्य थे।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता भी परोपकारिणी सभा के सदस्य रहे और हैं—जैसे श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज। परोपकारिणी सभा एक प्रकार से आर्य पुरुषों की

असाधारण जन सभा' है। ऐसी सभाएं सार्वजनिक सम्मति से कम प्रभावित हुआ करती हैं और इसी लिए उनका कार्य-क्षेत्र भी विशाल नहीं हो पाता। यही बात परोपकारिणी सभा पर भी लागू होती है।

दूसरी सभा जो स्वामीजी महाराज ने स्थापित की वह है "आर्यसमाज"। आर्यसमाज १८७५ ई० में स्थापित किया गया। उस समय भारत भर में प्रजा-सत्तात्मक रूप से कार्य करने वाली कोई सभा-सोसाइटी नहीं थी। १८६२ ई० के कानून द्वारा स्थापित हुई कौंसिलें नाम मात्र को ही लोक सत्तात्मक थीं। आर्यसमाज के संघटन में श्री० स्वामीजी महाराज ने अलौकिक दूरदर्शिता से काम लिया। प्रत्येक प्रान्त का आर्यसमाज समुदाय उस प्रान्त में स्थापित आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध है। किन्तु प्रत्येक आर्यसमाज अपने स्थानीय अधिकारों व कार्यों के करने में स्वतन्त्र है अर्थात् उसे 'स्थानीय स्वायत्त शासन' प्राप्त है। जहाँ कहीं कम से कम ६ आर्य हों वहाँ ही वह आर्यसमाज स्थापित कर सकते हैं। जो पुरुष अथवा स्त्री समाज के १० नियमों को स्वीकार करे और अपनी आय का शतांश समाज को दे वही समाज का सदस्य हो सकता है। आर्यसमाज का मुख्य काम "सत्य" का प्रचार और शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, धार्मिक आदि सब प्रकार की उन्नति करना है।

प्रत्येक समाज में प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष तथा पुस्तकाध्यक्ष अधिकारी होते हैं, और एक कार्यकारिणी समिति होती है जिसे अन्तरंग सभा कहते हैं। अधिकारियों तथा अन्तरंग सभासदों का निर्वाचन प्रति वर्ष होता है। प्रत्येक प्रान्त के आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों से बनी हुई प्रान्तिक सभा "आर्य प्रतिनिधि सभा" के नाम से हर एक सूबे में स्थापित है।

उक्त में प्रतिनिधि इस प्रकार लिये जाते हैं कि प्रति २५ सदस्यों पर १ प्रतिनिधि (यह नियम संयुक्त प्रान्त में प्रचलित है और अन्य प्रान्तों में भी लगभग ऐसा ही होगा)। प्रतिनिधि सभाओं में एक भी ऐसा सदस्य सम्मिलित नहीं है जो किसी न किसी समाज का प्रतिनिधि न हो।

मनोनीत सदस्य (Nominated Member) किसी भी प्रतिनिधि सभा में सम्मिलित नहीं हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्रतिनिधि सभा एक विशुद्ध निर्वाचित सत्ता है। इस विषय में हमारी प्रान्तिक आर्य प्रतिनिधि सभाएँ सूबे की व्यवस्थापिका सभाओं से जिनमें मनोनीत सदस्य भी सम्मिलित हैं, आगे बढ़ी हुई हैं।

हम समझते हैं यह आर्यसमाज के गौरव की बात है, कि वह अब तक भारतवर्ष में एक आदर्श लोकतन्त्र संस्था है। आर्यसमाज के संगठन का सर्वप्रिय होना इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि भारतीय लोगों में प्रजा-सत्तात्मक संस्थाओं को उनके गौरव अनुकूल संचालन करने की शक्ति विद्यमान है।

आर्यसमाज के लोक सत्तात्मक संघटन का प्रभाव सारे देश पर पड़ा है। आर्यसमाज के स्थापित होने से पूरे १० वर्ष पश्चात् कॉंग्रेस (राष्ट्रिय महासभा) की स्थापना हुई। परन्तु खेद है कि वह अब तक पूरे तौर पर प्रतिनिधि संस्था नहीं बन पाई है।

अनेक बिरादरी सभाएँ भी स्थापित हुई हैं। इन सभाओं से जहाँ थोड़ा सा लाभ हुआ है वहाँ सब से अधिक हानि यह हुई है कि जनता में जाति-पाँति के झूठे विचार दृढ़ हो गए हैं। किन्तु यहाँ पर उनका उल्लेख केवल इसलिए किया गया है, कि संघटन का विचार उनमें भी आर्यसमाज से आया है।

जो पुरुष आर्यसमाज में कार्य किए हुए होते हैं उनके लिए किसी सभा अथवा कौंसिल में काम करना सुगम हो जाता है, तथा वह आलोचना सहने के अभ्यासी हो जाते हैं। इससे कार्य सुगमतापूर्वक होता रहता है। आलोचना लोकसत्तात्मक संस्था की जान है।

आर्यसमाज एक विशुद्ध लोकसत्तात्मक संस्था है। अतः उसमें आलोचना का आधिक्य स्वभावतः होना ही चाहिए। यही कारण है कि लोग आर्यसमाजियों को 'बाल की खाल निकालने वाला' तथा 'लड़ाकू' कहते हैं। किन्तु उनकी यह आलोचनात्मक प्रवृत्ति सद्भावना से स्फुरित होने के कारण श्रेयस्कर ही है।

आर्यसमाज के लोकतन्त्र संघटन का प्रभाव सर्व साधारण पर बराबर पड़ता रहेगा और भारतीय जनता उससे प्रभावित होकर उस समय तक विश्राम न लेगी जब तक भारतवर्ष को स्वराज्य न प्राप्त हो जाय।

—रायसाहब श्री मदनमोहन सेठ, एम० ए० एल-एल० बी०।

——::o::——

दयानन्द संसार की सम्पत्ति थे

स्वामी दयानन्दसरस्वती हमारे महर्षियों में से एक थे। आपका जन्म हिन्दू-इतिहास के ऐसे काल में हुआ था जब कि वीरता नाम को न थी, यद्यपि उस काल में बड़ी बड़ी घटनाएं होती रहीं। आप हमारे शास्त्रों का अर्थ अपने ही निराले परन्तु श्लाघायोग्य ढङ्ग पर करते थे। यदि उपर्युक्त बातों की उपेक्षा भी कर दी जावे तो भी आपने जिस तरह से अपना जीवन व्यतीत किया और जिस तरह आपकी मृत्यु हुई वे ऐसी बातें थीं कि यदि आपका जन्म और मृत्यु दक्षिण-भारत में होते तो यद्यपि

आप मूर्ति पूजा का खण्डन करने वाले थे तथापि आपको देवताओं की पदवी दे दी जाती और आपकी मूर्ति मन्दिरों में स्थापन करके उसकी पूजा की जाती।

स्वामीजी की सार्वजनिक शिक्षा

स्वामीजी ने वर्त्तमान समय में हिन्दू धर्म की जो सेवा की वह हमारे विचार में किसी और महानुभाव ने नहीं की। परन्तु यह सब कुछ आपने एक कट्टर हिन्दू होने के रूप में नहीं प्रत्युत सर्व संसार के हिताभिलाषी के तौर पर विचार किया और शिक्षा दी। आप का अस्तित्व संसार के लिए एक बड़ी सम्पत्ति था और भारत को इस बात पर अभिमान करना चाहिए।

आपने भारत में ऐसी संस्था की स्थापना करते हुए कि जो आपके उच्च आदर्शों को क्रियात्मक रूप में ला सके, जिस बहुमूल्य आदर्श पर बल दिया वह यह था कि विस्मृत हुए भगवान् श्रीकृष्ण के सन्देश के उस भाग को जो मनुष्य-मात्र के लिए है, खोज खोज निकाला और सुरक्षित किया जाए। वह लोगों को यह सिखाता था कि जो प्रतीप और उन्नति के मार्ग में रोड़ा अटकाने वाली कुरीतियाँ हैं उन्हें तिलाञ्जलि दे दी जाय और लोग किसी और की नहीं, परन्तु परमात्मा की पूजा करें। योगीराज कृष्ण के शब्दों में यह अभिप्राय है कि यदि लोग एकाग्रचित्त से परमात्मा की पूजा करें तो वे उसके लिए स्वागत के पात्र हैं।

स्वामीजी का जीवन न केवल प्रेम का जीवन था, प्रत्युत आपकी मृत्यु जो एक घाती के हाथों हुई इस प्रकार के जीवन का महोज्ज्वल अन्त था। आपने न केवल उन लोगों को जिन्होंने आपको विष दे दिया था, क्षमा कर दिया, प्रत्युत आपने यह अपूर्व काम

किया, कि आपने उसे मुक़दमे और दंड के चंगुल से छुड़ाया। अय पुराने विचार वाले कट्टर हिन्दुओ ! मैं खुले रूप से इस बात को स्वीकार करता हूँ कि मैं भी धर्म और जन्म के लिहाज से मूर्तिपूजक ही हूँ। यदि आप इस महापुरुष के, जिसने आपके धर्म में जन्म लिया, दिव्य गुण और उनकी शिक्षाओं का मान और प्रतिष्ठा नहीं करेंगे और यदि यथाशक्ति इस समाज के उन लोगों के साथ जिसके यह संस्थापक हुए हैं उनके उच्च आदर्श के साथ सहयोग नहीं करेंगे तो आप आत्मघाती और धर्म के विरुद्ध चलने वाले सिद्ध होंगे।

—श्री विजय राघवाचार्य।

—::o::—

श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती

मैं आर्य्यसमाजी नहीं हूँ पर श्री स्वामीजी को हिन्दू जाति का रक्षक मानता हूँ, उन्होंने गिरती हुई हिन्दू जाति को बचा लिया। लोगों की आँखें खोल दीं। उनकी बदौलत वेदों का पढ़ना पढ़ाना शुरू हो गया, संस्कृत और हिन्दी का प्रचार बढ़ गया और प्राचीन संस्कारों को लोग समझने लगे। हिन्दुओं में आर्य्यत्व आगया। भारत के देशभक्तों में स्वामीजी का दर्जा बहुत ऊँचा है क्योंकि वे त्यागी-योगी और विद्वान् थे। ऐसे लोग समय से कुछ पहिले होते हैं, क्योंकि वे ऐसी बातें कहते हैं जो उस समय बुरी लगती हैं पर पीछे से सर्वसम्मति से लोग उन बातों को मानने लगते हैं। स्वामीजी आज से क़रीब सौ वर्ष पहिले पैदा हुए थे, और आज से ५८ वर्ष पहिले उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। इन सौ वर्षों में पहिले के पचास वर्षों को अन्धकार का समय समझना चाहिये और इधर के पचास वर्षों को प्रकाश का युग समझना चाहिये। यह प्रकाश हमें स्वामी

दयानन्द रूपी सूर्य से मिला है। उनसे पहिले न तो कांग्रेस थी न हिन्दू सभा, न सेवा समिति थी न सोशल कानफ्रेन्स। सब संस्थाओं के उद्देश्य का बीज वह बो गये थे इस लिये हम लोग सदा उनके अनुगृहीत रहेंगे।

—आनरेबुल राजा सर मोतीचन्द बहादुर सी० आई० ई०।

—::o::—

ऋषि दयानन्द का सन्देश

ऋषि दयानन्द का सन्देश स्पष्ट है। जिस समय मोरवी राज्य में मूलशंकर का जन्म हुआ, आदि सृष्टि उत्पत्ति का यह मूल केन्द्र, आर्यावर्त अविद्यान्धकार से आवृत हो वैदिक धर्म-कर्म को तिलाञ्जलि दे चुका था। गो-हत्या और अन्य दुराचारों से मातृभूमि कम्पायमान हो रही थी। शताब्दियों के पाशविक अत्याचारों ने धर्म की मर्यादा को छिन्न भिन्न कर दिया था। इन पचास शताब्दियों के अन्दर कई आर्य पुत्रों ने माता का क्लेश दूर करने का प्रयत्न किया। बुद्धदेव ने हिंसा का भयानक प्रचार देख कर पत्नी और पुत्र के मोह की बेड़ी को काट माता की सेवा में शेष आयु व्यतीत कर दी, परन्तु उस प्रबुद्ध आत्मा के निर्वाण पद को प्राप्त होने पर उसके अनुयायियों ने आत्मतत्व को ही भुला दिया। घोर प्रकृतिवाद रूपी नास्तिकपन के गहरे गढ़े में भारत निवासियों को गिरे देख कर शंकर स्वामी ने अपने योगबल से आत्मा का राज्य फिर से स्थापन कर दिया। भगवान शंकर के ब्रह्मधाम पधारने पर उनके शिष्यों ने एक के दस और दस के सहस्रों पन्थ चला दिये। रामानुजादि के अतिरिक्त दक्षिण और उत्तर भारत के बीसियों सन्त महात्माओं ने धर्म-रूपी सूर्य के गिर्द से अविद्या के बादलों को छिन्न-भिन्न करने का

प्रयत्न किया परन्तु ऐसे महात्माओं के प्रयत्न एकदेशी थे इसलिए प्रत्येक प्रयत्न के पीछे बादल और भी घने होते गये।

यह दशा थी जब मूलशंकर का जन्म हुआ। पूर्व प्रथा के अनुसार इस पृथ्वी पर उतरे हुए मुक्तात्मा के चारों ओर वही पुराने जाल बिछाये जाने लगे, परन्तु कल्याण स्वरूप के प्रकाश से प्रकाशित यह शंकर अन्धकार में फँसा नहीं प्रत्युत अपने अन्तरीय तेज से उसने इस अविद्यान्धकार को नष्ट कर दिया। पार्थिवपूजा को त्याग, सांसारिक बन्धनों से उदासीन हो अमृत की प्यास से प्रेरित था, जब माता पिता ने इसे विवाह के बन्धनों में बाँधना चाहा। युवावस्था के मद का आक्रमण एक ओर और हृदय की स्वच्छता दूसरी ओर—देवासुर संग्राम हो रहा था। उस समय 'मूल शंकर' के कान में एक मधुर आर्त शब्द सुनाई दिया:—

"शताब्दियों के बन्धनों से व्याकुल बीसियों आज्ञाकारी पुत्रों के वियोग से पीड़ित, कोटियों पुत्र और पुत्रियों की उपेक्षा दृष्टि से व्याकुल मैं तेरी ओर दृष्टि लगाये बैठी थी। तूने ७ वर्ष पूर्व कल्याण स्वरूप के नाम से व्रत धारण करते हुए रात्रिको अविद्या के बादल तोड़ डाले थे। मैं आशा लगाये बैठी थी कि तू मुझे बन्धनों से स्वतन्त्र करा देगा। क्या तू भी करोड़ों की तरह मुझे निराश कर देगा ?

यह मर्मवेधी शब्द दिल पर काट कर गये और मूलशंकर ने 'दयानन्द' बन कर माता के दुःख दूर करने का व्रत धारण कर लिया। किस प्रकार दयानन्द ने 'ऋषि' पद को प्राप्त होकर अपने व्रत का पालन किया इसे सारा संसार जानता है।

—स्वामी श्रद्धानन्द।

स्वामी दयानन्द का कार्य

स्वामीदयानन्द उन रोशनी के मीनारों में से एक हैं, जो संसार को सत्य-मार्ग दिखाने के लिए आते हैं और भटकते लोगों को मार्ग दिखाकर चले जाते हैं। हमारे हृदयों में स्वामी दयानन्द की प्रतिष्ठा इस कारण से सब से बढ़कर है कि उन्होंने एक ऐसे गाढ़ अन्धकार के समय जब कि जाति अधोगति के बड़े विषम भंवर में पड़ी हुई थी, आकर इसको उठाया।

मैं तो चिरकाल से इस विचार का प्रचार करता हूँ कि मुझे स्वामी दयानन्द के बताए सिद्धान्तों और फ़िलासफ़ी की पेचीदगियों से इतना अभिप्राय नहीं है जितना कि उस मार्ग से है जिस पर कि स्वामी दयानन्द ने हमारी भटकती हुई जाति को चलाने का यत्न किया। मैं यह मानता हूँ कि हम अपने आप को आर्य कहें अथवा हिन्दू। नाम में कुछ नहीं पड़ा है। स्वामी दयानन्द के जीवन का उद्देश्य यही था कि यह जाति जिसमें इतने ऋषि मुनि उत्पन्न हुए, जिसने आत्मिक विद्या और ज्ञान में इतनी उन्नति की, जिसमें भीष्म युधिष्ठिर जैसे क्षत्री और बड़े बड़े प्रतापी राजा हुए वह जाति और उसकी सभ्यता संसार में नष्ट न हो और उसकी दिनों दिन उन्नति होती रहे। इन अर्थों में मैं यह मानता हूँ कि विस्तृत रूप में हिन्दू जाति के संघठन का कार्य स्वामी दयानन्द का ही कार्य है :

—श्री० भाई परमानन्दजी एम० ए०।

—::o::—

दोहा

स्वामी सब संसार का, वह अविनाशी एक।
जिसके माया जाल में, उलझे जीव अनेक॥

—महाकवि 'शङ्कर'।

स्वामी दयानन्द का व्यक्तित्व

भारत के सामाजिक इतिहास में स्वामी दयानन्द का प्रधान स्थान है। वे ऐसे एक महापुरुष थे जो हमारी हीन दशा से हमें उभारने-मार्ग बतलाने-आये थे। वे हमारे लुप्त वैभव को हमें फिर दिखलाना चाहते थे। भूले हुए पूर्व पुरुषों की हमें याद दिलाने की उत्कट अभिलाषा रखते थे। महापुरुषों कीजीवनी के सम्बन्ध में लिखते हुए उनके मतामत की चिन्ता करना व्यर्थ और अनुपयोगी है। सबसे सबको मत भेद होता ही है। छोटे से छोटे आदमी की राय किसी खास बात में बड़े से बड़े आदमी की राय से न मिले। पर इस से बड़े का बड़प्पन नहीं घटता। स्वामी दयानन्द के जो आदेश थे वे दूसरे के नहीं; कोई उन्हें हानिकर भी समझे, स्वामी दयानन्द की शिक्षा किसी को अभीष्ट नहो, (वह उसे निरर्थक समझे) पर स्वामी दयानन्द को भारत के सामयिक इतिहास में श्रेष्ठ स्थान सब को देना ही होगा।

मैं उन के बड़प्पन की समीक्षा परीक्षा नहीं करना चाहता। किस विशेष कारण से कोई आदमी बड़ा होता है, यह बतलाना कठिन है। पर सब महापुरुषों की एक विशेषता अवश्य होती है। उन में ऐसी कोई आकर्षण शक्ति होती है जिससे सहस्रों नर नारी उनकी तरफ खिच आते हैं और उनके उपदेश के अनुसार आचरण करते हैं। हमें तो बड़प्पन इसी आकर्षण शक्ति में दीख पड़ता है। संसार के महापुरुष एक दूसरे से हर बात में पृथक हैं, पर इस बात में सब समान हैं। स्वामी दयानन्द की तरफ भी इसी प्रकार लोग आकर्षित हुए और कितने ही अग्रगण्य स्त्री पुरुष उनकी इच्छा के अनुसार कार्य करने को उत्सुकता से तत्पर हुए।

गुजरात के रहने वाले स्वामीजी का प्रधान कार्य्य केन्द्र पंजाब हुआ। वहाँ जो कुछ जीवन हम देख रहे हैं, आपके ही नाम से लोगों ने फिर अपनी पुरानी सभ्यता की ध्वजा उठाई, आप के ही प्रभाव का यह फल हुआ कि सैकड़ों वर्षों से अधोगति को जाता हुआ आर्य धर्म और आर्यसमाज एक बार फिर अपने को सम्भालने को उद्यत हुआ, अपने में से ख़राबियों को दूर कर साहस के साथ सुधार करने को दृढ़ प्रतिज्ञ हुआ और सुषुप्ति की अवस्था में पड़ी हुई भारतीय जनता को आप के अनुयायियों ने एक बार जगाया, एक बार उन्हें पुनः मनुष्य बन कर संसार में आत्मसम्मान सहित जीवन व्यतीत करने की शिक्षा प्रदान की। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में जो कुछ आज हो रहा है उसका श्रेय आपको ही है। अधिक लिखना मेरे लिए छोटा मुँह बड़ी बात है आपका नाम उज्वल रखना हमारा परम धर्म है, और आपके कहने के अनुसार चल कर अपना चरित्र संघटित कर अपने राष्ट्रिय जीवन के हरएक अंग को स्वतन्त्र बनाने के सतत् प्रयत्न में लगे रहना उससे भी अधिक आवश्यक कर्त्तव्य हमारा है।

—श्रीप्रकाश, बार० ऐट० ला०।

——::o::——

श्रेष्ठ पुरुष दयानन्द

स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के विषय में चाहे कोई मनुष्य कैसी ही राय कायम कर ले, परन्तु यह सब को मान लेना पड़ेगा कि, वह एक विशाल और श्रेष्ठ पुरुष थे। अपने देश के लिये गौरव स्वरूप थे। दयानन्द को खोकर भारतवर्ष को बहुत हानि उठानी पड़ी है।

—मि० ए० ओ० ह्यूम।

——::o::——

उदार हृदय दयानन्द

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म सुधार का बड़ा कार्य किया, और जहाँ तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वह बड़े उदार हृदय थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ईश्वरीय ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े बड़े भाष्य किए, जिससे मालूम होता है कि, वे संस्कृत से पूर्ण अभिज्ञ थे। उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था। उन्होंने विधवाविवाह की अनुमति दी, वे विवाह की योग्य आयु बढ़ाने के आन्दोलन में सहायक हुए। उन्होंने अपने को छुआछूत जात-पांत तथा ऐसे ही अन्य कुसंस्कारों से पृथक रक्खा। स्वामी जी ने मूर्ति पूजा तथा बहुदेववाद का खण्डन किया। मैडम विलवस्टकी के सम्पर्क में आने के कारण उनका नाम यूरोप में भी विख्यात हो गया था, परन्तु ज्यों ही उन्होंने मैडम का वास्तविक उद्देश्य समझा त्यों ही सारा रहस्योदघाटन हो गया और उन्होंने उसकी संस्था से तुरन्त सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। निस्सन्देह स्वामी जी एक महारथी थे और इसीलिए उनका प्रभाव दिनों दिन बढ़ता गया। यहाँ तक कि उनके प्रतिद्वन्द्वी सनातनी पण्डितों ने शायद उनको विष दे दिया—उनकी मृत्यु अचानक हो गई। आर्यसमाज नामक अब भी उनका एक महत्व पूर्ण और उन्नति शील समुदाय है, जो अपने को पाश्चात्य प्रभावों से सर्वथा दूर रखता है।

—प्रो० एफ़० मैक्स मूलर।

—::o::—

दोहा

होते हैं जिस एक से, हम सब के जन्मादि।
सत्ता है उस ईश की, शुद्ध अनन्त अनादि॥

—महाकवि 'शङ्कर'।

प्राचीन प्रणाली की पुनरावृत्ति

आर्यसमाज सर्वथा एक धार्मिक संस्था है। इसका निर्माण स्वामी दयानन्द की शिक्षा का प्रचार करने के निमित्त हुआ था। स्वामीजी उन पवित्र आत्माओं में से थे जिनका जन्म कभी कभी हुआ करता है, वे सन् १८२४ में पैदा हुए और सन् १८८३ में इनका स्वर्गवास हुआ। संक्षेप में कह सकते हैं कि इनकी शिक्षा हिन्दू धर्म को पुनः वेदों की पवित्रता की ओर लेजाने के लिए थी। मूर्ति पूजा ने हिन्दू जाति को रसातल की ओर पहुँचा दिया था, और सब प्रकार की बुराइयों की ओर अग्रसर कर दिया था। इस समय जो प्राचीन प्रणाली की पुनरावृति भारत में हो रही है, उसका श्रेय आर्यसमाज को ही है। आर्यसमाज समस्त संसार को वेदानुयायी बनाने का स्वप्न देखता है। स्वामी दयानन्द ने इसे जीवन और सिद्धान्त दिया। उनका विश्वास था कि आर्य जाति चुनी हुई जाति, भारत चुना हुआ देश और वेद चुनी हुई धार्मिक पुस्तक है······"।

—ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान सचिव मि० रेमजे मेकडोनल्ड।

—::०::—
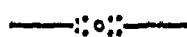
धार्मिक सुधारक दयानन्द

स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त उनके सत्यार्थप्रकाश में सन्निवेष्टित हैं। यही सिद्धान्त वेद भाष्य भूमिका में हैं। स्वामी दयानन्द एक धार्मिक सुधारक थे। उन्होंने मूर्तिपूजा से अविराम युद्ध किया।

—सर वेलन्टायन चिरौल।

सामाजिक सुधारक दयानन्द

मैंने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ कभी नहीं पढ़े। परन्तु स्वामी जी को सदैव एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक माना है, राजनीतिज्ञ नहीं। उन्होंने जब अपने ग्रन्थ लिखे वर्त्तमान राजनैतिक प्रश्नों का आभास भी नहीं था। यह न्याय-सङ्गत नहीं है कि उस समय की लिखी किसी पुस्तक के सम्बन्ध में यह धारणा करली जाय कि वह आधुनिक राजनैतिक समस्या पर लिखी गई है। मेरी सम्मति में तो आर्यसमाज का उद्देश्य धार्मिक और सामाजिक सुधार करना है, मैं भारत में १८९३ से हूँ परन्तु मैंने अब तक कभी आर्यसमाज को राज-विद्रोह दोष से दूषित नहीं सुना। उसने लड़के और लड़कियों की शिक्षा के निमित्त प्रशंसनीय कार्य किए हैं। आर्यसमाज की शिक्षा-संस्थाऐं इस उद्देश्य से बनाई गई हैं कि उन में से उत्तम चरित्र वाले और भले आदमी निकलें।

—श्रीमती एनीबीसेन्ट।

—::०::—

परमहंस दयानन्द

स्वामी दयानन्द महान् संस्कृतज्ञ और वेदज्ञाता थे। वे विद्वान् ही नहीं किन्तु एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष भी थे। वे परमहंस के गुणों से विभूषित थे। उन्होंने केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की आराधना करने की शिक्षा दी, हमारा स्वामीजी से घनिष्ठ सम्बन्ध था, और हम उनका आदर करते थे। वह ऐसे विद्वान् और श्रेष्ठ थे कि अन्य मतावलम्बी भी उनका मान करते थे। वर्त्तमान भारत में उनके समान मनुष्य मिलना अत्यन्त कठिन है।

—सर सैयद अहमद।

—::०::—

निष्कपट दयानन्द

सुधार सम्बन्धी किसी योजना को कार्य रूप में परिणत करने से पूर्व स्वामीदयानन्द सरस्वती उन लोगों से मिले जिन्होंने सुधार सम्बन्धी किसी भी प्रकार का काम किया था। इसी सिलसिले में स्वामी दयानन्द मुझ से इन्दौर में मिले। वहाँ मैं दीवान था। स्वामी दयानन्द का यह कहना कि संहिता भाग ही वास्तव में वेद हैं, ब्राह्मण तो केवल भाष्य हैं; मुझे ठीक जचता है। मैंने इनके भाष्य का अधिकांश भाग पढ़ा, और मैं कह सकता हूँ कि उनकी व्याख्या बिल्कुल शुद्ध और प्राचीन व्याख्याकारों के अनुकूल होने के कारण माननीय है। दयानन्द मुझे एक विशेष पुरुष मालूम हुए। उनका सुगठित शरीर था। वह श्रेष्ठ और निष्कपट थे। उनमें वे सब गुण थे जो किसी नेता में होने आवश्यक हैं। —दीवान बहादुर आर० रघुनाथ राव।

---::o::---

लहर के केन्द्र दयानन्द

स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के विख्यात पुरुषों की श्रेणी में एक उज्ज्वल नक्षत्र थे।.........स्वामी दयानन्द, स्वामी शङ्कराचार्य के समान तत्परता पूर्वक आगे बढ़े। स्वामीजी ने हिन्दू-धर्म की उत्तम बातों का दिग्दर्शन कराया, और बतलाया कि हिन्दू-धर्म में वह सब खूबियाँ मौजूद हैं, जिन्हें ईसाई अथवा मुसलमान अपने धर्म की विशेषता कहने का साहस करते हैं। स्वामी दयानन्द उस लहर के केन्द्र थे जो समाज को समता और पवित्रता की ओर ले जा रही थी, तथा जो उनके शिष्यों के हृदयों को सेवा और आत्मत्याग के भाव से भर रही थी।

—प्रो० एम० रङ्गाचारियर।

---::o::---

आर्यसमाज का कार्य

भारत वर्ष की जातियों में बहुत से मिथ्या विचार फैले हुए थे, कोई कुछ मानता था, कोई किसी की पूजा करता था, किसी का भी कोई निश्चित पथ नहीं था। इस मिथ्यापन और झूठे विचारों को हटाने के लिये एक आत्मा की जरूरत थी और वह आत्मा स्वामी दयानन्द के रूप में हमारे सामने आई। उसने हिन्दू जाति के अन्दर वह शक्ति (spirit) फूंकी जो कि उस समय अत्यन्त आवश्यक थी। इस मिथ्या ढकोसले को जो हिन्दू जाति में मौजूद था, स्वामी दयानन्द के स्थापित किए हुए आर्य-समाज ने बिल्कुल हटा दिया। और कोई भी सोसायटी इस योग्य नहीं थी जो इस काम को करती जिसको कि आर्यसमाज ने किया। आर्यसमाज की सफलता का मुख्य कारण यह है कि हिन्दू लोग आर्यों की बातों को बनिस्वत और मजहब वालों के जल्दी मान लेते हैं क्योंकि आर्यसमाजी हिन्दुओं के ही अंगभूत हैं और उन्हीं में रहते हैं। अन्य मत वालों का प्रभाव हिन्दुओं पर उतना नहीं पड़ सकता।

इस मेरी बात का प्रत्यक्ष रूप में भी समर्थन होता है। जब मैं देखता हूँ कि कोई भी हिन्दू जब आर्यसमाज में आता है तो उसमें बहुत विशेषता आ जाती है। उसके अन्दर उत्साह, देश भक्ति, कर्मशीलता और एक नई अजीब तरह की स्प्रिट काम करने लगती है। उसमें एक नवीन जीवन आजाता है। आर्य समाज का दृढ़ संघटन, जिसकी मैं बार बार तारीफ करूँगा इसका एक अच्छा सबूत है। वही हिन्दू जो हिन्दू रह कर कुछ न करते थे, आर्य समाज में आकर एक संघटन में बँध जाते हैं और हर तरफ़ जोश दिखलाते हैं।

देश के कामों में ही लीजिये। जब तक और लोग स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे स्वामी दयानन्द और आर्य समाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार करने लगे थे। मैं खुशी के साथ कहता हूँ कि असहयोग के जमाने से पहले करीब ६० फ़ीसदी आर्यसमाजी स्वराज्य के कामों में हिस्सा लेने वाले और लीडर थे जब कि और सोसायटियों के मुश्किल से २-३ फ़ीसदी आदमी ही स्वराज्य का काम करते थे। सब से पहले आर्यसमाज के मेम्बर ही स्वराज्य के मैदान में उतरे और वही शुरूआत में हमारे लीडर बने। अब भी, जब कि और मतों के आदमी भी स्वराज्य में अधिक भाग लेने लगे हैं, आर्यसमाजी मेम्बरों की तादाद सब से अधिक होगी ऐसा मेरा ख्याल है।

—श्री मौलाना हसरत मुहानी साहब।

स्वामी दयानन्द और हिन्दी

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वामीजी महाराज को देववाणी परम प्रिय थी, वे उसके भक्त थे और हृदय से उसका प्रचार चाहते थे। परन्तु साथ ही वे बड़े ही दूरदर्शी थे, वे इस बात को भी भली भाँति जानते थे कि हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो बहुत ही सरल है, और जिसे लोग थोड़े परिश्रम से अल्प काल ही में सीख सकते हैं। उनका अनुभव, जो उन्होंने भारतवर्ष के कोने कोने में भ्रमण करके प्राप्त किया था, यह बतलाता था कि हिन्दी को थोड़ा बहुत सभी प्रान्त वाले समझने में समर्थ हो जाते हैं, और जो लोग इसे समझ नहीं सकते वे केवल थोड़े ही प्रयत्न से इसका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अन्य ऐसी कोई भाषा नहीं जिसके सीखने में सब को इतनी सुगमता हो और जिसके जानने

वाले इतनी अधिक संख्या में हों। स्वामीजी भारत माता के सच्चे सपूत थे, वे भारतवर्ष को स्वतन्त्र बनाना चाहते थे वे अपनी भूमि को उन्नति की अवस्था में देखना चाहते थे; अतः वे यहाँ की एक राष्ट्र भाषा बनाने के लिये भी बड़े ही लालायित थे, और उसके लिए उन्होंने प्रयत्न भी किया। उनके अनुभव के अनुसार वह भाषा हिन्दी थी जिसे राष्ट्र भाषा बनने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता था और है। यही कारण है कि स्वामीजी ने अपनी पुस्तकों को हिन्दी में ही लिखा है। और वेदभाष्य तक में मंत्रों के पदार्थ तथा भावार्थ हिन्दी में दिये हैं, जिससे सबको उनके समझने और मनन करने में सुगमता हो। मनुष्य को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए वरन् सब की उन्नति समझनी चाहिए, भला इस सिद्धान्त के मानने वाले ऋषि के लिए यह कैसे सम्भव था कि स्वार्थ वश केवल मातृभाषा के भण्डार की वृद्धि का ध्यान रख कर गुजराती में ही अपनी पुस्तकें लिख कर सम्पूर्ण भारतवर्ष की उन्नति का ध्यान भुला देता; और उस भाषा की, जिसको कि उसके विचार से भविष्य में राष्ट्र भाषा होने का सौभाग्य प्राप्त होने वाला हो, अवहेलना करता।

साठ वर्ष पहले जिस बात को स्वामी जी महाराज ने अपने दिव्य चक्षुओं से देखा था, और जिस का अनुमान किया था वह सब अंशतः तो सत्य हो चुकीं, पक्षपात की ऐनक आँखों पर लगी होने के कारण बहुत से लोग चाहे उन बातों को न मानें। और शीघ्र ही समय आने वाला है जब स्वामी जी की शिक्षा ठीक और लाभकारी सिद्ध होगी। और प्रत्येक भारत माता के शुभचिन्तक को उसके, सिद्धान्तों के आगे कृतज्ञता पूर्वक देश के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए अपना मस्तक झुकाना पड़ेगा तथा महर्षि के उपकारों को मानना पड़ेगा। आज भारतवर्ष के राष्ट्रपति—संसार के सब से बड़े आदमी—कांग्रेस के मुख्य

पर चढ़े हुए अपने भाषण में कहते हैं कि सम्पूर्ण भारतवर्ष की राष्ट्र सम्बन्धी कार्यों के लिए-भाषा हिन्दुस्तानी होनी चाहिए।

हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने का यदि किसी को वास्तव में श्रेय प्राप्त है तो उस व्यक्ति को जिसने अर्द्ध शताब्दी पूर्व (जब कि हिन्दी का भविष्य अन्धकार-मय था और उसके बच्चे जिन पर वह आशा करती थी उसे अपनी नादानी तथा अदूरदर्शिता के कारण ठुकराते थे) दूसरे प्रान्त का, निवासी होते हुए तथा संस्कृत का अगाध विद्वान् होने पर भी अपनी पुस्तकों को हिन्दी में लिखा हो और साथ ही अपने अनुयायियों के लिए यह नियम बना दिया हो कि हिन्दी जानना सब के लिए परम आवश्यक है। वह महान् पुरुष, हिन्दी का सच्चा सेवक, गिरे हुओं को उठाने वाला और कोई नहीं वरन् आर्यसमाज का प्रवर्त्तक, वैदिक धर्म का उद्धारक ऋषि दयानन्द सरस्वती था।

इस समय तो स्वामी जी की लिखी हुई अमूल्य पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश का—जिसके सम्बन्ध में पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जी का कहना है कि "मैंने सत्यार्थ प्रकाश को कम से कम अठारह बार पढ़ा। जितनी बार मैं उसे पढ़ता हूँ, मुझे मन और आत्मा के लिए कुछ—नवीन भोजन मिलता है। पुस्तक गूढ़ सचाइयों से भरी पड़ी है,"—अनुवाद कितनी ही भाषाओं में हो गया है और प्रचार की दृष्टि से यह परम सन्तोष की बात है। परन्तु कुछ समय हुआ किसी व्यक्ति ने मुझे बतलाया था, और आज भी वे शब्द मेरे कानों में उसी प्रकार गूंज रहे हैं। जैसे कि समाज के किसी हितैषी ने श्री महाराज से सत्यार्थप्रकाश का किसी दूसरी भाषा में अनुवाद करने की आज्ञा चाही, और कहा कि इससे आपके सिद्धान्तों का अधिक प्रचार होगा। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यदि कोई व्यक्ति सत्यार्थप्रकाश को पढ़ना चाहता है और वास्तव में उसके पढ़ने के लिए उत्सुक है तो उसे हिन्दी में

पढ़ना चाहिए और यदि हिन्दी नहीं जानता तो उसे सीख ले। इस उत्तर को जितनी वार दुहराया जावे और इसका जितना आदर किया जावे उतना ही थोड़ा है।

स्वामीजी ने सम्पूर्ण आर्यसमाजियों के लिए हिन्दी पढ़ना और लिखना अनिवार्य कर दिया। जहाँ उन्होंने आर्यसमाज के दस नियमों में वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म बतलाया है, वहाँ ही उपनियमों में हिन्दी का पढ़ना और उसका जानना आवश्यक ठहराया है। इस सम्बन्ध में मिश्र बन्धु हिन्दी साहित्य के संक्षिप्त इतिहास में दयानन्द काल के अन्तर्गत कहते हैं कि—इन्होंने अर्थात् स्वामी दयानन्द ने गम्भीर गवेषणा पूर्ण कई उत्तम ग्रन्थ (धार्मिक) खड़ी बोली गद्य में लिखे और अपने समाज का यह एक मुख्य नियम कर दिया कि प्रत्येक सदस्य हिन्दी की सहायता करे। स्वामी जी द्वारा हिन्दी का भारी उपकार हुआ है।

गुरुकुलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। पंजाब जैसे प्रदेश में जहाँ मुसलमानों का शासन सब से अधिक समय तक रहा, जहाँ मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या है, जिनके साथ हिन्दुओं का चौबीस घंटे का साथ है और जो उर्दू के अनन्य भक्त हैं, जहाँ कुछ वर्षों पहले हिन्दी की चिट्ठी पढ़ने वाले भी कठिनता से मिलते थे, वहाँ आज हिन्दी का खूब प्रचार हो रहा है। बालकों की शिक्षा का प्रारम्भ 'अलिफ़ बे' से न होकर प्रायः 'अ, आ, इ, ई' से होता है। विश्वविद्यालय की ओर से हिन्दी की विशेष परीक्षाएँ होती हैं। समाचार पत्र हिन्दी में निकलने प्रारम्भ हो गए हैं। उर्दू की भाषा में भी हिन्दी के शब्दों की खिचड़ी रहती है। प्रत्येक बड़े बड़े नगर में प्रतिनिधि सभा की संरक्षकता में डी० ए० वी० अथवा अन्य आर्यसमाजी संस्थाएँ

स्थापित हैं जिनमें हिन्दी की पढ़ाई होती है, और जिनके द्वारा हिन्दी का सन्देश स्थान स्थान पर पहुँचाया जाता है। केवल पचास वर्ष के ही काल में आर्यसमाज ने लाखों की संख्या में हिन्दी के ट्रैक छपवा कर बँटवा दिए, और धर्म प्रचार के साथ ही साथ हिन्दी भाषा का प्रचार किया। इसका श्रेय किसी और को नहीं वरन् दयानन्द और उनके अनुयायियों को ही है।

—श्री प्रो० अयोध्यानाथ शर्मा।

——::o::——
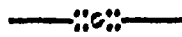
ऋषि दयानन्द और प्रवासी भारतीय

प्रत्येक उपनिवेश में इस समय ऐसे मनुष्य विद्यमान हैं जिन्होंने श्रद्धापूर्वक वैदिक धर्म की शिक्षा ग्रहण की है। मेरे पूज्य मित्र मि० एण्ड्रयूज साहब के शब्दों में "पृथ्वी के हर भाग में मुझे ऐसे नवयुवक मिले जिन्होंने ऋषि दयानन्द के जीवन से ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त की। मैं उनसे स्वयं मिला हूँ और अपने ज्ञान से लिखता हूँ। मैं साक्षी देना चाहता हूँ कि उनका धर्म उनके लिये एक जीता-जागता ईश्वरीय ज्ञान रहा है। स्वदेश से सहस्रों कोस दूर रह कर इन नवयुवकों ने मनुष्य समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों को नहीं भुलाया किन्तु बारम्बार अगणित प्रलोभनों में रह कर अपने आर्यधर्म पर दृढ़ रहे।"

श्रद्धेय एण्ड्रयूज साहब ने उपर्युक्त पंक्तियों में प्रवासी आर्यों का ऐसा सुन्दर चित्र चित्रित किया है जिस पर समस्त आर्य-संसार अभिमान से मस्तक ऊँचा कर सकता है। यदि कोई उपनिवेशों में जाकर आर्यसमाज की शक्ति की जाँच करे तो उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रहेगी। जहाँ आर्य उपदेशक आज तक नहीं पहुँच पाये हैं वहाँ भी ऋषि दयानन्द की शिक्षा पहुँच

गयी है। प्रवासी भाइयों के उद्धार में आर्यसमाज का जो स्थान है उसका संक्षेप में वर्णन करने पर भी एक छोटी सी पोथी बन जायगी। इसलिए हम आर्यसमाज के कार्य का दिग्दर्शन मात्र करा देना पर्याप्त समझते हैं।

सब से पहले सन् १८३४ में मोरिशस द्वीप में प्रवासी भारतीय मजदूरी करने के लिए गए। वहाँ लगभग अढ़ाई लाख भारतीय पहुँच गए, किन्तु सन् १९१० से पहले उनकी धार्मिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। अनेक नवयुवक हिन्दू धर्म को तिलाञ्जलि देकर ईसाई हो रहे थे और जो हिन्दू कहलाते भी थे उनका कोई खास धर्म था ही नहीं। चमार के घर में भोजन नहीं करना, दुसाध को छूना नहीं, विधवा का विवाह नहीं करना, झंडा उड़ाना और बाबा जी को पावलगी करना यहीं उनका मुख्य धर्म हो रहा था। मोरिशस प्रवासी हिन्दुओं की इस संकटपूर्ण स्थिति में जिसने वहाँ पहले पहल आर्यसमाज की स्थापना की और वैदिक धर्म का प्रचार, आर्य संसार को यह जान कर आश्चर्य होगा कि वह स्वयं आर्यसमाजी न था किन्तु उसने देखा कि आर्यसमाज का सहारा लिए बिना प्रवासी भारतियों का उद्धार करना कठिन नहीं वरन् असम्भव है। इसलिए उसने सन् १९१० में कुछ पंजाबी सिपाहियों की सहायता से पोर्टलुईस में आर्यसमाज की स्थापना की। उस समय समाज में १०-१२ से अधिक मनुष्य न थे, किन्तु आज मोरिशस में हजारों मनुष्य आर्यसमाज की छत्र छाया में विश्राम पा रहे हैं। पाठक यह जानने के लिए उत्कंठित होंगे कि वह कौन व्यक्ति है जिसने आर्यसमाजी न होते हुए भी मोरिशस में आर्यसमाज की बुनियाद डाली! अच्छा तो हम बतलाये देते हैं कि उनका नाम डाक्टर मणिलाल है। यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि सारे संसार का कल्याण वैदिक धर्म पर निर्भर है तो इसमें कोई

आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु जब एक गैर—आर्यसमाजी अपने अनुभवों से जान लेता है कि आर्यसमाज के विस्तार और वैदिक-धर्म के प्रचार के सिवाय प्रवासी भारतियों के उद्धार के लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है तब जहाँ एक ओर आर्यसमाज का गौरव बढ़ता है वहाँ दूसरी ओर उसका उत्तरदायित्व भी। सन् १९१० से आज तक मोरिशस द्वीप में आर्यसमाज की जो उन्नति हुई है वह कल्पनातीत है, और इसका अधिकांश श्रेय डाक्टर भारद्वाज और स्वामी स्वतंत्रतानन्द को है। इस समय मोरिशस टापू में लगभग ४० समाजें हैं, प्रतिनिधि सभा और परोपकारिणी सभा भी है। काकुआ के आर्य-विद्यालय में अनेक बालक और बालिकाऐं मातृ-भाषा की शिक्षा पाते हैं। "मोरिशस का इतिहास" लिखने वाले ने लिखा है—"मोरिशस में जागृति के जो कुछ चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं उनके मुख्यतः कारणभूत आर्यसमाज के प्रयत्न ही हैं, ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं है। इस समय हिन्दुओं में विद्या का प्रचार बढ़ रहा है और उन्नति की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जा रहा है, यह सत्य है किन्तु मार्गप्रदर्शक का स्थान आर्य-समाज को ही देना पड़ेगा"।

फिजी के आपद्-ग्रस्त प्रवासी हिन्दुओं को आर्यसमाज से बड़ा सहारा मिला है। जिस समय गुरुदीन पाठक गिरजाघर में पहुँच कर पीटर ग्राण्ट बन रहे थे और अनेक भोली-भाली किन्तु धर्म की प्यासी आत्माएँ इसी मार्ग का अनुसरण कर रही थीं उस समय यदि वैदिकधर्म का संदेशा वहाँ न पहुँचता तो आज फिजी के अनेक हिन्दू ईसाइयत की खाल ओढ़े हुए दिखाई देते। इसमें सन्देह नहीं कि प्रारम्भ में स्वामी राममनोहरानन्द सरस्वती ने वहाँ जाकर आर्यसमाज का अच्छा प्रचार किया। इनके उद्योग से आर्यप्रतिनिधिसभा और प्रवासी गुरुकुल की स्थापना हुई किन्तु अन्त में आप ऐसे फिसले कि अपने साथ ही आर्यसमाज

की कीर्ति-पताका भी ले डूबे। जो लोग प्रवासी भारतियों में वैदिकधर्म का प्रचार करना चाहें उनको अपने शुद्धाचरण पर पक्का विश्वास रखना चाहिए।

पूर्व अफ्रीका में आर्यसमाज खूब फूल-फल रहा है। मोम्बासा में आर्यसमाज है और आर्य कन्या पाठशाला भी। नैरोबीका आर्यमन्दिर तो इतना विशाल, सुन्दर और दर्शनीय है कि उसके जोड़े का ईस्ट अफ्रीका में न हिन्दुओं का कोई मंदिर है, न मुसलमानों की कोई मसजिद और न ईसाईयों का कोई गिरजा ही! यहाँ तक कहा जाता है कि भारत में भी ऐसे मंदिर इने गिने मिलेंगे। किसमू और कम्पाला में भी आर्यसमाज है जंजिबार के समाज-मंदिर में कन्या पाठशाला भी है। दारस्सलाम में भी आर्यसमाज स्थापित है। इस प्रकार पूर्व अफ्रीका के प्रायः सभी मुख्य मुख्य स्थानों पर वैदिक धर्म की गौरव-पताका बड़ी शान से फहरा रही है। ईस्ट अफ्रीका में आर्यप्रतिनिधि सभा भी स्थापित हो चुकी है। और यह कहना सत्य ही की पुनरावृत्ति करना है कि अन्य सभी उपनिवेशों की अपेक्षा ईस्ट अफ्रीका में आर्यसमाज की सन्तोषजनक उन्नति हुई है।

केनिया, यूगाण्डा और टंगेनिका से दक्षिण अफ्रीका की स्थिति बिलकुल भिन्न रही है। नेटाल में पहिले पहिल शर्तबन्धे भारतीय मजदूर ही आये और उनके पीछे गुजरात प्रान्त के कुछ व्यापारी और मुसद्दी भी पधारे। ट्रांसवाल में इस समय गुजरातियों की ही अधिक संख्या है। कुछ मद्रासी और हिन्दी भाषी भी हैं। केप प्रान्त में भी मद्रासी और हिन्दी भाषियों की संख्या कुछ नहीं के बराबर है, अथवा यों कहना चाहिये कि उस प्रान्त में बहुत कम हिन्दू हैं। हाँ, नेटाल प्रान्त में ही हिन्दुओं की संख्या सबसे अधिक है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि गुजरात

प्रान्त के हिन्दुओं का सम्बन्ध मातृभूमि से बना हुआ है, केवल यही नहीं प्रत्युत उन का असली घर भारत में ही है और यहां केवल द्रव्योपार्जन के अभिप्राय से रहते हैं, अतएव उनमें न भारत की संस्कृति नष्ट हुई और न नष्ट होने की कोई आशङ्का है; किन्तु मद्रासियों और हिन्दी भाषियों के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती। इन लोगों पर पश्चिमीय सभ्यता का खासा प्रभाव पड़ा है। यदि भाई परमानन्दजी, स्वामी शंकरानन्दजी, पं० ईश्वरदत्त विद्यालंकार इत्यादि महानुभावों के परिश्रम और उद्योग से यहाँ वैदिक धर्म का प्रचार न हुआ होता तो आज यहाँ भी हमें ट्रिनीडाड, जमैका, सुरीनाम और डमरेरा का दृश्य दिखाई देता।

यद्यपि नेटाल में आर्यसमाज के नाम की इनी गिनी सभायें हैं किन्तु प्रत्येक हिन्दूसभा में आर्यसमाज का उद्देश्य काम कर रहा है। आर्यसमाज के प्रचार का फल यह हुआ कि दो चार हिन्दी भाषियों को छोड़ कर और कोई ईसाई नहीं हुआ। हाँ कुछ नैपाली और मद्रासी अवश्य ईसाई होगए हैं। इसका कारण यह है कि मद्रासियों में जात-पाँत का बड़ा प्रपंच है। वे हवशी का छुआ खालेंगे किन्तु हिन्दू परिया को अपने बर्तन में भोजन नहीं देंगे। अतएव आत्मज्ञान के उदय होते ही नीच जात के मद्रासी ईसाई होगए और तामिल भाषा में आर्यसाहित्य न होने के कारण उनपर आर्यसमाज का प्रभाव डालना बड़ा कठिन है। खैर, यह तो निर्विवाद है कि दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी हिन्दुओं का आर्यसमाज ने जो उपकार किया है उससे हिन्दूजाति कभी उऋण नहीं होसकती।

—श्री पं० भवानी दयाल, संन्यासी।

—:o:—

दयानन्द दिग्विजय

संवत् १८८१ में महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने जन्म लेकर औदीच्य ब्राह्मण पं० अम्बाशंकरजी के गृह को अपने प्रकाश से प्रकाशित किया। "अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयीत" के अनुसार स्वामीजी का यज्ञोपवीत हुआ। संवत् १८६४ में यजुर्वेद कण्ठ कर लिया और अन्य वेदों का पाठ भी सीख लिया। व्याकरण की छोटी-छोटी पुस्तक भी पढ़ ली थीं। इसी साल शिवरात्रि के व्रतानुष्ठान में शिवजी की मूर्ति पर चढ़ी हुई मिठाई को चूहे से खाती देख निश्चय कर लिया कि यह शंकर नहीं है। संवत् १८६६ में छोटी भगिनी की मृत्यु ने और संवत् १८६६ में चचा की मृत्यु ने स्वामीजी के भावों में विचित्र भावना भर दी। २१ वर्ष की आयु में सम्बन्धियों की विवाह की प्रसन्नता की लालिमा को शोक काल की काली घटाओं में छुपाकर गृह से निकल पड़े और सायले ग्राम में एक ब्रह्मचारी से संस्कार करा शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारी बन गये। वैरागी द्वारा सूचना पाने पर स्वामीजी के पिता चार सिपाही साथ लेकर सिद्धपुर आगये और काषाय वस्त्र उतार कर स्वामीजी को अपने साथ ले लिया किन्तु पुनरपि पिताजी के साथ से अलग होकर बड़ौदा होते हुए चैतन्य मठ में नवीन वेदान्ती बन गये। चाणोदकल्याणी ग्राम में वेदान्तसार वेदान्त परिभाषा आदि ग्रन्थ पढ़ लिये। पूर्णानन्द संन्यासी से संन्यास ले दयानन्द संन्यासी बन गये। योगी योगानन्द से योग सीख और कृष्ण शास्त्री से व्याकरण पढ़ आबू पहाड़ पर योगाभ्यास करते रहे। संवत् १६११ तक इधर उधर घूम कर संवत् १६१२ में ३० वर्ष की आयु में प्रथम हरिद्वार कुम्भ पर गये। वहाँ से टिहरी केदार-घाट, रुद्रप्रयाग और सिद्धाश्रम होते हुए हिमालय पर्वत पर चढ़े। तुङ्गनाथ से उतर कर बद्रीनारायण गये, वहाँ से रामपुर, काशीपुर

और द्रोणसागर में साखी शरद ऋतु व्यतीत कर मुरादाबाद, सम्भल, गढ़मुक्तेश्वर गंगा के किनारे भ्रमण करते रहे। हठ प्रदीपिका आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त स्वामीजी के पास शरीर को चीड़ फाड़ने की पुस्तकें भी थीं इनकी सत्यता को जानने के लिए गंगा में बहते हुए शव शरीर को पकड़ चीड़-फाड़ कर निश्चय किया कि यह पुस्तकें मिथ्या हैं। संवत् १६१३ तक कानपुर आदि स्थानों में घूम कर चाण्डालगढ़ में केवल दुग्धाहार कर योगाभ्यास करते रहे। संवत १६१७ एवं १४ नवम्बर सन् १८६० ई० में अनार्ष ग्रन्थों को छोड़ गुरु विरजानन्द जी दण्डी से आर्षग्रन्थ पढ़ना आरम्भ किया और २॥ वर्ष में विद्या समाप्त कर लोंग भेट में अर्पण कर गुरु दीक्षा की योजना करने लगे। किन्तु गुरुदण्डी जी ने गुरुदक्षिणा में यह प्रतिज्ञा कराई कि वत्स! भारत में दीन हीन जन अनेक विधि दुःख पा रहे हैं, जाओ उनका उद्धार करो, कुरीतियों को दूर करो, आर्यजाति की बिगड़ी हुई दशा को सुधारो, ऋषिशैली को प्रचलित कर आर्य-ग्रन्थों के पठन—पाठन में लोगों की चित्तवृत्ति को लगाओ और लोगों को सच्चे ईश्वर का भक्त बनाओ। स्वामीजी ने गद्‌गद् कण्ठ से कहा कि गुरुदेव! मन सहित अपने तन को आपके चरणों में अर्पण कर चुका हूँ, अतः जो आदेश हुआ है इसको प्राणपण से आजन्म पालन करूँगा। विद्या समाप्त कर वैसाख संवत् १६२० के अन्त में अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वामीजी ने आगरा की ओर प्रस्थान किया। दो वर्ष आगरा में रह सन्ध्या लिखी। यहाँ से धौलपुर जाकर भागवत् का खण्डन किया और शास्त्रार्थ का विज्ञापन ७ मई सन् १८६५ ई० में छपवाया। करौली होते हुये जयपुर में व्यास बक्षीरामजी के प्रबन्ध में पण्डितों से शास्त्रार्थ किया। साढ़े चार मास के क़रीब जयपुर रह कर कृष्णगढ़ होते हुए अजमेर पहुँचे। संवत् १६२३

एवं १२ मार्च सन् १८६६ ई० को पुष्कर पहुँचे और ३००. या ४०० ब्राह्मणों की उपस्थिति में वंकट शास्त्री और उसके गुरु को परास्त किया। द्वितीय ज्येष्ठ संवत् १६६६ एवं ३० मई सन् १८६६ ई० में पुष्कर से अजमेर लौट आए। यहाँ पर राविन्सन से और शूलब्रेड साहब से तीन दिन तक ईश्वर, जीव और सृष्टि विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। मेजर ए. जी. डेविड्सन साहब बहादुर कमिश्नर अजमेर से उचित प्रबन्ध पर विचार हुआ और कर्नलबुक एजेण्ट गवर्नर जनरल से गो रक्षा पर बात चीत हुई। कर्नल साहब ने एक पत्र दिया और कहा कि इस पत्र को लेकर लाटसाहब से मिलें। एक पत्र राजा रामसिंह जी जयपुर को लिख कर कहा कि ऐसे वेदवक्ता सच्चे संन्यासी से बात चीत न की इसका मुझे शोक है। इस पत्र को पढ़ कर रामसिंह जी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। रामसनेहियों ने यह कह कर पीछा छुड़ाया कि हम शास्त्रार्थ नहीं जानते। कृष्णगढ़, जयपुर, आगरा होते हुए मथुरा में आकर गुरुदेवदण्डीजी से अन्तिम मिलाप किया। यहाँ से मेरठ होते हुए हरिद्वार पहुँचे। अब तक स्वामीजी महाराज ने मूर्तियों का खण्डन, शैव, शाक्त और वैष्णव मतों को अप्रामाणिक सिद्ध किया। वाम आदि कुपंथों की पोल खोल, कण्ठी, तिलक, माल और छाप के छिद्रों को तोड़ अवतारवाद, पुराण और उपपुराणों को वेद विरुद्ध सिद्ध कर, गङ्गा आदि नदियों के स्नान और एकादशी आदि वृत के माहात्म्य को मिथ्या ठहराया, वेद और आर्षग्रन्थों के प्रचार में रत रहे। कुम्भ की संक्रांति से एक मास पूर्व अर्थात् १२ मार्च सन् १८६७ में सप्त स्रोत के समीप भीमगोड़े पर पाखण्ड खण्डनी झण्डी गाढ़ दी। धर्म पिपासुओं को वैदिक रूपी विवेक विमल वारि-धारा का जल-पान कराते रहे और विशुद्धानन्द के असत्यार्थ का खण्डन करते रहे। देश की अधोगति को देख और वैरागियों की दुर्दशा

पर स्वामी जी महाराज को पश्चात्ताप भी हुआ। कुम्भ की समाप्ति पर सर्वस्व त्याग लंगोट लगा, भस्म रमा, डेरा उखाड़, गङ्गा तट का मार्ग लिया। कानपुर से लौट कर कर्णवास में पं० अम्बादत्त जी से शास्त्रार्थ कर चले गए। संवत् १६२५ को पुनः कर्णवास लौट आए। ज्येष्ठ सुदी १० को गङ्गा स्नान के लिए आए हुए राव कर्णसिंह बड़गूजर बरौली तलवार लेकर स्वामी जी को मारने के लिए आया, किन्तु शृगाल इव सिंह से भयभीत हो लज्जित हुआ। अनूपशहर में पं० हीरावल्लभ जी से प्रातः से दोपहर तक शास्त्रार्थ हुआ। हार होने पर पं० वल्लभजी और पं० टीकाराम जी ने अपनी मूर्तियाँ फेंक दीं। मूर्ति खण्डन से रुष्ट हो एक ब्राह्मण ने पान में विष दे दिया किन्तु स्वामी जी ने न्योली क्रिया द्वारा उसे बाहर निकाल दिया। सय्यद मोहम्मद तहसीलदार ने उस नर पिशाच को यह समझ कर क़ैद किया, कि स्वामी जी इस कार्य से प्रसन्न होंगे किन्तु स्वामी जी ने यह कह कर उस मनुष्य को छुड़ा दिया कि मैं संसार को क़ैद कराने नहीं अपितु क़ैद से छुड़ाने आया हूँ। संवत् १६२५ में वगड़िया में पं० गयानारायण आदि कई पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ। बंदरिया ग्राम में पं० अंगदराम शास्त्री ने शास्त्रार्थ में हार कर शालग्राम की बटिया फेंक दी। स्वामी जी ने सब पुराणों को आधुनिक इस प्रकार बताया कि कालिदास जी ने अपनी संजीवनी नाम की पुस्तिका में लिखा है कि इस समय १० पुराण हैं किन्तु इस समय १८ हैं। व्यासकृत महाभारत ४००० श्लोकात्मक था। महाराजा भोज के समय में १०००० हो गया और इस समय एक लाख से भी अधिक हैं अतः भारत में भी मिलावट है। सोरों में पं अंगदराम (पीलीभीत) से शास्त्रार्थ कर शहबाजपुर में जाकर सुना कि मथुरा में दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का स्वर्गारोहण हो गया। लाला पीताम्बरदास जी के सभापतित्व में

पं० श्रीगोपालजी से फर्रुखाबाद में पहिला शास्त्रार्थ हुआ। दूसरा शास्त्रार्थ कानपुर से आए हुए पं० हलधर ओझा से हुआ। खंगीरामपुर होते हुए ३१ जुलाई सन् १८६६ दो बजे दिन के मिस्टर डबल्यू थैन ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट कानपुर के सभापतित्व में ६० सिपाहियों के साथ साहब इन्सपेक्टर पुलिस और ५० हज़ार मनुष्यों की भीड़ में पं० हलधर ओझा से शास्त्रार्थ हुआ। २१ सितम्बर को रामनगर और २२ अक्टूबर सन् १८६६ में बनारस पहुँच गए। १६ नवम्बर सन् १८६६ ई० को बड़ी बड़ी उपाधि प्राप्त २६ पण्डितों और स्वामी विशुद्धानंदजी की उपस्थिति में शास्त्रार्थ हुआ। तीसरी वार १६ मई सन् १८७० ई० में पुनः काशी गये। चौथी बार १ मार्च सन १८७२ ई०, पाँचवीं वार जून मास सन १८७४ ई०, छटी वार २७ नवम्वर सन् १८७६ ई० सातवीं वार २७ नवम्वर सन् १८७६ ई० को काशी आये। इस वार स्वामीजी ने काशीजी में २२ व्याख्यान दिये और आर्य-समाज की नीम रक्खी। जनवरी सन १८७० ई० में प्रयाग में कुम्भ पर प्रचार कर मार्च सन् १८७१ से एक वर्ष तक गंगा तट पर प्रचार कर अप्रैल सन् १८७२ ई० डुमरॉव और अक्टूबर में मुंगेर २० अक्टूबर को भागलपुर, दिसम्बर सन् १८७२ ई० में कलकत्ता पहुँचे। १ अप्रैल सन् १८७३ में हुगली पहुँच कर ८ अप्रैल को पं० ताराचरण जी से शास्त्रार्थ किया। २५ मई सन् १८७३ ई० को छपरा आकर पं० जगन्नाथ से शास्त्रार्थ किया। ११ जून से २२ जुलाई तक आरा रह कर २६ को डुमरॉव पहुँचे। मिर्ज़ापुर, फर्रुखाबाद, अलीगढ़, मथुरा होते हुए २० दिसम्बर को छलेसर पहुँचे। २६ अक्टूबर सन् १८७४ ई० में बम्बई पहुँच पुस्तकालय में पं० जयकृष्णजी व्यास से शास्त्रार्थ हुआ। काठियावाड़, रायकोट और अहमदाबाद आदि स्थानों में प्रचार कर २६ जनवरी सन् १८७५ ई० को पुनः बम्बई लौट आए।

चैत्र शुक्ला ५ संवत् १९३२ वि० एवं १० अप्रैल सन् १८७५ ई० को बम्बई गिरगाँव में सायंकाल डाक्टर मानिकचन्द की वाटिका में नियमपूर्वक "आर्यसमाज" स्थापित हुआ। उस समय आर्यसमाज के नियम २८ बनाए थे किन्तु कुछ समय के बाद १० ही रक्खे गए। फ्रामजी काउसजी इंस्टीटयूट में १२ जून को दिन के तीन बजे पं० कमलनयन जी आचार्य से शास्त्रार्थ, २७ मार्च सन् १८७६ ई० को छोकाभाईजी जीवनजी के मकान पर नदिया शान्तिपुर के पं० रामलीलालजी से पं० भोजाऊजी के सभापतित्व में शास्त्रार्थ कर सन् १८७७ ई० में कैसरी दरबार दिल्ली में वैदिकधर्म का प्रचार किया। १९ अप्रैल को लाहौर पहुँचे और आर्यसमाज की स्थापना कर १२ अगस्त को अमृतसर पहुँच कर आर्यसमाज की स्थापना कर गुरुदासपुर, जलंधर, फीरोज़पुर, रावलपिंडी, झेलम, गुजरात, नजीबाबाद, गुजराँवाले, मुलतान आदि स्थानों में प्रचार कर २८ जुलाई सन् १८७८ ई० को रुड़की लौट आए। अलीगढ़, मेरठ, दिल्ली, अजमेर, पुष्कर, नसीराबाद, जयपुर, रैवाड़ी, मेरठ, हरिद्वार, देहरादून, मुरादाबाद, बदायूँ, बरेली, शाहजहाँपुर, लखनऊ और उदयपुर आदि स्थानों में प्रचार किया।

परोपकारिणी सभा को स्थापित कर मन्त्री पं० श्यामलदास नियत किए। वसीअतनामा लिखा कर रजिस्ट्री करा दी शाहपुरा आदि स्थानों में प्रचार कर जोधपुर पहुँचे। वहाँ पर कपटी के कुटिल प्रयोग से उदर में शूल होना आरम्भ हुआ व्याधिवृद्धि से स्वामीजी ने आबू पर जाने का विचार किया। १६ अक्टूबर सन् १८८३ को महाराजा यशवन्तसिंह जी जोधपुराधीश तथा महाराजा प्रतापसिंह जी ने २॥ हज़ार रुपये नक़द और दो दुशाले स्वामीजी को भेंट कर बिदा किये।

वहाँ से भी २६ अक्टूबर सन् १८८३ ई० को आबू से प्रस्थानित होकर शाम को अजमेर आगए। स्वामीजी महाराज ने जहाँ दूर दूर भ्रमण कर प्रचार तथा शास्त्रार्थ किए थे वहाँ अल्प समय में वेद भाष्य, सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका संस्कार विधि आदि ग्रन्थ की रचना भी की। आगे बहुत कुछ करना चाहते थे किन्तु व्याधि बढ़ती ही गई। "तज्जपस्तदर्थ भावनं" करते हुए "भगवन तेरी इच्छा पूर्ण हो" यह कहते हुए आर्त्त भारत के भाग्य का भानु भगवान् दयानन्द कार्त्तिक अमावस्या संवत् १९४० विक्रम मंगलवार को शाम के छः बजे एकाएक काल-कराल रूपी अस्ताचल की ओट में होगया। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण पर्यन्त भारत में भगवान् दयानन्द के असामयिक देहान्त का शोक छागया। भगवान् के भक्त-जन अनाथ बालकों की भाँति रो-रो कर भूमि को भिगो रहे थे। शिविका पुष्पों, कदलीस्तम्भों और कोमल पत्तों से सुसज्जित की गई। दिन के दस बजे अर्थी उठाकर आगे-आगे गोपालगिरि और रामानन्दजी वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए जा रहे थे, बाजारों में घूमते हुए नगर के दक्षिण भाग में शिविका पहुँचाई गई। दो मन चन्दन, दश मन आम्रादि काष्ठ, ४ मन घी, ५ सेर कपूर, २॥ सेर बालछड़ आधसेर केसर, २ तोला कस्तूरी सहित चिता चयन हुआ और टुकड़े-टुकड़े होते हृदयों को थाम कर शिष्यों ने गुरुदेव का शव अन्तिम शय्या पर शायी किया। अग्नि स्पर्श होते ही चिता ज्वालामाला से आवृत होगई। संवत् १८८१ में भगवान् दयानन्दजी का जन्म हुआ था और १९४० संवत् में स्वर्गारोहण हुआ।

—श्री पं० धुरेन्द्र शास्त्री, न्यायभूषण।

श्रीस्वामी दयानन्द

सचमुच श्रीस्वामीजी इस नवीन युग के पथ-प्रदर्शकों में से एक हैं और गणना में यदि उन्हें सर्वोच्च स्थान दें तो लेश मात्र भी अतिशयोक्ति न होगी।

स्वामी जी से पूर्व भारतवर्ष की क्या अवस्था थी ? आलस्य की गाढ़ी निद्रा में अकर्मण्यता की चादर ताने हम उस समय किस प्रकार सुख से सो रहे थे ? कर्त्तव्य पथ पर चलना तो दूर रहा हमने तो अपने कार्य-अकार्य के ज्ञान को विस्मृत कर देने की भारी भूल की थी। भगवान् की अशेष कृपा हुई जो इस महान् पुरुष ने इस भारत भूमि पर पदार्पण किया। इस ऋषि ने बड़े उच्च और गगन भेदी शब्दों से हमें हमारे कर्त्तव्य का बोध कराया, और पिशाचिनी और सर्वनाशिनी अज्ञता से मुक्त कराया। बाद को बहुतों ने बहुत कुछ किया किन्तु मुख्य कार्य श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज ने ही किया। इस कार्य का नितान्त श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। और वे भारतवर्ष के नवीन युग के प्रधान अधिष्ठाता और वर्त्तमान विचार आन्दोलन के प्रमुख नेता हैं।

उन्होंने आविष्कारक की भाँति स्थान और क्षेत्र ढूँढा। अपने ही समय में अपने ही मनुष्यों द्वारा उन्होंने उसकी सफ़ाई की। अब समुचित रूप से उसका प्रयोग करने, पूर्ण रूप से उससे लाभ उठाने और फल प्राप्त करने का कार्य हमारा है, उन्होंने अपना शुद्ध संदेश सुना कर अपना कार्य समाप्त किया। अब हमें उनके उद्देश्यों की पूर्ति करनी है यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनके बताए हुए पथ पर चलें। ईश्वर की कृपा से समय भी उनके भावों के साथ है। यदि वे लोग जिनके हाथों में

आर्यसमाज की नौका का पतवार है, ईमानदारी, सच्चाई और परिश्रम से कार्य करेंगे तो इसमें संदेह नहीं कि बेड़ा पार हो जायगा और उस ऋषि की आत्मा तृप्त होगी, और भारतवर्ष का निश्चय ही कल्याण होगा।

—लेफ्टीनेंट राजा श्री दुर्गानारायणसिंह बहादुर।

—::o::—

बालकों के लिये बालक मूलशङ्कर की कथा

भारतवर्ष के पश्चिम में एक देश है जिसे गुजरात कहते हैं। उसी के एक भाग का नाम काठियावाड़ है, जिसमें बहुत से छोटे छोटे रजवाड़े राज्य करते हैं जिन्हें ठाकुर कहते हैं। इनमें से एक राज्य का नाम मौर्वी है। उसमें एक क़स्बा है जिसका नाम टङ्कारा है। जिस समय की हम कथा कहने वाले हैं उस समय वहाँ एक 'जमेदार' रहते थे जो सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। उन दिनों टङ्कारा के इलाक़े को मौर्वी के ठाकुर ने एक मरहठा सेठ के पास गिरवी रख छोड़ा था और उस सेठ की ओर से ही उसका सब प्रबन्ध होता था जिसके लिये 'जमेदार' नियत थे। आजकल की भाषा में 'जमेदार' को 'तहसीलदार' कहना चाहिए। जमेदार के नीचे मुंशी और मुतसद्दी रहते थे, टंकारे के उक्त जमेदार का नाम था करसन जी लालजी त्रिवाड़ी गुजरात में मनुष्यों के दोहरे नाम होते हैं। पहला नाम उसका होता है और दूसरा उसके पिता का, इसलिए करसनजी जमेदार का नाम और लालजी उनके पिता का नाम था। संवत् १८८१ विक्रम में एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम मूलशंकर करसनजी रक्खा गया। प्यार में लोग अपने पुत्रों के नाम को छोटा करके पुकारा करते हैं। इसलिये माता पिता मूलशंकर को मूलजी कहा करते थे। मूलशंकर हमें भी बहुत प्यारा है इसलिये हम भी उस

बालक को मूलजी ही कहेंगे। मूलजी के पिता वैसे तो सामवेदी थे परन्तु शिवजी के भक्त होने के कारण यजुर्वेद को बहुत मानते थे। पाँच ही वर्ष की आयु में मूलजी को पढ़ने बिठा दिया गया। मूलजी था बुद्धि का तेज, थोड़े ही दिनों में पढ़ने में चल निकला और रुद्री आदि वेद के बहुत से मंत्र और संस्कृत के श्लोक कण्ठ कर लिए। आठवें वर्ष में मूलजी का जनेऊ हुआ और उसके पिता उसे अपने समान शिवजी का पक्का भक्त बनाने का यत्न करने लगे। वह उसे शिवजी की पूजा फल बताते, शिवजी की कथा सुनाते और जहाँ कहीं शिवपुराण की कथा होती अपने साथ ले जाते। गुजरात में शिवरात्रि का व्रत माघ वदी १४ को होता है। मूलजी १४ वर्ष का हो गया. करसनजी ने शिवरात्रि को मूलजी से व्रत रखने को कहा। मूलजी अपनी माँ की आँखों का तारा था। उसकी माँ ने अपने पति से बहुत कुछ कहा कि मूलजी से व्रत न रक्खा जायगा परन्तु करसनजी थे कट्टर शिव-भक्त वह काहे को मानने वाले थे। उन्होंने मूलजी से व्रत रखाकर ही छोड़ा। टंकारा से कुछ दूर शिवजी का एक बहुत बड़ा मंदिर है जहाँ टंकारा के आस पास के शैव शिवचौदस की रात को रात भर शिवजी की पूजा करने के लिए इकट्ठे होते थे। करसन जी भी मूलजी को साथ लेकर वहाँ पहुँचे। पहिले पहर की पूजा तो ठीक ठीक हुई। दूसरे पहर की पूजा भी ज्यों त्यों करके लोगों ने पूरी की, परन्तु उसके पीछे तो सब को नींद ने आ दबाया, और सब से पहिले यदि कोई सोया तो वह करसनजी ही थे। मूलजी तो बालक था उसे सब से पहिले नींद आनी चाहिये थी और उसे नींद आई भी परन्तु वह इस डर से कि कहीं सोने से व्रत न टूट जाय आँखों पर पानी के छींटे दे देकर जागता रहा। जब सब के सो जाने के कारण मन्दिर में सन्नाटा हो गया तो मूलजी ने देखा कि चूहे अपने बिलों से निकल कर शिवजी की

मूर्ति पर दौड़ लगाने और चढ़ावे को खाने लगे। मूलजी इसे देखकर सोचने लगा कि इस मूर्ति को तो सारे जगत् का मालिक बताया जाता है, यह क्या बात है जो इससे अपने ऊपर से चूहे भी नहीं हटाये जाते। जब किसी तरह मूलजी का सन्देह नहीं मिटा तो उसने करसन जी को जगाया और जो बात उसके मन में खटक रही थी उनसे पूछी। अब करसनजी चुप! माथे पर हाथ रख कर सोचने लगे कि यह क्या हुआ? कहाँ १४ वर्ष का लड़का और कहाँ यह विकट प्रश्न। उत्तर भी क्या देते, जब ईश्वर की मूर्ति हो ही नहीं सकती तो मूलजी को समझाते भी क्या। ज्यों त्यों करके कुछ उत्तर दिया परन्तु मूलजी ने उसे काट कर रख दिया। फिर तो करसन जी बहुत सिटपिटाए और झुँझलाए परन्तु मूलजी जिसके मन में सच की लगन लगी हुई थी उनकी धमकी में न आया और प्रश्न पर प्रश्न करके करसनजी को तंग करने लगा। अन्त को करसन जी को चुप होना पड़ा और मूलजी के मन से सदा के लिए मूर्ति पूजा से श्रद्धा विदा हो गई। अब मूलजी का मन्दिर में जी काहे को लगने लगा था उसने अपने पिता से घर जाने की आज्ञा माँगी। पिता ने सोचा अच्छा है यह झंझट दूर हो, आज्ञा दे दी और चपरासी को साथ करके मूलजी को घर भेज दिया परन्तु चलते चलते भी उससे कह दिया कि देखना कुछ खा पीकर व्रत न तोड़ देना। मूलजी घर पहुँचा, माँ मूलजी का कुम्हलाया हुआ चहरा देखकर समझ गई कि बालक से व्रत नहीं रक्खा गया और जब उसने कुछ खाने को माँगा तो उसने खुशी खुशी उसे दे दिया। दिन निकलते ही करसनजी भी मंदिर से लौट कर घर पहुँचे और मूलजी के रात में भोजन करने का हाल सुनकर बहुत बिगड़े। मूलजी के चाचा उसे बहुत प्यार करते थे उनके कहने सुनने से करसन जी का क्रोध शान्त हुआ।

मूलजी पहिले की तरह पढ़ने लिखने में लग गया। इसके दो बरस पीछे की बात है कि एक रात को मूलजी एक जगह नाच देखने गया हुआ था। वह नाच देख रहा था कि घर से नौकर दौड़ा हुआ आया और कहने लगा कि जल्दी चलो तुम्हारी बहिन को हैज़ा होगया है। मूलजी घर पहुँचा तो बहिन का हाल बेहाल पाया। बहुतेरा इलाज किया परन्तु कुछ फल न निकला और थोड़ी देर में वह मर गई। सारे घर में रोना पीटना मच गया परन्तु मूलजी की आँख से एक आँसू भी न निकला। वह एक कोने में खड़ा हुआ चुपचाप यह सोचता रहा कि मौत से बचने का भी कोई उपाय है या नहीं। लोगों ने समझा कि मूलजी का हृदय कठोर है और इसलिये उसे सबने ही बुरा भला कहा। खैर दिन बीतते गए और मूलजी के मन में मौत से बचने के उपाय ढूढ़ने की कुरोद बढ़ती रही। जब मूलजी १९ बरस का हुआ तो उसके प्यारे चचा भी हैज़े से चल बसे। मरते समय उन्होंने मूल जी को अपने बिस्तर के पास बुला कर प्यार के साथ देखा और चचा भतीजे फूट फूट कर रोने लगे। चचा की मौत के बाद तो मूलजी का चित्त संसार से बिल्कुल ही उचट गया और वह चुपके चुपके लोगों से पूछने लगा कि मनुष्य मौत से कैसे बच सकता है। उसके यह विचार माँ बाप पर भी प्रकट हो गये। उन्होंने सोचा कि मूलजी का ब्याह कर देना चाहिये नहीं तो वह किसी दिन घर बार को छोड़ कर निकल जायगा। इधर माँ बाप के यह विचार उधर मूलजी का यह इरादा कि चाहे जो हो मैं ब्याह नहीं करूँगा। उसने यह सोचा कि माँ बाप से काशी जी जाकर पढ़ने की आज्ञा लूँ और इस बहाने से शायद ब्याह की बला से बच जाऊँ। माँ बाप लड़के की बातों में क्या आने लगे थे, वह उसकी चाल को भाँप गये और उन्होंने काशी भेजने से साफ़ इन्कार कर दिया। अन्त को मूलजी ने सोच कर उनसे

कहा कि अच्छा जो काशी नहीं भेजते तो टंकारे से ३ कोस पर जो अमुक पण्डित रहता है उसी के पास पढ़ने भेज दो। इस पर वह राजी हो गये और मूलजी वहाँ जाने लगा। बातों बातों में एक दिन उसके मुँह से निकल गया कि मैं व्याह कभी भी नहीं करूँगा। यह बात करसन जी के कानों तक भी पहुँच गई और उन्होंने मूलजी की माँ से सलाह करके यही बात ठहराई कि अब उसके व्याह में तनिक भी देरी नहीं करनी चाहिये। उधर मूलजी ने भी यह ठान ली कि घर छोड़ना पड़े सो पड़े पर व्याह नहीं करूँगा और एक दिन दिनछिपे घर-बार, मात-पिता भाई बन्ध का मोह छोड़कर उसने जङ्गल का रास्ता लिया। यही मूल जी पीछे आकर ऋपि दयानन्द हुये।

—श्री० पं० घासीराम एम० ए० ऐल-ऐल० बी०।

——::०::——

आर्यसमाज

आर्यसमाज!

आर्यभूमि का अरुणोदय-सा,
उठा उष्ण, तू सज कर साज।

अन्धकार था चारों ओर,
देख लिया पर, तू ने चोर;
घर में शोर मचाया घोर।

सोते स्वजनों को धिक्कार,
जगा दिया ठोकर तक मार!
कि हो प्राप्त भय का परिहार।

अलस, प्रमादी, अवसादी,
हम थे सोने के आदी;
जागा तू भैरव—वादी।

लगे विवादी भी कुछ स्वर,
पर हम चौंक उठे सत्वर;
उतरा कुछ तो तन्द्रक ज्वर।

किया क्या तू ने खण्डन मात्र ?
स्वयं तू था मण्डन का पात्र;
गये गुरुकुल में वर्णी* छात्र।

हुई निःशुल्क शिक्षा, बढ़े अब वह तितिक्षा।
हिन्दू—मानस—महाराष्ट्र, तू
धरे राष्ट्रभाषा की लाज !
आर्यसमाज ! आर्यसमाज !!
बरसावें सुरपुर—कन्याएँ
गाकर तुझ पर सुमन सलाज‡
किया बली, तू ने विद्रोह,
पर किससे ? उससे जो मोह;
छोड़ा अपनों का भी छोह।

छाई थी समाज में श्रान्ति,
अन्धभक्ति, दुर्गति, भय, भ्रांति,
कर दी तू ने कर दी क्रांति।

घर था बना हाय ! घूड़ा,
चमक रही थी बस चूड़ा;
तू ने झाड़ दिया कूड़ा।

* वर्णी = ब्रह्मचारी। ‡ लाज = खीलें।

उसके साथ किन्तु घर के,
जायँ न भूपण भी भर के;
रख निज रत्न, यत्न कर के।

देखती नहीं रोप में दृष्टि,
शान्त हो झंझा, सींचे वृष्टि;
ध्वंस के अंसों* पर हो सृष्टि।

वजे सब ओर डंका, मिटे निज मुक्ति-शंका।
जिष्णु,** तनिक परमत-सहिष्णु हो,
प्रिय पद पर वर्विष्णु, विराज।
आर्यसमाज ! आर्यसमाज !!
प्रभु की परम दया है तुझ पर,
आ, आनन्द मना तू आज।

शोक न कर तू कर अभिमान,
कर निज वेद-विजय-रस-पान;
किया वीर, तूने वलिदान।

विधर्मियों से, घर की फूट,
करा रही थी अपनी लूट;
तू सतर्क हो उठा अटूट।

पर जो मुँह की खाते हैं,
मन ही मन चिढ़ जाते हैं;
छिप कर घात लगाते हैं!

सहा सभी तू ने प्यारे,
सिद्ध कर गये हत्यारे;
निज अविजय न्यारे न्यारे।

---

* अंसों = कन्धों। ** जिष्णु = जयशील।

राम ने रक्खी तेरी रेख,
न मुँह फेरा तूने भय देख,
लिखा निज शोणित से यह लेख-
"कृण्ध्वं विश्वमार्यम्" जयति कृत बुद्धि-कार्यम् ।
शुद्धि-वितान-तले श्रद्धा का,
दान किया तूने द्विजराज !
आर्यसमाज !

—कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त ।

——::०::——

स्वामी दयानन्द

तीस करोड़ नामर्दों में जो अकेला मर्द होकर जन्मा, वसौंती घास, फूस और मच्छरों की तरह फैले हुए, मनुष्य जन्तु की मूर्खता की चरम सीमा के प्रमाण स्वरूप मत मतान्तरों को जिसने मुठमर्दी से विश्वध्वंसिनीज्वाला की तरह विध्वंस किया। मरे हुए हिन्दूधर्म को अपने जादू के चमत्कार से जीवित कर दिया, और उसे नौंच नौंच कर खाने वाले गीदड़ों को एक ही हुँकार से जिसने भगा दिया। कीड़ों मकोड़ों की तरह रेंग कर पलने वाले हिन्दू बच्चों के लिए जिसने पुण्यधाम गुरुकुलों और अनाथालयों की रचना की; निर्दई हिन्दुओं की आँखों के सामने डकराती, गर्दन कटाती, गायों के आँसू जिसने अग्नि के नेत्रों से देखे, अबला विधवाओं के ऊपर जिस ने अमर छाया की, और अछूतों के असाध्य घावों पर जिसने संजीवनी मरहम लगाया; जो करोड़ों व्यभिचारियों में अकेला अखंड ब्रह्मचारी था; जिसके प्रकांड पांडित्य ने नदियां और काशी की पुरानी ईंटों को हिला दिया; सारी पृथ्वी पर

जिसकी आवाज गूँज गई थी; युग के देवता की तरह जिसने वेदों का उद्धार किया। जो प्रत्येक हिन्दू के दरवाज़े पर निरन्तर ६५ वर्ष तक ऊँची आवाज में पुकारता रहा, "उठो, जागो, निर्भय रहो, खड़े हो" और सच्चे सिपाही की तरह-घाव खाकर जिसने बीच रणक्षेत्र में प्राणों का विसर्जन किया, वह दयानन्द था।

उसकी मृत्यु के बाद थोड़े दिन तक उसकी साँस हिन्दुस्तान के वातावरण में जब तक भरी रही तब तक लेखराम और गुरुदत्त जैसे आदमी आर्यसमाज ने पैदा किए। वे आए और गए। हंसराज और लाजपतराय आर्यसमाज के रङ्ग-मंच पर कन्धा मिला कर लोगों के सामने खड़े हुए और बिखर गए। स्वामी श्रद्धानन्द, आनन्द मूर्ति दर्शनानन्द, मनस्वी गणपति शर्मा के स्थान पर अँधेरा है। अब तो ऋषि दयानन्द की श्वाँस भी नष्ट सी हो गई मालूम पड़ती है—जिसके प्रभाव से अब से ४०-५० वर्ष प्रथम इन मूर्तियों का निर्माण हुआ था। वे कारीगर, वे औजार, वे मसाले अब अलभ्य हो रहे हैं वह समय भी नहीं रहा। मुसलमानों के तख़्त के साथ धर्म क्रांति भी मर गई, अब मुसलमानियत भी मर रही है; ईसाइयत को इँगलैण्ड ने मार ही डाला था। हिन्दुत्व खुद आत्मघात कर मरा।

अब जगत् के सामने एक प्रश्न है-खड़े रहने को स्थान, और खाने को अन्न का दाना। बलवान् छीन रहे हैं कमजोर जोर लगा रहे हैं-अब समाजों की क्रान्ति के दिन हैं-कल या परसों-समाज में क्रान्ति की वह आग धधकेगी—वह ज्वाला जलेगी कि मनुष्यता के दूसरे सब प्रश्न अतल पाताल में डूब जावेंगे। अन्धी दुनिया के लोग पहले राज्य क्रान्ति के स्वप्न देख रहे हैं-पर यह कभी सम्भव नहीं है। समाज क्रान्ति की भयंकर ज्वाला देखने से देखी जा सकती है।

इस समाज क्रान्ति में आर्यों का क्या स्थान होना चाहिये ? मैं कभी खयाल भी नहीं कर सकता कि दयानन्द का दम भरने वाले किसी से नीचे रहने का खयाल करेंगे। ऋषि दयानन्द के विचार हमारे सहायक हैं-उसके कार्य हमारे पथ-प्रदर्शक हैं। उन धर्म क्रान्तियों की योजनाओं का मुख हम यदि समाज क्रान्ति की ओर फेर दें तो अपने प्राणों की शर्त लगाकर कह सकता हूँ कि बुद्ध मसीह की भूतसमाजविजयों पर दयानन्द की भविष्य विजय बाज़ी ले जायगी।

इसके कारण हैं। ऋषि दयानन्द भविष्य काल का पुरुष है-मैं उसे कभी भूत काल का व्यक्ति नहीं मान सकता। वह आग सुलगाने आया था आज वह आग धधक रही है।

आर्यो! क्या आपको मालूम है कि आज समस्त हिन्दू-समाज दयानन्द को ढूँढ रहा है ? ध्यान करो और आश्चर्य करो। आज हिन्दू समाज में क्रान्ति का तूफान आ रहा है—ऋषि दयानन्द के हृदय में जो ६० वर्ष पूर्व क्रान्ति की दुर्धर्ष तरंगे उठी थीं—और जिनके कारण गालियाँ, पत्थर और ज़हर खाया-आज प्रत्येक समझदार हिन्दू के हृदय में वे तरंगे उठने लग गई हैं—आज दयानन्द के विजय की घड़ी है-लाखों करोड़ों हिन्दू आज दयानन्द की भभूत को टटोल रहे हैं—आर्यो! तुम सो रहे हो ? तुमने औरों को जगाने की क़सम ली थी। तुम्हारा बड़ा भाई छुरी खाकर अपनी क़सम पर मर मिटा है। ओ! बूढ़े, बच्चो, जवानो, देवियो, माताओ! कान लगा कर सुनो—आज २२ करोड़ हिन्दू दयानन्द को ढूँढ रहे हैं। ढूँढ़ो, तुम भी ढूँढ़ो। बहस और शास्त्रार्थ के थोथे तीर चलाना बन्द करो; ज़बान-दराज़ी को एक ओर रक्खो; कायरी और नामर्दी पर शर्माओ। जिसकी हुँकार से वीरों की तलवारें छूट जाती थीं—

उसकी ठण्डी राख जिस अजमेर नगर की जमीन में दबी पड़ी है-वहीं आर्यों का क़िला रहते हुए—हिन्दू स्त्रियों की लाज लूटी गई हिन्दू धर्म का अपमान किया गया।

आर्यो ! अगर तुम्हारा यह विश्वास है कि ऋषि दयानन्द का प्रभाव सारी पृथ्वी पर पड़ेगा। अगर तुम यह, भरोसा रखते हो कि ऋषि दयानन्द मरी हिन्दू जाति का उद्धारक संरक्षक और वारिस है—तो तुम्हें यह भी करना चाहिये कि ऋषि के मरने पर कोई यह न कहे कि ऋषि हिन्दुओं का कुछ भी नहीं था।

तुम यह कह सकते हो कि ऋषि का भी हिन्दुओं ने विरोध किया था-मैं कहूँगा वह हिन्दूधर्म मर गया है-आज का हिन्दूधर्म ऋषि को खोज रहा है वह ऋषि को और उसके सिद्धान्तों को सावधान रोगी की तरह कड़वाहट का विचार न कर पीजाना चाहता है। आओ प्यारो ! इस अवसर को न खोओ। यह हमारी आर्यों की विजय का दिन है यह ऋषि के बलिदान की पाई पाई भरपाई का समय है।

उठो ! जागो ! और खड़े हो ! ऋषि दयानन्द की जगह पर तुम अपने कमजोर से कमजोर अस्तित्व को समझो। अपने आपको उन सिद्धान्तों की मूर्ति मान्-तस्वीर बना लो। दुनिया देखे कि तुम आर्य हो-आर्य बच्चे हो। ऋषि दयानन्द की खेती में हरियाली लहरा उठे।

—श्री० चतुरसेन शास्त्री।

——::०::——

दोहा

सर्व-शक्ति-सम्पन्न है, रचना रचे अनेक।
साथ सर्व-संघात के, रहै एक रस एक॥

—महाकवि 'शङ्कर'।

हम

दिन हुआ अस्त-मुख छाय गई नभ लाली
क्यों करुण सांझ है आज वेदनाशाली ?
है कुछ कुछ शोक समान अँधेरा जाया
ज्यों कमल बन्द हैं ? चन्द्र नहीं क्यों आया ?
अज्ञान-गर्भ में छिपा हुआ है दुखमय
कोई भावी सत्य निकट ही है बस निश्चय ?

\+ + + +

वह देखो ! किसको लोग खड़े हैं घेरे ?
क्या हुआ ? रो रहे क्यों व्याकुल बहुतेरे ?
क्यों खड़ा हुआ 'वह व्यक्ति' व्यक्त श्रद्धामय ?
क्या देख रहा है गूढ़ दृष्टि से तन्मय ?

वह कौन ? सुदारुण-रोग-व्यथा-कृश-तन भी
है हर्षित तेजःपुञ्ज भव्य मुख तब भी
हो आसनस्थ गम्भीर स्निग्ध स्वर से कल
है ईश-स्तुति कर रहा प्रेम में विह्वल

क्या कहा ! कि यह श्री दयानन्द स्वामी हैं !
जो महापुरुष अति धीर वीर नामी हैं !
जो अद्वितीय विद्वान् विश्व के हैं धन !
जो किये समर्पित देश-धर्म हित जीवन !

यह आर्य जाति के पुत्र जगाये जिसने !
यह धीर वीर बलवान बनाये जिसने !
वह देखो ! उनने नयन स्वकीय उघारे !
क्या अहो कह रहे हैं आचार्य हमारे ?

"हे ईश्वर होवे पूर्ण तुम्हारी इच्छा!
यह अच्छी लीला रची! तुम्हारी इच्छा—
हो पूर्ण तुम्हारी इच्छा पूरण होवे!
हे देव, तुम्हारी इच्छा पूरण होवे!"

लो! मुँदे नेत्र, फिर दया, दयामय प्रभु की
उस दयासिन्धु से मिली व्यथा हर जग की
उन दयानन्द के पदानुयायी हैं हम
उस कार्य-भार के उत्तरदायी हैं हम

गुरुदेव, "तुम्हारी पूर्ण कामना" होगी
इस सकल विश्व में ऐक्य भावना होगी
हम किसी शक्ति से सत्पथ पर न डरेंगे
हम निर्भय होकर धर्म प्रचार करेंगे

हम वीर आर्य-सन्तान न डरने वाले
हम विघ्नों से भय तनिक न करने वाले
हो धर्म हेतु यदि विपद भले ही आती
हो जायँ खड़े हम खोल खोल कर छाती

हम आर्य पुत्र हैं, भीरु नहीं, जो भागें
हम सदा बढ़ेंगे सुदृढ़ पैर से आगे
हम जान गये किस भाँति जिया जाता है
है ज्ञात हमें किस भाँति मरा जाता है

हम में है प्रेम कि विश्व बहेगा जिस में
वह आग कि अत्याचार जलेगा जिस में
वह शक्ति कि जिससे विश्व चकित होवेगा
वह भक्ति-स्रोत जो हृदय-मैल धोवेगा

—श्री भद्रजित् "भद्र"।

ऋषि का संदेश

संसार में वैदिक धर्म का प्रचार करना आर्यसमाज का असली काम है, और ऋषि का यही संदेश है। जिस कदर यह काम अपने में गौरव रखता है और महान है उसके लिये उतना ही प्रयत्न आवश्यक है। ऋषि के विचार में जिस कदर इसका विस्तार होगा उसी कदर संसार का सुधार और उपकार होगा, जितना वैदिक असूलों का प्रकाश होगा उतना ही अविद्या अन्धकार, भ्रम और भूल का नाश होगा, जितनी वेदों की विद्या मनुष्य समाज में बढ़ती जावेगी उतनी ही स्वार्थ की बीमारी जो संसार के दुःख का कारण बन रही है घटती जावेगी। वैदिक सिद्धान्तों का जिस कदर सन्मान होगा उसी कदर प्राणी मात्र का मंगल और कल्याण होगा। वेदों की मर्यादा का जिस मनुष्य समाज में जितना मान होगा वह उतना ही प्रेम प्रीति से युक्त और परस्पर व्यर्थ राग द्वेष से मुक्त हो कर बलवान् और बुद्धिमान होगा। वैदिक धर्म को जितने अंश में जिस मनुष्य समाज ने ठीक ठीक पाला होगा उतना ही उसका बल बुद्धि और ऐश्वर्य निराला होगा, वेदों के अनुकूल गुण, कर्म और स्वभाव से वर्णाश्रम व्यवस्था जितनी मात्रा में स्थिर होगी उतने ही पुरुषों में बुरे कर्मों से अप्रीति और शुभ कर्मों में प्रीति होने से ईश्वर भक्ति दृढ़ होगी। संक्षेप से वैदिक धर्म का अनुष्ठान ही मौलिक सुख और मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र साधन है।

—श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज।

———:::o:::———

दोहा

शङ्कर के प्यारे बनो, वैर विरोध बिसार।
वैदिक वीरो जाति का, करदो सर्व सुधार॥

—महाकवि 'शङ्कर'।

श्रीमद्दयानन्द-जन्म

(१)

प्रकट हुआ जो भारतीय मही-मण्डल में,
जीवन-प्रभात पाके अंश-अंशुमाली का।
खो गया महान अन्धकार वसुधा से वीर,
हो गया सुकाल काल कठिन कुचाली का।
पायी पाप-राहु ने सुबाहु के समान गति,
देख बाहु-वैभव सुधर्म-शक्ति-शाली का।
वृद्धि हुयी ऐसी कि महान तेज-पुञ्ज हुआ,
प्रबल प्रताप-भानु-दीपक दिवाली का॥

(२)

भूमि दुराचार-भार-भरित महान हुयी,
आर्य थे असंज्ञ संज्ञा मन्त्र की सिपारा थी।
ईश हुये ईसा मन्त्र-वीसा के कुसाधकों के,
पाती आर्य-सभ्यता न कोई भी सहारा थी।
ऐसा काल जान के उधारने को भूमि-भार,
धायी वसुधा में शक्ति करके अपारा थी।
देव-धुनी-धारा सी तुरन्त गिरी भूतल पै,
देव दयानन्द की अभेद वेद-धारा थी।

(३)

भक्त भगवान के अशक्त प्रह्लाद से थे,
राजा था विधर्म पाप-दाप को उभाड़ के।
चारों ओर रोक राम-नाम जपने की हुयी,
बैठा धर्म-द्रोही था कुधर्म-ध्वजा गाड़ के।

आहन-असा सा बड़े बल से कसा सा हाथ,
चक्रमित करके लगाया जभी ताड़ के।
रम्भा के समान टूटा खम्भा जो अधर्म का तो,
निकले नृसिंह दयानन्द थे दहाड़ के।
—श्री पं० अनूपशर्मा, एम० ए०, एल० टी०।

——::०::——

महर्षि दयानन्द की क्षणिक झलक

श्री स्वामीजी महाराज जब बरेली में (मेरी ११ वर्ष की अवस्था थी) आकर ला० लक्ष्मीनारायण खजाञ्ची साहूकार की कोठी में निवास कर प्रचार कर रहे थे, तब मैंने उनके दर्शन किये। व्याख्यान में बड़ी भीड़ें होती थीं परन्तु एक अजीब सन्नाटे का समा दिखाई देता था। सुसमीन सरोवर की तरह लोग शान्त-चित्त हो आपके मनोहर वचनों को सुनते थे। आपका वेश बड़ा सादा था। आप टोपा और मिर्जई पहने चौकी पर वीरासन लगाये एक देव मूर्ति के समान देदीप्यमान दिखाई देते थे। स्वर बड़ा मधुर तथा गम्भीर था। बहुत से आदमी तो आपका स्वरूप और शारीरिक अवस्था देखने तथा बहुत से श्लोक और मंत्र सुनने के लिये ही जाते थे। निदान सब ही आपके दर्शन से कुछ न कुछ प्राप्त करते थे। मेरे चित्त में तभी से वह अंकुर उत्पन्न हुआ। मैं जब आगरा कालिज चला गया तो वहाँ पर देखा कि एक साधारण व्यक्ति चौबे केशवदेव जिन्होंने कि कुछ दिन तक स्वामी जी की रोटी बनाते हुए उनके चरणों की सेवा की थी एक अच्छे उपदेशक बन गए थे। यही केशवदेव श्री राजा जयकृष्ण-दास जी के पुत्र के लिए आगरे के बोर्डिङ्गहौस में रोटी बनाया करते थे। उनको शाम के वक्त जितना अवकाश मिलता उसमें वे

जुम्मा मसजिद के नीचे स्टेशन के इधर खड़े होकर समाज का प्रचार किया करते थे। उन्हीं दिनों पीपलमण्डी में एक कायस्थ घराने का कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी कारणवश ईसाई हो गया। इस समाचार को सुनके हमें बड़ा दुःख हुआ और उसी दिन से धर्म सेवा करने की प्रतिज्ञा की। अपनी क्लास में मैं ही इन विचारों का अकेला आर्यसमाजी था। मेरे पिता स्वर्गवासी पं० कृष्णलाल जी शर्मा डिप्टी इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल कट्टर सनातनधर्मी थे। जब उनके पास लोगों ने पत्र भेजे कि आपका लड़का तो विधर्मी हो गया, तो उन्होंने क्रोध में आ खर्च देना बन्द कर दिया। यह सब कुछ होते हुए भी महर्षि के सिद्धान्तों पर मेरा अटूट विश्वास बना रहा। मैंने अपने को हताश न कर एक टयूशन पर अपना निर्वाह किया। कुछ दिनों में पिताजी को सच्चा हाल मिलने पर मेरे अनुकूल बनना पड़ा। थर्डइयर में पहुँचने पर फर्स्ट इयर के विद्यार्थी बा० गंगाप्रसादजी से मुलाक़ात हुई। निदान तभी से मैंने कालिज से आकर नित्य प्रति सायङ्काल के समय उसी स्थान पर जाकर प्रचार करना आरम्भ कर दिया। बी० ए० तक आगरे में और एम० ए० तक प्रयाग में यही अभ्यास रहा। प्रायः लोग कहा करते हैं कि विद्यार्थियों के इन झगड़ों में पड़ने से पढ़ाई का हर्ज होता है परन्तु मैं हमेशा यह सब काम करते हुए भी हर क्लास में पहिले नम्बर रहा। इसी बीच में महर्षि के दर्शनो की उत्कट इच्छा रही परन्तु फिर यह सौभाग्य प्राप्त न हुआ। उस समय देवनागरी पढ़ना वृथा ही नहीं किन्तु अपमानजनक कार्य समझा जाता था। ऋषि का सारा साहित्य प्रायः संस्कृत और देवनागरी ही में था। अतएव आर्य भाषा पढ़ना भी मैंने अपना धर्म समझा। महर्षि की संचित अस्थियों को शाहपुराधीश की वाटिका में रखने का एक मेला हुआ जिसमें प्रायः सभी प्रान्तों के आर्य पधारे थे। मैं भी वहाँ गया और

वहाँ पं० गुरुदत्तजी एम० ए० तथा पं० लेखरामजी से मेरी भेंट हुई। उस समय एक बात बड़ी विचित्र प्रतीत हुई। जब मैं रसोई घर में कपड़े उतार कर भोजन कर रहा था, उस समय पं० लेखरामजी ने कढ़ी हुई चौके की लकीर और उतरे हुए कपड़ों को देख कर कहा कि "अभी तक लकीर के ही फ़कीर बने हो" चलो और सब के साथ बैठ कर भोजन करो। फिर क्या था उसी दिन से वह पोच विचार जो घेरे हुए था भगा दिया। वह समय अब तो याद करने पर भी याद नहीं आता। जब कि समस्त प्रान्तीय आर्य पुरुष एकत्र थे, जिन में कि प्रेम का सरोवर और सचाई की लहरें उमड़ कर संसार के सन्तप्त हृदयों को भी तृप्त कर रही थीं। अस्तु: यदि ऋषि का प्रादुर्भाव ठीक समय पर न हुआ होता तो अँग्रेजी पढ़े लिखों में तो हिन्दू पन अथवा प्राचीन आर्य गौरव का नाम भी बाक़ी न रहता। यह सब कुछ उस महर्षि की कृपा है, जो हम अपने धर्म पर स्थिर रह सके।

—पं० विष्णुलाल शर्मा एम० ए० रिटायर्ड सबजज।

——::०::——

'आर्यसमाज की'

दुर्दम्भ दारुण दुःख मेटा देश का जिसने सभी;
दुख दीन का अवलोक सुख अपना नहीं समझा कभी।
रक्षा सदा करता रहा निज जन्म भू के लाज की;
जय जय कहो जयशील-जीवित आर्य! आर्यसमाज की॥

निःस्वार्थ सेवा का जिसे निज गर्भ से ही ध्यान है;
कर्त्तव्य पालन का जिसे निज देश पै अभिमान है।
धुन है सदा जिसको अकेले अन्य हित के काज की;
जय जय कहो जयशील-जीवित आर्य! आर्यसमाज की॥

होवे जगत में दासता पर वह सदा स्वाधीन है;
उसके विवेक-समुद्र का यह विश्व सारा मीन है।
प्रतिभामयी मणिरूप जो है मातृ-भू के ताज की;
जय जय कहो जयशील-जीवित आर्य! आर्यसमाज की ॥

है सार जिसको ही मिला विज्ञान पारावार का;
मर्मज्ञ जो है द्वैत में अद्वैतता के प्यार का।
महिमा सिवा जिसके न कोई जानता प्रभुराज की;
जय जय कहो जयशील-जीवित आर्य! आर्यसमाज की ॥

बलिदान होना जानता जो धर्म के संग्राम में;
है नाम की इच्छा न जिसको अन्यहित के काम में।
हटता न जो पीछे कभी पा भीति भी दुख गाज की;
जय जय कहो जयशील-जीवित आर्य! आर्यसमाज की ॥

अन्यान्य मत जिसकी पकड़ अङ्गुलि खड़े होने लगे;
वे बाल्य-धी से आज हैं यद्यपि बड़े होने लगे।
पर सामने जिसके जगत की पन्थ माया आज की;
जय जय कहो जयशील-जीवित आर्य! आर्यसमाज की ॥

गौरव समेत अगम्य जिसका माननीय गुरुत्व है;
गंधर्वगण भी गा रहा जिसका प्रकृष्ट प्रभुत्व है।
शोभा नहीं अन्यत्र उसके सत्यतामय साज की;
जय जय कहो जयशील-जीवित आर्य! आर्यसमाज की ॥

जिससे दलित हो दम्भ सेना दूर छिप रोया करी;
अज्ञान माया विश्व की तजकर उसे किससे डरी?
झुक झुक करूँ मैं वन्दना उस वीर तेजभ्राज की;
जय जय कहो जयशील-जीवित आर्य! आर्यसमाज की ॥

—श्री ब्रह्मचारी रत्नाकर।

सत्यार्थप्रकाश का महत्त्व

संसार में जितने धर्म-ग्रन्थ हैं, उनमें से केवल सत्यार्थप्रकाश ही ऐसी पुस्तक है, जिसमें सभी धर्म-मतों की निष्पक्ष आलोचना और सच्चे धर्म की मीमांसा है। जो धार्मिक सुधारक सत्य के सच्चे प्रेमी हैं, जिनमें पक्षपात का लेश भी नहीं है, वे खुले तौर से तुलनात्मक धर्मविचार करते और सब मतमतान्तरों से सत्य का ही ग्रहण करते हैं। जो अपने मत की ही घोषणा करता, और दूसरों की, समीक्षा के बदले में निन्दा करता है वह निश्चित ही दूरदर्शी नहीं कहा जा सकता। लोभी दूकानदार, पक्षपात के कारण अपने सामान को ही ग्राहकों को दिखलाता, और बाजार में जो उससे भी अच्छी चीजें मिलती हैं, उनका नाम भी नहीं लेता। दुनिया की सब मजहबी किताबों के सम्बन्ध में भी यही बात है। परन्तु सत्यार्थप्रकाश ही केवल सत्य और निष्पक्ष पुस्तक है, क्योंकि उसमें सच्चा तुलनात्मक धर्म-विचार किया गया है।

ईसाई लोगों की धर्म-पुस्तक, बाइबल को देखिये इसमें यहूदी लोगों के पुरोहित पारसियों को खूब गन्दी गालियाँ दी गई हैं। परन्तु पारसी लोगों के धर्म और व्यवहार का कुछ प्रमाण नहीं दिया गया, जिससे पाठकों को पता लग जाय कि पारसी लोगों का धर्म और धर्म-पुस्तक अमुक प्रकार का है और उनमें त्रुटि क्या है।

मुसलमानों की माननीय किताब क़ुरान को देखिए। 'काफ़िरों' को कितनी गन्दी से गन्दी गालियाँ दी गई हैं 'काफ़िरों' को क़त्ल तक कर देने की आज्ञा दी है, परन्तु यह नहीं बतलाया गया कि—काफ़िर बेचारे का क़सूर क्या है? उनके धर्म में त्रुटियाँ कौनसी हैं? अथवा उनके धार्मिक सिद्धान्तों की तुलना में इसलाम की कितनी श्रेष्ठता है।

भारत के पुराणों में भी ऐसी ही युक्तिहीन बातें भरी पड़ी हैं। परन्तु ऋषि दयानन्द ने अपने सत्यार्थप्रकाश में क्या किया है? उन्होंने एक ओर तो युक्ति-प्रमाणों से वैदिक सिद्धान्त की स्थापना की, दूसरी ओर विविध मतमतान्तरों की न्यायपूर्ण और युक्तियुक्त समीक्षा भी की। तुलनात्मक और निष्पक्ष धार्मिक विचार का आदर्श ही स्वामी दयानन्द थे। सत्यार्थप्रकाश से जो लोग चिढ़ते हैं और इसके लिए आर्यसमाज को कोसते हैं, वे लोग भूल जाते हैं कि यह युग तुलनात्मक विचार का ही है। जो किसी देश का इतिहास लिखते या साहित्य अथवा किसी महापुरुष के जीवन की आलोचना करते हैं, उनको तो तुलनात्मक विचार करना ही पड़ेगा। वर्त्तमान युग तुलनात्मक भाषा व्याकरण और विचार का युग है। ऐसी दशा में स्वामी जी ने, धार्मिक विषय में तुलनात्मक विचार किया तो क्या अपराध किया। जो मनुष्य सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध में विचारक (जज) बनकर अपनी व्यवस्था देते हैं, उन्हें इस बात का स्मरण रखना चाहिये—चाहे वह महात्मा हों अथवा कोई और। सत्यार्थप्रकाश ने धार्मिक संसार में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। इस तुलनात्मक युग में, जब साहित्य, इतिहास, गणित, विज्ञान इत्यादि सभी विषयों में तुलनात्मक विचार होता रहता है, सत्यार्थप्रकाश धार्मिक विषय में तुलनात्मक विचार का प्रथम मार्ग-प्रदर्शक है। एक दिन सारे संसार को इस मार्ग पर आना पड़ेगा—ज्ञान और युक्ति से काम लेना होगा। अनजान मनुष्य सत्यार्थप्रकाश की निन्दा किस बुरी तरह से करता है! एक सज्जन ने तो इसको निराशाजनक पुस्तक बतला दिया। कारण, इसमें खण्डन-खड्ग दिखाई देता है। परन्तु वह महाशय भूल जाते हैं कि यदि इस दृष्टि से स्वामी शंकराचार्यजी का भी विचार किया जाय तो वह भी निराशाजनक सिद्ध हो जावेंगे। क्या शंकराचार्यजी ने शैव,

शाक्त, गाणपत्य, सौर, कापालिक इत्यादि सभी अवैदिक सम्प्रदायों का खण्डन नहीं किया था ?

वस्तुतः बात यह है कि जो तुलनात्मक विचार का साहस करेगा उसे खण्डन–मण्डन करना ही पड़ेगा। जिन महापुरुषों ने सत्य की घोषणा के लिये जन्म धारण किये उन्हें मिथ्यावाद की समीक्षा करनी ही पड़ी। जो महापुरुष लोगों को ज्ञान का भंडार दिग्दर्शन करावेगा उसे मिथ्या का खण्डन और सत्य का मण्डन करना ही पड़ेगा। सत्यार्थप्रकाश संसार का दिग्दर्शन यन्त्र है। जो सुधारक दूसरे मतों की तुलना में अपना मत रखने से हिचकते हैं, उन्हें केवल स्वमतप्रकाश रूप एक देशदर्शिता दीख पड़ती है—मुक़ाबिले से वह डरते हैं परन्तु जिस महापुरुष ने साहस और शक्ति से काम लिया, जो सत्य की मूर्ति है और अप्रिय सत्य से भी नहीं डरता उसका वाक्य संसार को हिला देता और जगत् को वश में कर लेता है। सत्यार्थप्रकाश ऐसी ही पुस्तक है, भीरु इससे डरते हैं, परन्तु संसार धीरे धीरे इसकी ओर आता जाता है।

—श्री० प्रोफेसर रमेशचन्द्र बनर्जी एम० ए०।

स्वामी दयानन्द के प्रचार का मुख्य अभिप्राय सुधार के लिए जनता को उकसाना मात्र है। संभवतः इस आशय के साथ कि राज्य की सत्ता देशी हाथों में आजाय। स्वामी दयानन्द ने यह मान लिया है कि हिन्दुओं में कुछ ऐसे दोष आगए हैं जिनसे वह इस समय स्वयं राज्य करने के योग्य नहीं रहे हैं।

—मि० पी० हैरीसन।

सिंहनाद

एरे क्रूर कर्ण, तू डराता है क्यों खड्ग लेके,
प्राण-भय से क्या कभी सत्य छोड़ दूँगा मैं।
याद रख, दम्भ का गिराऊँगा गपोड़-गढ़,
भौंड़ी भावना का भीरु! भाँड़ा फोड़ दूँगा मैं॥
अधम अधर्म जय पाएगा न धर्म पर,
मिथ्या मतवादियों के मुँह मोड़ दूँगा मैं।
ताकता है क्या, तू कुल-कायर प्रहार कर!
तानते ही तेरी तलवार तोड़ दूँगा मैं॥

पूर्ण पराजय

सिंह के समान दयानन्द की दहाड़ सुन,
छागई निराशा-निशा वैरिओं के गण में।
बाल ब्रह्मचारी का विशाल तप-तेज देख,
वीरता बदल गई भीरुता से चण में॥
आतमिक बल के विजय की पताका उड़ी,
कर्णसिंह कायर पछाड़ दिया रण में।
काँप उठा गात, बनी एक भी न बात,
किया शीघ्र प्रणिपात ऋषिराज के चरण में॥

—श्री पं० हरिशङ्कर शर्मा।

——::o::——

स्वामी दयानन्द की मृत्यु का समाचार मेरे लिए वज्रपात के समान था। उनके देहावसान से भारतवर्ष ने एक ऐसा दार्शनिक खो दिया जिसके समान भारतवर्ष में संभवतः कोई भी दार्शनिक पैदा न होगा।

—मि० फडरिक फौ थोम।

——::o::——

महर्षि का प्रादुर्भाव

ऋषि का आत्मिकबल महान था। आपका सिद्धान्त जितना श्रेष्ठ था, उतना ही परिश्रम भी असाधारण था। आपने भयङ्कर विरोध होने पर भी, अनेकानेक धमकी दिए जाने पर भी, बुराइयों का दिग्दर्शन कराना नहीं छोड़ा। आपने पूर्ण निर्भयता पूर्वक समाज में फैली हुई विलास-प्रियता का विरोध किया। पण्डे-पुरोहितों के स्वार्थ-पूर्ण आचरणों का खूब भण्डा फोड़ा। स्वार्थियों ने आपको अनेकानेक प्रलोभन दिए, धमकियाँ दीं। पर ऋषि तनिक भी विचलित न हुए। यदि वह चाहते तो बड़े से बड़े मठ के मठाधीश बन आनन्द के साथ रह सकते थे, किन्तु सच्चा महात्मा, वीर संन्यासी, कभी ऐसी प्रलोभन युक्त बातों में नहीं आता। जिनकी भलाई के लिए वे प्रयत्न करते थे, उन्ही की कटुक्तियाँ सहना तथा अन्त में उन्हीं के हाथ से विष का घूँट तक पीना ऋषि की उच्चतम सहनशीलता का परिचायक है।

अब समय आया है कि ऋषि के शुभ प्रयत्नों व उनकी क्रान्तियों का फल प्राप्त हो रहा है। जो लोग वर्षों पहले बाल-विवाह आदि का समर्थन कर रहे थे, अब वे ही उसके कट्टर विरोधी बन रहे हैं। शुद्धि का शङ्ख आज कतिपय स्वार्थियों व रूढ़िवादियों को छोड़ कर सारे भारत भर में फूँका जाता है। आज कट्टर से कट्टर सनातनी पण्डितों ने भी अछूतों के लिए देवालयों के द्वार खोल दिए हैं। गुरुकुलों की स्थापना हो रही है। "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्" के पुजारी भी अब स्त्री-शिक्षा के लिए कन्या विद्यालय आदि की स्थापना कर रहे हैं। धर्म का प्रचार बढ़ रहा है। वास्तव में सच्चा महात्मा सब कुछ कर सकता है। सुधार और क्रान्ति-पथ के पथिक को चारों ओर का घोर विरोध सहते हुए, बिना किन्हीं, कृतज्ञता सूचक व उत्साह-वर्द्धक वाक्यों के, तथा बिना सहयोग

के चुपचाप काम करना पड़ता है। जब वह अच्छी बातों का प्रचार करता है, तब उस पर पत्थर बरसते हैं। धर्म व जाति के हेतु प्राण देने वालों में वस्तुतः ऐसे ही आत्मिक बल की आवश्यकता है।

अतः प्रिय आर्य वीरो! आज के शुभ दिवस यह प्रण करो कि हम ब्रह्मचारी, सदाचारी, वीर बन कर महर्षि दयानन्द के सच्चे भक्त बनेंगे। आर्यसमाज का मस्तक कभी नीचा न होने देंगे। ऋषि के लगाए पौधे आर्यसमाज को, जिसको स्वामी जी ने अपने खून से सींचा है, उसे सुरक्षित रक्खेंगे। अपनी आन और धर्म पर मरने वाले आर्यवीर कहलायेंगे। वेदों का डंका बजायेंगे। कभी भी किसी विघ्न-बाधा से न घबरायेंगे, हम दुःखों और कष्टों का स्वागत करेंगे।

—श्रीमती सत्यवती देवी।

—::o::—

दयानन्दोदय

(१)

छूत छात त्याग का अछूता उपदेश दिया,
भद्दी भेद-भावना के भूत को भगा गया।
वैर को बिसार पुण्य-प्रीति का पढ़ाया पाठ,
हृदयों को प्रेम के पियूष में पगा गया॥
झूठे देवी-देवों के प्रपञ्च से छुड़ा के एक—
ईश की उपासना में सब को लगा गया।
देश-हित साध के, दिवाली को सदा के लिए—
आप सो गया पै ऋषि जग को जगा गया॥

(२)

मेंट के अविद्या गुरु-ज्ञानियों की गैल गही,
वेद-प्रतिपादित सु-पद्धति पसन्द की।
विधवा-विवाह की प्रसार के पुनीत प्रथा,
विषम विवाह की विषैली विधि बन्द की॥
मिथ्या मत-पन्थों का पटल छिन्न-भिन्न कर,
ज्योति दिखलाई जगदीश सुखकन्द की।
इसी से दिवाली हरसाल दीपमाला लेके,
आरती उतारती है देव दयानन्द की॥

—श्री पं० चन्द्रदत्त शर्मा, उपाध्याय।

——::०::——

दयानन्द-दिग्विजय

महर्षि दयानन्द ने जिन महान् उद्देश्यों को लेकर 'आर्यसमाज' का संस्थापन किया था. वे कहाँ तक सफल हुए हैं, इसका विचार भली-भाँति किया जा सकता है 'क़द्र मर्दुम बाद मर्दुम' अर्थात् मनुष्य की क़द्र उसके संसार से चले जाने के बाद हुआ करती है। यह उक्ति महर्षि पर अनेकांशों में चरितार्थ होती है। दयानन्द ईश्वर की उन विभूतियों में से निःसन्देह एक थे, जो योगिराज कृष्ण की 'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्' । उक्ति के अनुसार धर्म के अभ्युत्थान के लिये समय-समय पर इस संसार में अवतीर्ण हुआ करते हैं। जिस काल में महर्षि ने संसार में आकर अपने मिशन को पूरा किया था, उनके स्वर्गारोहण के इतने वर्षों के पश्चात् हम यह भली भाँति विचार कर सकते हैं कि उस काल में उनका आना धर्म की रक्षा के लिये परमावश्यक था और

जिस कार्य के लिये वे हमारे बीच आये थे, उसे पूरा करके ही उन्होंने अपनी इहलीला संवरण की थी। उन्होंने अपने जीवन-काल में पाखण्ड और अधर्म की शक्तियों को नष्ट करने के लिये देशव्यापी विरोधबवण्डर के बीच जितना काम किया था, यदि वे अवतारवाद के विरोधी न होते, तो उतना ही उन्हें अन्य युग-पुरुषों की भाँति ईश्वरावतार घोषित करने के लिये पर्याप्त था। परन्तु अपने लेखों और व्याख्यानों में महर्षि दयानन्द निरन्तर यह उद्घोषित करते थे कि सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापक और निर्गुण, निराकर परब्रह्म के सम्बन्ध में यह कहना नितान्त नास्तिकता है कि उसके अवतार ग्रहण किये बिना रावण, कंसादि पापात्मा नृपतियों का नाश सम्भव ही नहीं था। इसी से अन्य मतवालों का-सा एक गरोह कभी नहीं बना और महर्षि दयानन्द राम और कृष्ण की भाँति ईश्वरावतार न माने जाकर आर्य-सामाजिकों एवं अन्यों द्वारा अपने काल के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष और महान् आत्मा ही माने जाते हैं।

महर्षि ने मनुष्यों के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का अपने सत्यार्थ-प्रकाशादि ग्रन्थों में जैसा विशद निरूपण किया है, आज सिद्धान्त रूप में वह किस सुशिक्षित और विचारशील व्यक्ति को स्वीकार नहीं है? आर्यसमाज के नेताओं की कतिपय त्रुटियों एवं शिथिलताओं के कारण प्रत्यक्ष में भले ही समाजों एवं उनके सदस्यों की संख्या में वृद्धि होना रुका जान पड़े, किन्तु आज कौन ऐसा सच्चा देशभक्त और जाति-भक्त है जो अपने नित्य के आचरणों से यह न सिद्ध करता हो कि वह महर्षि दयानन्द के फैलाये हुए दिव्यप्रकाश के सहारे ही कार्य कर रहा है? केवल भारत में ही नहीं, आज सारे संसार से उस ढोंग और पाखण्ड का अन्त होता प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है जिसके विरुद्ध स्वामी जी सब प्रकार से प्रतिकूल परिस्थितियों में खड्गहस्त हुए थे। इसे ही हम

'दयानन्द-दिग्विजय' कहते हैं और हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस महान् विजयको अनति दूर भविष्य में ही कार्यरूप में सारे संसार को सुधीसमाज स्वीकार करता देखा जायगा।

यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय, तो महर्षि दयानन्द का ही प्रताप है, जो आज आर्यावर्त्त के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों एवं नाना प्रकार के पाखण्डों के सुदृढ़ दुर्ग पर इतनी भयंकर गोलाबारी हो रही है और वह अब भूमिसात् हुआ ही चाहता है। हिन्दू-जाति के तो वे रक्षक ही थे। जिस समय उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश किया था, उस समय सारी हिन्दूजाति पतनोन्मुख हो रही थी। जो लोग पश्चिमीय शिक्षा-दीक्षा में पड़ गये थे, उनके हृदय से उस हिन्दूधर्म से आस्था उठ चली थी, जो चूल्हे-चौके, गुड्डे-गुड्डी के विवाह तथा ऐसी ही अन्य रूढ़ियों में ही घुसा समझा जाता था और जो अशिक्षित थे, वे अविद्या के कारण हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों से बहुत दूर जा पड़े थे। महर्षि दयानन्द ने आकर हिन्दू जाति की इस पतनोन्मुख दिशा को बदलने का बीड़ा उठाया और सत्य-सनातन धर्म का प्रचार करके 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' वाले सनातन धर्म से ऊपर उठने के लिये जाति को तैयार किया। महर्षि के इस महान् कार्य के फलस्वरूप ही आज हिन्दुस्तान के भीतर हमें इतने अधिक शिखा-सूत्रधारी दिखाई देते हैं। यदि उन्होंने उस समय स्वजाति पर दया करके उसे गहरी निद्रा से न जगाया होता, तो विधर्मी लुटेरों ने सारी जाति को ही हड़प कर अपने गिरोहों में मिला हिन्दुस्तान को यवनस्थान कभी का बना लिया होता। दयानन्द के इस महान् कार्य के लिए हिन्दू जाति तब तक उनकी कृतज्ञ रहेगी जब तक एक भी हिन्दू बच्चा जीवित रहेगा।

खानपान को जो भेद-भाव आज भूतकाल की बात होने जा रहा है, उसकी पोल महर्षि दयानन्द ने दशाब्दियों पहले ही खोल दी थी, जब आपस्तम्ब धर्मसूत्र का 'आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः' के प्रमाण पर उन्होंने घोषित किया था कि आर्यों के घर में शूद्र पाकादि सेवा करें, अपने सत्यार्थप्रकाश में महर्षि ने 'शूद्र के छुए हुए पके अन्न के खाने में जब दोष लगते हैं तो उसके हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं।' प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट लिखा है—"यह बात कपोल कल्पित झूठी है। क्योंकि जिन्होंने गुड़, चीनी, घृत, दूध, पिसान, शाक, फल मूल खाया उन्होंने जानों सब जगत्-भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खा लिया। क्योंकि जब शूद्र, चमार, भंगी, मुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतों में से ईख को काटते, छीलते और पेल कर रस निकालते हैं, तब मलमूत्रोत्सर्ग करके उन्हीं बिना धोये हाथों से छूते, उठाते, धरते, आधा सांठा चूंस रस पीके आधा उसी में डाल देते और रस पकाते समय उस रस में रोटी पका कर भी खाते हैं। जब चीनी बनाते हैं तब पुराने जूते कि जिसके तले में विष्ठा, मूत्र, गोबर, धूली लगी रहती है, उन्हीं जूतों से उसको रगड़ते हैं। दूध में अपने घर के उच्छिष्ट पात्रों का जल डालते, उसी में घृतादि रखते और आटा पीसते समय ही वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से उठाते और पसीना भी आटा में टपकता जाता है इत्यादि, और फल, मूल-कंद में भी ऐसी ही लीला होती है। जब इन पदार्थों को खाया तो जानों सब के हाथ का खा लिया।" अवश्य, स्वास्थ्य और वैद्यक के विचार से महर्षि ने उच्छिष्ट (जूठा) और गन्दे आदमियों के हाथ का खाने में निषेध किया है; पर वैसे खानपान के सम्बन्ध में उनके विचार का पता उक्त पंक्तियों से ही लग सकता है। जिस 'अष्ट वर्षा भवेद्-गौरी' की दयानन्द ने अपने 'सत्यार्थ-प्रकाश' में इतनी खिल्ली

उड़ाई है और बाल-विवाह की जिस कुप्रथा का निर्दयता पूर्वक खण्डन करने वाले महर्षि के कारण सोलह वर्ष की अवस्था में कन्या के विवाह की अवस्था देने से लकीर पंथियों की तुम्बी में तूफ़ान आया था, आज उसके सम्बन्ध में लोगों की क्या धारणा है ? 'अष्ट वर्षा०' वाले कथन पर 'शारदा ऐक्ट' द्वारा हरताल फेरी जा चुकी है और चौदहवर्ष से कम अवस्था की कन्या और अठारह से कम वाले लड़के का विवाह क़ानून से दण्डनीय ठहराया जा चुका है। यह क्या स्पष्ट ही दयानन्द का दिग्विजय नहीं है ? लोगों और विशेष कर महिलाओं को चौदह वर्ष वाली व्यवस्था से सन्तोष नहीं है इसलिए वे कम से कम सोलह—और बहुतेरी तो अठारह वर्ष से पहिले कन्या के विवाह को दण्डनीय ठहराने के लिए जोर लगा रही हैं। कहाँ तक गिनायें महर्षि दयानन्द के जिस सत्यार्थप्रकाश के कारण साठ-सत्तर वर्ष पहले स्वार्थियों ने बेतरह कोलाहल मचा रखा था, आज उसीकी शरण ग्रहण करने को समस्त शिक्षित हिन्दू तैयार होते देखे जाते हैं। जिस स्वाराज्य के लिये भारत-वासी मात्र आज इतने व्याकुल हो रहे हैं, उसके सम्बन्ध में स्वामीजी ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' में लिखा है—"विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने का कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना विद्या न पढ़ना-पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह; विषयासक्ति मिथ्या भाष णादि कुलक्षण, विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पांच सहस्र वर्ष के पहले हुई थीं, उनको भी भूल गये ? देखो! महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते-पीते थे। आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादवों का सत्यानाश होगया सो तो होगया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है न जाने यह

भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मरेगा।"। आज भारत में कितने ऐसे अभागे निकलेंगे, जो स्वामीजी के इस कथन का अक्षरशः समर्थन --रेंगे ? यह दयानन्द की दिग्विजय नहीं तो क्या है ?

—श्री पं० मातासेवक पाठक, विश्वमित्र–सम्पादक।

——::o::——

आदर्श गुरु-दक्षिणा

दोहा

विद्याध्ययन समाप्त कर, दयानन्द मतिमान।
गुरु अर्पण करने लगे, लौंग दक्षिणा दान॥
गुरुवर विरजानन्द ने, दिया अमित आदेश।
भारत-भू हित जो बना, अमर दिव्य सन्देश॥

(१)

"अहो प्रिय शिष्य ! मुदित मतिमान्–अखिल आशा पंजर के कीर !
अभय अति अतुलित आभावान्–अनूपम आज्ञाकारी वीर !
दक्षिणा देते हो क्या तात ! थाल में रख कर आधा सेर।
न लौंगें लूँगा, सुन लो बात, आरही अन्तस्तल से टेर॥

(२)

किया जो तुम को विद्यादान; प्रेम से माना पुत्र-समान।
दिया निगमागम का गुरु ज्ञान-हिताहित साधन का अवधान॥
हुआ यदि सत्यासत्य विवेक; उठा उर में कृतज्ञताद्रेक।
उऋण होने की ठानी टेक; दक्षिणा देनी होगी एक॥

(३)

शिष्यवर ! मैं हूँ नेत्र विहीन, कार्य करने में हूँ असमर्थ।
किन्तु हूँ एक ध्येय आधीन–करो उसको पूरा अन्वर्थ॥
तुम्हीं पर लगी हमारी दृष्टि–बढ़ रहा आशालता-वितान।
तुम्हीं से होगी उस पर वृष्टि–फले फूलेगा वृक्ष महान॥

(४)

शिष्य ! भारत का विस्तृत क्षेत्र-देव-ऋषि, मुनियों का सुनिवास ।
खोल कर देखूँ प्रज्ञा-नेत्र-बन रहा असमय असुरावास ॥
कहाँ वे चक्रवर्ति सम्राट्-कहाँ दुश्छेद्य दासता पाश ?
कहाँ वह सुख-सम्पति का ठाट-कहाँ अब निर्धन निपट निराश ॥

(५)

कहाँ सोने की चिड़िया आज-परकटी पड़ी तड़पती तात !
कहाँ स्वर्गीय सौख्य का साज-कहाँ भारत रोदन दिन-रात ?
सुनो भारत माता की टेर-तुम्हीं हो सच्चे शिष्य सपूत ।
लगाओ अब न पलक-भर देर-बनो नवयुग के दैवी दूत ॥

(६)

अहो ऋषि-मुनियों का गुरु ज्ञान-भुलाया भारत ने भरपूर ।
गपोड़े ग्रन्थ गढ़े गढ़ मान-उन्हें तुम कर दो चकनाचूर ॥
दिखा कर वैदिक "सूर्य" प्रकाश-भगादो निशिचर अबुध उलूक ।
अविद्या तम का करके नाश-सुपथ दिखला दो अटल अचूक ॥

(७)

रहे कोई न अविद्या अन्ध, विश्व में हो श्रुति ज्ञान-प्रसार ।
तोड़ दो कायरता का कन्ध-पड़े वीरत्व विजय का हार ॥
मनस-मन्दिर को मुद से पोति-बढ़ें पूजा-वेदी की ओर ।
जगमगा जावे जीवन-ज्योति-खिले स्वातन्त्र्य कली की कोर ॥

(८)

करें कर्त्तव्य कर्म सब लोग-न्याय का, नय का, ले आधार ।
त्याग से भोगें जग के भोग-न हड़पें औरों के अधिकार ॥
अनाथों का सब पकड़ें हाथ-न जग में कोई रहे अछूत ।
फूट का फाड़ें सिर एक साथ-भगा कर भेद भाव का भूत ॥

(९)

दुर्दशा आर्य जाति की देख-हृदय रोता मेरा दिन-रात ।
किया इसका थोड़ा उल्लेख-समझ लो प्रियवर ! सारी बात ॥

मानते यदि गुरु-ऋण का भार-दक्षिणा देना है स्वीकार ?
करो जग वैदिक ज्ञान प्रचार-पुण्य भारत-भू का उद्धार ॥

(१०)

यही दक्षिणा-याचना आज-मुझे कुछ और नहीं दरकार।
यही करना है तुम को काज-शिष्यवर ! करलो, खूब विचार ॥
न मुझको है कुछ कहना अन्य", हुये चुप यह कह विरजानन्द।
शिष्य ने कहा जोड़ कर "धन्य ! गुरो ! स्वीकृत है सब सानन्द ॥

(११)

"विश्व में करके वेद-प्रचार-करूँगा स्थापित आर्यसमाज।
मातृ-भू भारत का उद्धार-आर्य जाती का गौरव साज ॥
इसी में अर्पण कर दूँ प्राण-अगर है "दयानन्द" मम नाम।
आपकी आशिष से कल्याण-सफल हो गुरुवर ! मेरा काम" ॥

—श्री पं० सूर्यदेव शर्मा, साहित्यालंकार।

—::०::—

वैदिक वीरों की प्रतिज्ञा

पद्धति न छोड़ेंगे प्रतापी धर्म धारियों की,
पापी वक्र-गामियों की गैल न गहेंगे हम।
सेवक बनेंगे ब्रह्मचारी, साधु, पंडितों के,
मानी मूढ़-मण्डल के, साथी न रहेंगे हम ॥

पावें शुद्ध सम्पदा तो भोगें सुख भोग सदा,
आपदा पड़े तो सारे संकट सहेंगे हम।
जीवन सुधारें एक तेरी भक्ति-भावना से,
दीनानाथ-शङ्कर-संगाती से कहेंगे हम ॥ १ ॥

सद् गुरु-प्रसाद

श्री गुरु दयानन्द से दान,
हमने ब्रह्मानन्द लिया है ॥ टेक ॥

लेकर वेदों का उपदेश, देखा परम-धर्म का देश,
जाना मङ्गल-मूल महेश, ज्ञानागार पवित्र किया है।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

पाये युक्ति-प्रमाण प्रचण्ड, जिनसे जीत लिया पाखण्ड,
मारा देकर दण्ड घमण्ड, हठ का भण्डा फोड़ दिया है।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

भ्रम की तारतम्यता तोड़, उलझे जाल मतों के छोड़,
उलटे पन्थों से मुख मोड़, प्रतिभा का पीयूष पिया है।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

श्रुति की शिक्षा का बल धार, पूजा प्रेम विरोध विसार,
शङ्कर कर दे बेड़ा पार, जीवन दाता योग लिया है।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

दोहा

जो बड़भागी साहसी, करते है शुभ काम।
रहते हैं संसार में, जीवित उनके नाम ॥
आय बुढ़ापा देह के, हाल गये सब जोड़।
तृष्णा तरुणी को अरे, छलिया अब तो छोड़ ॥

सद्गुरु-घोषणा

ब्रह्म विचार प्रचार, ध्यान शङ्कर का धरना।
जाल, प्रपञ्च, पसार, न पूजा जड़ की करना॥
भूत, प्रेत, अवतार, और तज श्राद्ध मरों के।
धर्म सुयश, विस्तार, गहो गुण विज्ञ-वरों के॥
भ्रम भूलों की संशोधना, शुभ सामयिक सुधार है।
यह वेदों की उद्बोधना, सुन? गुरु-गौरव सार है॥

——::०::——

विनय

विधाता तू हमारा है, तुही विज्ञान दाता है।
बिना तेरी दया कोई, नहीं आनन्द पाता है॥
तितिक्षा की कसौटी से, जिसे तू जाँच लेता है।
उसी विद्याधिकारी को, अविद्या से छुड़ाता है॥
सताता जो न औरों को, न धोखा आप खाता है।
वही सद्भक्त है तेरा, सदाचारी कहाता है॥
सदा जो न्याय का प्यारी, प्रजा को दान देता है।
महाराजा! उसी को तू, बड़ा-राजा बनाता है॥
तजे जो धर्म को धारा, कुकर्मों को बहाता है।
न ऐसे नीच-पापी को, कभी ऊँचा चढ़ाता है॥
स्वयंभू-शङ्करानन्दी, तुझे जो जान लेता है।
वही कैवल्य-सत्ता की, महत्ता में समाता है॥

महाकवि 'शङ्कर'।

——::०::——

ऋषि दयानन्द की मृत्यु कैसे हुई ?

आज महर्षि दयानन्द सरस्वती की मृत्यु हुए ५० वर्ष होगये हैं। परन्तु अब तक आर्य जनता तथा विद्वानों ने जिन्होंने ऋषि की जीवन-घटनायें लिखी हैं तथा जिन्होंने अपनी आँखों देखी घटनाएँ अङ्कित की हैं, उनको कभी सन्देह नहीं हुआ कि महर्षि दयानन्द की मृत्यु किस कारण से हुई। गुरुदत्तजी, लेखरामजी आदि उस समय उपस्थित थे। अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी ने भी बड़ी खोज से आर्यसमाज का इतिहास लिखते हुए यही लिखा है कि "महर्षि दयानन्द को जोधपुर में विष दिया गया।" आर्य-मुसाफ़िर पण्डित लेखरामजी, रायसाहब बाबू रामविलास जी शारदा, स्वामी सत्यानन्द जी, पंजाब केसरी लाला लाजपतरायजी, प्रोफेसर ताराचन्दजी गाजरा, दीवान बहादुर मुन्शी हरविलासजी शारदा आदि आर्यविद्वानों की भी यही राय है। स्वामी दयानन्द का सबसे प्रथम जीवन-चरित्र लिखने का सौभाग्य आज से ४० वर्ष पूर्व एक सनातनी विद्वान् श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को प्राप्त हुआ था, उन्होंने भी निर्भीकता, निष्पक्षता तथा बड़ी खोज के बाद उस बंगला ग्रन्थ (दयानन्द-चरित्र) में लिखा है कि स्वामी दयानन्द की असामयिक मृत्यु विष देने के कारण ही हुई, परन्तु विक्रमी संवत् १९८१ (सन १९२५ ई०) में 'दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव' मथुरा के अवसर पर श्रीमान् शाहपुराधीश ने इस विषय में सन्देह करने वाली कुछ बातों का उल्लेख करा दिया। इसका प्रतिवाद जोधपुर के सुप्रसिद्ध रावराजा तेजसिंहजी राष्ट्रवर ने उसी समय पण्डाल में कर दिया था और यह उचित भी था। क्योंकि रावराजा साहब स्वामीजी के मुख्य शिष्यों में से थे और जोधपुर में हर समय स्वामी जी की सेवा में रहने वाले थे। सम्भवतः कुछ लोगों का

अनुमान है कि शाहपुरा राजाधिराज साहब ने यह सोच कर कि भविष्य में मेरे शाहपुरा राज्य (मेवाड़) पर स्वामीजी को विष देने का कलंक न लग जावे, क्योंकि महर्षि का एक रसोइया धौलमिश्र नाम का शाहपुरा दरबार साहब ने स्वामीजी की सेवा के लिए जोधपुर भेजा था, शायद यह पेशबन्दी शाहपुराधीश की हो, परन्तु यह विचार ठीक नहीं है और न शाहपुरा पर कभी कलंक लग सकता है। क्योंकि स्पष्ट प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि जोधपुर में स्वामी जी को विष देने वाला कलिया (कल्लाजी)* नामक ब्राह्मण रसोइया था न कि शाहपुरा का रहने वाला धौल मिश्र। ऐसा ही इतिहास प्रेमी पं० नानूरामजी ब्रह्मभट्ट का कथन था। ये भट्टजी उन तीन मुख्य जोधपुर निवासी सज्जनों में से एक थे, जो जोधपुर दरबार की ओर से स्वामी जी को शाहपुरा से लेने गये थे और बाद में भी ये जोधपुर में निरन्तर स्वामीजी की सेवा-शुश्रूषा में रहे। नवम्बर १६२६ ईसवी की 'सरस्वती' के अङ्क ५ में 'महाकवि चन्द के वंशधर' नामक सचित्र लेख में भी प्रकाशित हुआ है कि "स्वामीजी के साथ जोधपुर निवासी कई आततायी लोगों ने कुत्सित व्यवहार किया, और उनकी जीवन लीला का अन्त इतना शीघ्र कराया। उसके सम्बन्ध की घटना को इस लेख में दुहराना अनुचित होगा। केवल इतना कहना काफी होगा कि उन दुष्टों में से एक का नाम कलिया था, जिसने एक दूसरे माली से मिलकर प्रसिद्ध वेश्या नन्ही भगतन के प्रोत्साहन से दूध के साथ विष मिलाकर स्वामीजी को पिला दिया था।"

राजपूताने के सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता मुं० देवीप्रसाद जी मुन्सिफ भी यही कहा करते थे कि "नन्हीजी (नन्ही वेश्या) ने अपने एक विशेष कृपापात्र (माली) को लालच देकर उसके द्वारा

* इसका असली नाम जगन्नाथ कहा जाता है।

स्वामीजी के रसोइये (कलिया) को वहकाया और दूध में विष मिलाकर स्वामीजी को पिला दिया।" यह विवरण चाँद के क्रान्तिकारी मारवाड़ी अङ्क के पृष्ठ २३१, २३६ (सन् १६२६ ई०) में "मारवाड़ का भीषण पाप" नामक सचित्र लेख में भी मिलता है।

मृत्यु के पूर्व स्वामीजी आवूपहाड़ पर जोधपुर की कोठी में ठहरे हुए थे, और वहाँ इनका इलाज धौलपुर नरेश के रेजीडेन्सी सर्जन लेफ्टिनेएट कर्नल डाक्टर एडमूस आई० एम० एस० ने भी किया था। जब स्वामीजी का स्वर्गवास अजमेर में हो गया तो जोधपुर नरेश महाराजा जसवंतसिहजी वहादुर ने आश्चर्य-पूर्वक अपने सर्जन कर्नल एडमूस साहब से पूछा कि "स्वामीजी ऐसे हट्टे-कट्टे होते हुए भी उनकी मृत्यु कैसे हो गई?" इस पर कर्नल डाक्टर एडमूस ने उत्तर दिया था कि—"मैंने काच (दुर्बीन) लगाकर स्वामी जी का गला व मुँह देखा था। जिससे साफ़ जाहिर होता था कि उनके पेट की आँतों में छेद हो गये थे और बाहर भी फफोले हो गये थे।" इससे बढ़कर डाक्टरी तथा प्रत्यक्ष प्रमाण और क्या हो सकता है कि स्वामीजी की मृत्यु विष द्वारा ही हुई।

इस पर भी यदि आर्यजनता में कोई सन्देह रह जाय तो हम यहाँ पर एक बड़े व्यक्ति की साक्षी उपस्थित करते हैं, जो उन्होंने अपनी आत्म-कथा में सन् १६०८ ई० में लिखी है। हिज़ हाइनेस लेफ्टिनेएट जनरल महाराजाधिराज महाराज सर प्रतापसिंह बहादुर जी० सी० वी० ओ० ईडर नरेश व रिजेएट जोधपुर ने अपनी आत्म-कथा (आटोवायग्राफी) में जो अब तक नहीं छपी है, और जिसकी असली प्रति जोधपुर व ईडर राज्यों में सुरक्षित है, तथा भारत प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् स्वनामधन्य

महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा अजमेर के यहाँ भी उसकी प्रतिलिपि मौजूद है, उस बड़े पोथे के पृ० ३१२-३१३ में लिखा है कि:—

"संवत् १९४० विक्रमी की दिवाली का दिवस भारतवर्ष और खास कर मारवाड़ के लिये बड़ा दुर्भाग्य का दिन गिना जायगा। क्योंकि इस दिन महर्षि स्वामी दयानन्द ने अकाल मृत्यु द्वारा इस संसार से कूच किया। उनकी मृत्यु जहर देने से हुई थी और कहा जाता है कि जोधपुर में स्वामी जी के विरोधियों में से कुछ लोगों ने यह जहर उनकी भोजन-सामग्री में मिला दिया था।" उपर्युक्त आत्म-कथा का उक्त अवतरण भी नीचे उद्धृत किया जाता है:—

"The Dewali day of Sambat 1940 (1883 A. D) will be ever considered as unfortunate for India, and particularly Marwar when Swami Dayanand left this world by having met a premature death by poison said to have been administered to him in food by some of his intriguing opponents at Jodhpur.

—Maharaja Sir Pratap's Autobiography, Pages 312-13. Mss. Chap. XXX.

इस प्रकार हिज़ हाइनेस जनरल महाराजा सर प्रतापसिंहजी की साक्षी, जो न केवल महर्षि के समकालीन थे प्रत्युत उनके परम शिष्य और निरन्तर सत्संग करने वाले थे, असत्य नहीं हो सकती। अतएव यह ऐतिहासिक सत्य है जिसमें किसी को संदेह या किन्तु, परन्तु करने की गुंजाइश नहीं है।

—श्री० कुं० चाँदकरण शारदा, एडवोकेट।

—:o:—

सद्गुरु-स्तुति

छाना सब धर्मों का तत्त्व, माना वैदिकधर्म महत्त्व।
ठाना उसका पुनरुद्धार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥१॥

निर्भय होकर कहा यथार्थ, फैलाया जग में सत्यार्थ।
किया सदा निष्पक्ष विचार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥२॥

ऊँच-नीच सब प्रभु-सन्तान, साम्यवाद सिद्धान्त महान।
सब के हित खोले सब द्वार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥३॥

गो-विधवा वा प्राणीमात्र, उनकी रहे दया के पात्र।
किया अहिंसा धर्म प्रचार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥४॥

सदा स्वदेशी का था मान, भाषा, भाव, वेश पर ध्यान।
किया सभी विधि देश-सुधार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥५॥

करने को स्वराष्ट्र-कल्याण, किया समर्पित तन-मन-प्राण।
कभी न हिचके किसी प्रकार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥६॥

स्वामी ने बतलाया मन्त्र, जिससे सब हो सकें स्वतन्त्र।
किया संघटन प्रेम पसार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥७॥

कर्मवीर त्यागी धीमान, सभी भाँति थे ऋषि बलवान।
किया विश्व-भर का उपकार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥८॥

शास्त्रार्थों में पायी जीत, विष से हुए नहीं भयभीत।
यद्यपि त्याग दिया संसार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥९॥

सद्गुरु सब सद्गुण की खान, अद्वितीय वैदिक विद्वान्।
नमस्कार है बारम्बार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥१०॥

राजकुमार श्री रणञ्जयसिंह।
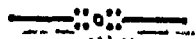
महर्षि दयानन्द की हार्दिक इच्छायें

जिन इच्छाओं का सम्बन्ध मनुष्य के हृदय से होता है, उनकी पूर्ति के लिए मनुष्य अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। ऋषि दयानन्द की हार्दिक इच्छाओं का परिचय उनके मृत्युपत्र (वसीयतनामे) के अवलोकन से भली भाँति हो जाता है। ऋषि दयानन्द अपने मृत्युपत्र में लिखते हैं—"मेरे पास जो कुछ भी सम्पत्ति है उसको तीन कामों में खर्च करना चाहिए (१) वेद-वेदाङ्ग आदि शास्त्रों के प्रचार करने कराने तथा पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने और छापने-छपवाने आदि में। (२) वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेश मण्डली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग में। (३) आर्यावर्त्त के अनाथ और दीनजनों की शिक्षा और पालन में।" ऋषि दयानन्द की हार्दिक इच्छा थी कि चारों वेदों की ऐसी सरल व्याख्या की जाय कि जिसके द्वारा वेदो का गौरव संसार में फैले और मध्यकालीन भाष्यकारों की व्याख्याओं के द्वारा वेदों के सम्बन्ध में जो भ्रान्तियाँ फैल गई हैं, वह सब दूर हो जायँ, तथा उनके वास्तविक मर्म को संसार के लोग अच्छी तरह समझ जाँय। इसी प्रकार चारों वेदों के छै अंगों की निर्दोष व्याख्या की जावे, जिससे वेदों के समझने में सर्वसाधारण को आसानी हो जावे। तथा इसी ढंग से वेदों के चारों ब्राह्मण, तथा उपाङ्गों की भी सरल और निर्दोष व्याख्या कराके वेदों के अध्ययन-अध्यापन में सरलता उत्पन्न की जावे।

अब विचार करना है कि ऋषि दयानंद की इस इच्छा की पूर्ति करने में परोपकारिणी सभा तथा आर्य जनता ने कहाँ तक प्रयत्न किया है। जहाँ तक मुझे अनुभव है, ऋषि दयानन्द की इस इच्छा को पूरा करने में अभी तक कुछ भी कार्य नहीं हुआ।

ऋषि दयानन्द की इच्छा के अनुकूल जब तक वेद-वेदाङ्ग और वैदिक ग्रन्थों की सरल और निर्दोष व्याख्या नहीं होगी तब तक 'वेदों का प्रचार' कुछ अर्थ नहीं रखता। यदि आर्य जनता के हृदय में ऋषि दयानन्द के लिए कुछ भी भक्ति है तो ऋषि की इच्छा पूर्ति के लिये उसे तन, मन, धन से यत्नशील होना चाहिये। और दस पांच योग्य विद्वानों को वेद-वेदाङ्गों की निर्दोष और सरल व्याख्या करने के लिये नियत करना चाहिये।

ऋषि की दूसरी इच्छा थी कि देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरों में वैदिकधर्म प्रचार के लिये योग्य उपदेशक तैयार करके भेजने चाहियें, जिससे संसार में फिर से वैदिक धर्म का प्रचार हो। ऋषि की इस इच्छा-पूर्ति के लिये भी इस समय तक कुछ भी कार्य नहीं हुआ है। अन्य देशों की तो कथा ही क्या, अपने भारतवर्ष में भी प्रत्येक प्रान्त में वैदिकधर्म के प्रचार के लिये योग्य उपदेशक तैयार नहीं किये जा सके। जब तक सुयोग्य धर्म-प्रचारक तैयार न किये जायँगे, उस समय तक देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में वैदिकधर्म का प्रचार होना सर्वथा असम्भव है। कितने ही लोगों की दृष्टि गुरुकुलों तथा कालेजों की ओर लगी हुई है, और उनका विश्वास है कि इनमें से जो योग्य विद्वान निकलेंगे, वे सारे संसार में वैदिक धर्म का प्रचार करके वैदिक-धर्म का झण्डा गाड़ेंगे। पर हमारी सम्मति में यह आशा निराशामात्र है। ३०-४० वर्ष के भगीरथ प्रयत्न करने तथा करोड़ों रुपया खर्च करने पर भी दो चार विद्वान् भी ऐसे तैयार नहीं हो पाये और न होने की आशा है। ऋषि की इस इच्छा की पूर्ति के लिये भी आर्य जनता को कोई विशेष और सफल प्रयत्न करना चाहिये। हमारी सम्मति में एक ऐसा उपदेशक विद्यालय खोलना चाहिये, जिसमें अंग्रेजी भाषा के ऊँचे से ऊँचे विद्वान् जिनकी

दूसरी भाषा संस्कृत हो तथा संस्कृत भाषा के ऊँचे से ऊँचे विद्वान् जिनकी दूसरी भाषा इंग्लिश हो, उपदेशक बनाने के लिये दाखिल किये जाँय, और कम से कम ३ वर्ष और अधिक से अधिक ५ वर्ष तक उनको तुलनात्मक दृष्टि से वैदिकधर्म के विशेष विषयों के अध्ययन का अवसर दिया जाय। साथ ही उन्हें व्याख्यान-कला का विशुद्ध रूप से सर्वाङ्ग पूर्ण शिक्षण भी दिया जाय। परीक्षाओं के उत्तीर्ण होने पर इनको वैदिक धर्म प्रचारार्थ देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में भेजा जाय, तब कहीं ऋषि की दूसरी इच्छा के पूर्ण होने की सम्भावना हो सकती है।

ऋषि की तीसरी इच्छा आर्यावर्त के अनाथ और दीन जनों के पालन-पोषण और शिक्षण की थी। ऋषि की इस इच्छा की पूर्ति के लिये जो कुछ कार्य हुआ है, वह भी प्रायः न होने के बराबर है। ऋषि दयानन्द के नाम से इस समय तक अनाथ और दीनों के पालन-पोषण और शिक्षण के लिये जितने अनाथालय खुले हैं, उनकी २०-२२ से अधिक संख्या नहीं है। इन अनाथालयों का भी प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं है। इन अनाथालयों का आन्तरिक प्रबन्ध ऐसे वैतनिक कर्मचारियों के हाथ में होता है कि जिनके हृदय में अनाथों के लिये न प्रेम न श्रद्धा और न उन्हें अपने सन्तान के समान समझने का भाव। बाहरी प्रबन्ध ऐसे मनुष्यों के हाथ में रहता है, जो क़ाग़ज़ी जमा ख़र्च और बातों के सिवाय न अधिक समय देते हैं और न धन से ही सहायता करते हैं। यदि ऋषि दयानन्द की इच्छा के अनुसार अनाथों के ठीक-ठीक पालन-पोषण तथा शिक्षण का हम प्रबन्ध करते तो इन अनाथालयों से सैकड़ों धर्म प्रचारक और धर्म प्रचारिकायें मिल जाती तथा सैकड़ों अध्यापक-अध्यापिकायें भी मिल जातीं, जिनसे हमारे धर्म प्रचार और शिक्षण के कार्य में बहुत बड़ी सहायता मिल सकती थी। हमारे अनाथालयों में जितनी अनाथा

बालिकायें दाखिल होती हैं वे तो पञ्जाब तथा सिन्ध के हिन्दुओं के घरों में चली जाती हैं। अनाथ बालक १८ वर्ष की आयु के पश्चात् अनाथालयों से पृथक होकर निस्सहाय अवस्था में रहते हुये या तो चरित्रहीन होकर रहते हैं या अन्न-वस्त्र से दुःखी रहकर विधर्मियों के बाड़े में प्रविष्ट हो जाते हैं। इनमें से कितने ही रोगादि से पीड़ित होकर असमय मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। इन अनाथालयों में अनाथों को इस प्रकार का शिक्षण नहीं दिया जाता जिससे वे बड़े होकर दस बीस रुपये कमा कर भी अपना जीवन निर्वाह कर सकें; और इसीलिये इन अनाथ बच्चों के अनाथालयों से विवाह सम्बन्ध भी नहीं किये जाते। विचारने की बात यह है कि इसमें अपराध अनाथों का है अथवा अनाथालयों के प्रबन्धकों और सञ्चालकों का। यदि आर्य जनता ऋषि दयानन्द के अनुयायी होने का अभिमान रखती है और ऋषि के किये उपकारों से उऋण होना चाहती है तो उसे ऋषि की अन्तिम इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिये।

—श्री स्वा० परमानन्दजी, महाराज।

—:o:—

दयानन्दोदय

महेश वृत्त

मूलशङ्कर एक, तू संसार का।
बीज वैदिक-धर्म, के विस्तार का॥
अर्थ तू गुरुमंत्र, का निर्दिष्ट है।
इष्ट मानव जाति, के उद्धार का॥

लावण्यात्मक लावनी

(१)

कब सत्य-सनातन-धर्म, आप अपनातें।
यदि दयानन्द-गुरुदेव, उदार न आते॥
अवतार कहा कर जो न, कुभार उतारे।
बन कर जो बुद्ध विशुद्ध, न यश विस्तारे॥
जनता पर जिस का पुत्र, न प्रेम पसारे।
कर प्यार न जिसका दूत, समाज सुधारे॥
उस एक सर्व-गत के न, भक्त बन जाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(२)

जिस में मत-भेद प्रवाह, घने बहते हैं।
जिस में अनमेल कुभाव, भरे रहते हैं॥
जिस के कुल घोर-दरिद्र, दुःख सहते हैं।
हँस हँस हिन्दू बन "हिन्द" जिसे कहते हैं॥
उस भारत में सुविचार, प्रचार न पाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(३)

कर घोर-घृणा मुख मोड़, पाहनी हर से।
चल दिए महा-व्रत धार, पिता के घर से॥
पढ़ विरजानन्द विरक्त, ज्ञान सागर से।
बन वैदिक सिद्ध प्रसिद्ध, मिले शङ्कर से॥
किसके यों अनुकरणीय, चरित्र सुनाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(४)

दृढ़ ब्रह्मचर्य-बल धार, विवेक बढ़ाया।
तज भोग सिद्ध कर योग, जन्म फल पाया॥
करणी-धरणी पर धर्म, मेघ बरसाया।
सब को देकर उपदेश, देश अपनाया॥
बुध-वरद संविदादर्श, किसे बतलाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(५)

भारत भर में भय त्याग, विचरते डोले।
सब के गुण दूषण टेक, टिकाय टटोले॥
धर तर्क तुला पर कूट, कथानक तोले।
कर परम सत्य स्वीकार, असत्य न बोले॥
किस के गुण यों जय बोल, बोल कर गाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(६)

नव द्रव्य, धर्म गुण, कर्म, शुभाशुभ जाने।
अनुभूत प्रमाण प्रयोग, विधान बखाने॥
समझे, ऋषि तंत्र सुधार, सुधारस साने।
भ्रम जाल भरे नर ग्रन्थ, विशुद्ध न माने॥
किस पर मारालिक न्याय, निदान कराते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(७)

समुचित आचार विचार, शोध समझाये।
कर पुण्य प्रकाशित पाप, जघन्य जगाये॥
रच पद्धति वैदिक-याग, व्रतादि बताये।
लिख लेख सदर्थ अनर्थ, भेद दरसाये॥
विधि और निषेध अजान, न जान जनाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(८)

जड़ पूजन की जड़ काट, मोह मठ फोड़े।
कर दूर अवैदिक दर्प, दम्भ गढ़ तोड़े॥
मत पन्थ प्रसारक पक्ष, न जीवित छोड़े।
सटकीं भ्रम की भरमार, भिड़े न भगोड़े॥
नट खट खण्डन की मार, कहो कब खाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(९)

कच लम्पट लोलुप लण्ठ, लबार लताड़े।
प्रतिवाद, प्रमाद, प्रपञ्च, प्रचण्ड पछाड़े॥
उलझे झुक झिक्कड़ झुण्ड, झड़ाझड़ झाड़े।
उखड़े अक्खड़ खल खर्व, उखाड़ अखाड़े॥
कब ऊत भयानक भूत, कपूत कहाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(१०)

कर कोप न कल्पित प्रेत, पिशाच पुकारें।
भुमियाँ भैरव हनुमान, न अब हुंकारें॥
चढ़ चामड़ चेत चुड़ैल, न फूँक पजारें।
जखई जिन पीर मसान, मसोस न मारें॥
मिल ऊत मरे यमदूत, सदैव सताते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(११)

जब गुरुकुल विद्यापीठ, सदा बढ़ते थे।
वटु ब्रह्मचर्य व्रतशील, वेद पढ़ते थे॥
जब शिष्य यथोचित वर्ण, धार कढ़ते थे।
गौरव गिरि पै प्रण रोप, रोप चढ़ते थे॥
अब क्या तब के अनुसार, षडङ्ग पढ़ाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(१२)

प्रतिभा धर दक्ष दयालु, विप्रपद पावें।
क्षत्रिय पढ़ वेद बलिष्ट, वरिष्ट कहावें॥
कर कृषि वाणिज्य सुबोध, वैश्य बन जावें।
वह शूद्र जिसे द्विज दास, अबोध बनावें॥
गुण, कर्म, स्वभाव न वर्ण, विभाग बनाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(१३)

पिय साथ सुहागिनि काल, समोद बितावे।
सधवा पुनि अक्षत योनि, रांड बन जावे॥
विधवा क्षत योनि नियोग, सिद्ध फल पावे।
कुलटा बन के कुल को न, कलङ्क लगावे॥
द्विज दम्पति क्या इस ओर, ध्यान कुछ लाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(१४)

कर ब्रह्म कथामृत पान, विसार उदासी।
बन गये मृत्यु भय त्याग अमर संन्यासी॥
उमगे बुध सज्जन देश, विदेश निवासी।
चिढ़ गये विदूषक चोर, चबोर बिसासी॥
किसके बल से किस भाँति, किसे समझाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(१५)

सब ओर सुधार पसार, सुनीति विराजी।
मङ्गल मुख दुन्दुभि धर्म, विजय की बाजी॥
गरजे सुन वैदिक नाद, सुजान समाजी।
छुप गये उलूक उतार, प्रतारक पाजी॥
कब देख सभ्य दल दृश्य, दस्यु दब जाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

(१६)

अवनी पर आर्यसमाज, कल्पतरु फूले।
शुभ सिद्ध मनोरथ रूप, धार फल झूले॥
कुल घातक तक्षक क्रूर, कुभाव न भूले।
अटके धर कोप कुठार, विरोध वसूले॥
इन असुरों का कब घोर, घमण्ड घटाते॥
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

—महाकवि "शङ्कर"।

—::०::—

ऋषि को प्रणाम

स्वामी दयानन्द निःसन्देह एक ऋषि थे उन पर विरोधियों ने पत्थर फेंके, ईंटें बरसाईं, परन्तु उन्होंने सब शान्ति-पूर्वक सहन कर लिया, स्वामीजी ने अपने में महान्भूत और महान् भविष्य को मिला दिया, स्वामीजी रचनात्मक कार्य करते हुए परमपद को प्राप्त हुए, वे मरकर भी अमर हैं, उन्होंने मूर्ति पूजा के स्थान में एक परमात्मा की भक्ति का उपदेश दिया, ऋषि का प्रादुर्भाव लोगों को कारागार से मुक्त करने और जाति बन्धन तोड़ने के लिए हुआ था। वे आत्मा को बन्धन से मुक्त करना चाहते थे। स्वामीजी के जीवन का उद्देश्य मोह निद्रा तोड़ कर राष्ट्र को पुनर्जीवित करना था, सचमुच ऐसे कार्य ऋषियों द्वारा ही सम्पन्न हुआ करते हैं। और जब उनका कार्य समाप्त हो जाय तब हमें उनको प्रस्थान करते समय श्रद्धा सहित प्रणाम करना चाहिये। और हम ऋषि की दिवंगत आत्मा को प्रणाम करें। और भावी ऋषियों के मार्ग में अपने भक्ति पुष्पों के पाँवड़े बिछावें। क्या दयानन्द की आत्मा हमारे मध्य अब भी जीवित नहीं, क्या यह

हमें नहीं पुकार रही, क्या वह हमारे लिए कोई सन्देश नहीं रखती। आधुनिक युग में-घोर विप्लव में ऋषि हमसे वही कहता है जिसे वह सदा बलपूर्वक कहता रहा। ऋषि का आदेश है—आर्यावर्त! उठ, जाग अब समय आगया है, नये युग में प्रवेश कर, आगे बढ़, और अपने अतीत गौरव पर सदैव सतृष्णा टक-टकी लगाये रह।

—पालरिचार्ड (सुप्रसिद्ध फ्रैंच लेखक)।

—::o::—

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ

किसी भी सिद्धान्त अथवा विचार के प्रचार के लिए दो मुख्य साधन होते हैं—एक तो वाणी और दूसरी लेखनी। अर्थात् एक प्रचारक या तो व्याख्यानों द्वारा या लेखों और ग्रन्थों के द्वारा ही अपने विचारों को जनता तक पहुँचा कर उस पर अपना प्रभाव डाल सकता है। आज तक संसार में जितने भी महापुरुष हुये हैं उनके सन्देश जन साधारण तक इन्हीं दो उपायों द्वारा पहुँचाये गये हैं। आज भी अपने मत के प्रचार और अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करने के लिए ये ही उपाय अमोघ अस्त्र का काम देते हैं। प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय, हर एक राजनैतिक पार्टी और सब के सब समाज सेवक अपने विचारों के प्रसार के लिए इन्हीं दो शक्तियों को अधिक से अधिक बढ़ाने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं।

यों तो ये दोनों ही साधन एक दूसरे से बढ़कर विशेषतायें रखते हैं, तथापि, हमारी दृष्टि में, कुछ बातों में लेखनी वाणी से बढ़कर है। यदि वक्तृता सुनने वालों पर अधिक प्रभाव डालने की शक्ति रहती है, वह निर्जीव व्यक्ति के अन्दर भी एक वार

लिए जीवन पैदा कर सकता है तो लेखन कला एक बात को अधिक स्थायी रूप दे सकती है और उसे दूर दूर स्थानों में भी, जहाँ के व्यक्ति सुन नहीं सकते, आसानी से पहुँचा सकती है। सिद्धान्तों का सम्यक निरूपण भी वाणी से उतनी अच्छी तरह नहीं हो सकता, जितना कि लेखनी द्वारा। एक व्यक्ति की वक्तृता-शक्ति के चले जाने के बाद—उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके सिद्धान्तों का प्रचार तो केवल उसके लिखे ग्रन्थों से ही हो सकता है। इस प्रकार लेखनी एक मृत पुरुष को भी जीवित रखती है। एक महापुरुष की मृत्यु के बाद यदि उसके विचारों के बारे में कुछ जानना हो–कोई शङ्का दूर करनी हो, तो उसके ग्रन्थों के अतिरिक्त और कोई सहारा नहीं होता। इसलिए विचारों को कागज पर रखना अथवा ग्रन्थों का निर्माण करना एक विशेष मूल्य रखता है।

ऋषि दयानन्द ने भी इन दोनों बातों का अनुभव किया था और इनसे अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया था। जहाँ एक ओर उन्होंने सहस्रों व्याख्यान दिये, शतशः शास्त्रार्थ किये, वहाँ दूसरी ओर अपने सन्देश को स्थायी और सुदूरगामी बनाने के लिए अनेक लेख लिखे और कई ग्रन्थों का निर्माण किया। यद्यपि उनके व्याख्यान बड़े प्रभावोत्पादक होते थे; उन्हीं के द्वारा उन्होंने अपने सहस्रों अनुयायी बनाये थे, परन्तु उनकी मृत्यु के बाद उन व्याख्यानों को सुनने का अवसर न मिल सकता था। फिर तो उनकी बातों का ज्ञान उनके रचे ग्रन्थों से ही हो सकता था; उनकी अनुपस्थिति में वे ही ग्रन्थ उनके अनुयायियों के पथ प्रदर्शक हो सकते थे। इसीलिए ऋषि ने ग्रन्थों की रचना की थी।

छोटे छोटे ट्रैक्टों और व्याख्यानोंतथाशास्त्रार्थों के अतिरिक्त ऋषि के ग्रन्थों की संख्या १६ है, जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

बड़े ग्रन्थ	छोटे ग्रन्थ
१—वेद भाष्य	७—पंचमहायज्ञविधि
२—सत्यार्थप्रकाश	८—गौकरुणाविधि
३—ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	९—आर्योद्देश्यरत्नमाला
४—वेदांग प्रकाश (१६ भाग समेत)	१०—भ्रमोच्छेदन
५—संस्कार विधि	११—भ्रान्ति निवारण
६—आर्याभिविनय	१२—व्यवहारभानु
	१३—वेद विरुद्ध मत खण्डन
	१४—स्वामिनारायण मत खण्डन
	१५—वेदान्तिध्वान्तनिवारणनामरी
	१६—शिक्षापत्रीध्वान्त निवारणम्

बड़े और छोटे की दृष्टि से वर्गीकरण करने के अतिरिक्त इन ग्रन्थों का विभाजन अन्य प्रकार से भी हो सकता है। एक प्रकार का विभाग मौलिक और अनूदित ग्रन्थों को अलग अलग करके किया जा सकता है। इस दृष्टि से संख्या १, ४, ६, अनुवादित ग्रन्थ हैं, शेष ऋषि के अपने। दूसरी प्रकार का विभाग सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थों और अन्य विषयों के ग्रन्थों को अलग अलग करके हो सकता है। इस दृष्टि से संख्या ४ को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थ सिद्धान्त सम्बन्धी हैं।

यह सम्भव नहीं कि इस लघुकाय लेख में इन ग्रन्थों के बारे में विस्तार से लिखा जाय, इसलिए हम अगली पंक्तियों में संक्षेप में ही इनका परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

१. वेद भाष्य—ऋषि चारों वेदों का भाष्य करना चाहते थे, परन्तु प्रचार-कार्य की अधिकता के कारण उनको इस इच्छा को पूर्ण करने का अवसर न मिल सका। पहिले उन्होंने यजुर्वेद का सम्पूर्ण भाष्य किया और फिर ऋग्वेद का भाष्य

प्रारम्भ किया। लेकिन ऋग्वेद के १० मण्डलों में से वे केवल प्रारम्भ से सप्तम मण्डल, पञ्चम अष्टक के पञ्चम अध्याय के तृतीय वर्ग के द्वितीय मंत्र तक का ही भाष्य कर पाये थे कि उनकी मृत्यु हो गई। सामवेद और अथर्ववेद तो वे प्रारम्भ भी न कर पाये।

ऋषि के भाष्यों में मंत्रों के ऋषि, देवता, छन्द, मूलमन्त्र, पदच्छेद के अतिरिक्त सप्रमाण पदों का अर्थ अन्वय, पदों की सम्बन्ध पूर्वक योजना और अन्त में भावार्थ दिया गया है। यदि हम भूल नहीं करते तो मन्त्रों का आर्यभाषा (हिन्दी) में अर्थ पहिले पहल ऋषि के वेद भाष्य में ही दिया गया है। इससे ऋषि का अभिप्राय वेदों को सार्वजनिक बनाने का था। ऋषि के वेद भाष्य की सबसे बड़ी विशेषता मंत्रों के पदों का नैरुक्तिक रीति से यौगिक अर्थ करना है। इससे ऋषि से पहिले के जितने भी भाष्य थे उन सब का खण्डन कर उन्होंने नवीन मार्ग प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया था। पौराणिक एवं पाश्चात्य पण्डितों के अनुवादों से वेदों के गौरव में जो कमी आगई थी, ऋषि ने उसे दूर करने की पूरी चेष्टा की है। भाष्य की दृष्टि से भी ऋषि ने एक चमत्कार पूर्ण कार्य किया है, जिसका ज्ञान तभी होगा, जब ऋषि के भाष्य का प्रचार पश्चिमीय देशों में होगा, क्योंकि आधुनिक भारतीय विद्वान् पश्चिमी विद्वानों की बातों से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं।

२. सत्यार्थप्रकाश—यह ऋषि का मुख्य ग्रन्थ है। उनकी मृत्यु के बाद उनके प्रतिनिधि होने का मान इसी को प्राप्त है। ग्रन्थ के वर्णन और उनकी प्रशंसा में जितना भी लिखा जाय थोड़ा है। यह ग्रन्थ १४ समुल्लासों में विभक्त है, जिनमें से प्रथम समुल्लास पुस्तक के पूर्वार्द्ध हैं और पिछले चार उत्तरार्द्ध।

पूर्वार्द्ध में कर्त्तव्य कर्मों का मण्डनात्मक वर्णन है और उत्तरार्द्ध में मुख्य-मुख्य मतों की खण्डनात्मक विवेचना। विषयों की दृष्टि से—

प्रथम समुल्लास में—परमेश्वर के नामों का वर्णन है।
द्वितीय " —माता पिता के प्रति बच्चे का और बच्चे का उनके प्रति कर्त्तव्य बताया गया है।
तृतीय " —शिक्षा प्रणाली और ब्रह्मचर्याश्रम पर प्रकाश डाला गया है।
चतुर्थ " —गृहस्थाश्रम का वर्णन है।
पञ्चम " —वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम का वर्णन है।
षष्ठ " —राजधर्म का प्रतिपादन है।
सप्तम " —ईश्वर और वेद का विषय है।
अष्टम " —जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन है।
नवम " —विद्या, अविद्या और बन्ध तथा मोक्ष की बातें हैं।
दशम " —आचार अनाचार तथा भक्ष्याभक्ष्य विषय है।
एकादश " —भारत के भिन्न-भिन्न मतों की विवेचना है।
द्वादश " —चारवाक, बौद्ध और जैन मत की समालोचना है।
त्रयोदश " —ईसाई मत पर प्रकाश डाला गया है। और,
चतुर्दश " —यवन मत की आलोचना है।

इन सब विषयों के लिखने में ऋषि का लक्ष्य सत्यता का पता लगाना और उसका प्रतिपादन करना और असत्य का निराकरण करना है। इसी दृष्टि से उन्होंने ग्रन्थ को 'सत्यार्थ-प्रकाश' नाम दिया है। वे पक्षपात रहित होकर लिखते हैं कि यदि उनकी पुस्तक में कोई बात अवैदिक, बुद्धि रहित या असत्य

हो तो उसे न मानना चाहिये। इससे ऋषि की सत्य प्रियता का परिचय मिलता है।

ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश आर्य भाषा में बनाया था बाद में उसका प्रचार बढ़ाने के लिए उसका अनुवाद अँग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, गुरुमुखी, मराठी, तैलगू आदि में भी कर दिया गया। अब तक इसकी लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं, तथापि अभी इसके प्रचार के लिए बहुत अवकाश और आवश्यकता दिखाई देती है।

सत्यार्थप्रकाश के अन्त में ऋषि ने परिशिष्ट के रूप में 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' जोड़ दिया है, जिसमें उन्होंने ईश्वर आदि ५१ विषयों पर अपने सिद्धान्त दिये हैं। इससे एक दृष्टि में ही ऋषि के सिद्धान्तों का ज्ञान हो जाता है।

३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—यह ग्रन्थ ऋषि के वेदभाष्य की भूमिका है, जिसका भाषा तथा अंग्रेजी में भी अनुवाद हो गया है। इस पुस्तक में वेदों के बारे में उठने वाली प्रायः प्रत्येक मुख्य मुख्य शङ्का का समाधान किया गया है और विषय का प्रतिपादन इस सुरूपता से किया है कि इसके पढ़ने से वेद-सम्बन्धित विषयों का अच्छा ज्ञान हो जाता है। विषयों का वर्णन प्रायः प्रश्न और उत्तर के रूप में है।

४. वेदाङ्गप्रकाश—इसके १६ भाग हैं, जिनके नाम ये हैं—(१) वर्णोच्चारणशिक्षा, (२) संस्कृत वाक्य प्रबोध, (३) व्यवहारभानु, (४) सन्धिविषय, (५) नामिक, (६) कारकीय, (७) सामासिक, (८) स्त्रैणताद्धित, (९) अव्ययार्थ, (१०) आख्यातिक, (११) सौवर, (१२) पारिभाषिक, (१३) धातुपाठ, (१४) गणपाठ, (१५) उणादिकोष, और (१६) निघण्टु।

ये ग्रन्थ संस्कृत के व्याकरण से सम्बन्ध रखते हैं और इनकी रचना सिद्धान्त-कौमुदी आदि जो अनार्ष व्याकरण ग्रन्थ थे उनका प्रचार कम करने को की गई थी। दण्डी विरजानन्द जी सिद्धान्त कौमुदी के बहुत विरुद्ध थे। इन ग्रन्थों में से संख्या (२) तथा (३) ऋषि के स्वनिर्मित हैं; संख्या (१६) वैदिक कोश है और शेष ऋषि ने अपनी देख-रेख में अपने शिष्यों से बनवाए थे। इनमें अधिक ग्रन्थ आर्य भाषा में हैं।

५. संस्कार विधि—ऋषि की संस्कारों में अचल श्रद्धा थी; उन्हीं के प्रचार के लिए गृह्य और कल्प सूत्रों के आधार पर उन्होंने यह ग्रन्थ रचा था, जिसमें १६ संस्कारों का वर्णन है। इसके प्रचार से संस्कारों का रूप बहुत कुछ सुधर गया है और साधारण जनता संस्कारों के महत्त्व को जानने लग गयी है।

६. आर्याभिविनय—इसमें ईश्वर की प्रार्थना, स्तुति तथा उपासना के बारे में चारों वेदों के १०८ उत्कृष्ट मन्त्रों का संकलन है। पुस्तक दो भागों में विभक्त है। यह पुस्तक भक्त पुरुषों के प्रातः सायं पाठ के लिए रची गयी थी।

७. पञ्चमहायज्ञ विधि—यह पुस्तक नित्य कर्म विधि की है, जिसमें ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या) देवयज्ञ (हवन) पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ नामक पाँच प्रति दिन करने योग्य यज्ञों का विधान है।

८. गोकरुणानिधि—इसमें गौ आदि के वध से होने वाली हानि का वर्णन उसे न करने का प्रतिपादन है। अन्तिम भाग में ऋषि द्वारा स्थापित 'गोकृष्यादि रक्षिणी सभा' के नियमादि दिये गए हैं।

९. **आर्योद्देश्यरत्नमाला**—इसमें ईश्वर आदि १०० शब्दों के अर्थ दिये गए हैं।

१०. **भ्रमोच्छेदन**—यह पुस्तिका काशी के राजा शिव-प्रसाद सितारे हिन्द के नाम से प्रकाशित परन्तु स्वामी विशुद्धा-नन्द द्वारा रचित पुस्तक के खण्डन में लिखी गई थी।

११. **भ्रान्ति निवारण**—यह पुस्तक महर्षि के वेद-भाष्य पर संस्कृत कालेज कलकत्ता के पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न द्वारा किए गए आक्षेपों के उत्तर में प्रकाशित की गयी थी।

१२. **व्यवहारभानु**—इसमें साधारण व्यवहार की बातें अत्यन्त रोचक भाषा में दी गई हैं।

१३. **वेदविरुद्धमतखण्डन**—इसमें बल्लभाचार्य के मत की समीक्षा है। पहिले यह संस्कृत में थी। अब आर्य भाषा भी देदी गई है।

१४. **स्वामिनारायणमतखण्डन**—जैसा नाम से ज्ञात है इसमें वैष्णवधर्म की शाखा स्वामिनारायण मत का खण्डन है। संस्कृत तथा हिन्दी दोनों में है।

१५. **वेदान्तिध्वान्तनिवारण**—इसमें अद्वैत प्रति-पादक वेदान्ती मत की आलोचना है।

१६. **शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण**—यह पुस्तिका संस्कृत में है, जिसमें सहजानन्द आदि मतों के बारे में प्रश्नोत्तर कर उनकी असारता दिखाई गई है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त दयानन्द ग्रन्थमाला (शताब्दी संस्करण) में दो और पुस्तकें दी गई हैं—जिनमें एक 'काशी

शास्त्रार्थ' और दूसरी 'सत्य-धर्मविचार' है। प्रथम पुस्तक में काशी के शास्त्रार्थ का वर्णन है और दूसरी में चाँदपुर के मेले पर भिन्न भिन्न मतों के प्रतिनिधियों के बीच हुई धर्म चर्चा का वर्णन है। ये पुस्तकें ऋषि की नहीं, हाँ वैदिकयन्त्रालय, अजमेर की ओर से प्रकाशित हुई हैं।

इन सब ग्रन्थों की रचना से ऋषि की विद्वत्ता, लेखन कला, प्रचार प्रेम, सत्य प्रियता आदि का परिचय मिलता है। इन ग्रन्थों ने ऋषि के सन्देश को दूर दूर फैलाने में बड़ी सहायता की है। आर्यसमाज को चाहिए कि ऋषि द्वारा प्रारम्भ किए गए इस यज्ञ को प्रचलित रक्खें और वैदिकधर्म पोषक उच्च साहित्य का निर्माण कराता रहे, जिससे ऋषि की इच्छा पूर्ण हो सके।

—श्री प्रो० महेन्द्रप्रताप शास्त्री एम० ए०।

नक्षत्र

निशा हुई थी; पथिक पंथ भूले थे वन में।
शत्रु बढ़े थे उन्हें अकेला देख विजन में॥
उदित हुआ उस समय एक नक्षत्र गगन में।
धूम्रकेतु कुछ पथिक उसे समझे निज मन में॥
पर मार्ग-प्रदर्शक वह बना, हुआ चकित यह जग सभी।
वह अस्त हुआ तो भी प्रभा, न्यून नहीं होगी कभी॥

—श्री० पं० ठाकुर प्रसाद शर्मा।

—::*::—

ऋषि दयानन्द

जब जहाँ में हुक्म था जौरो तअल्लुम का रवाँ,
मजहबो ईमां था सब का दस्तबुर्दे ज़ालिमां।
वो ही क़ातिल वो ही मुंसिफ़ जाके किसके रोबरू,
अपना दावा पेश करते बेकसाने खस्ताजां।
क़ौम हिन्दू का चिराग़े जीस्त गुल होने को था,
अपने दामन से हवा देता था ज़ालिम आसमां।
थी दुआ बेकार नालों में न कुछ तासीर थी,
हर तरफ़ थी एक सदाए अलग़यासो अलअमां।
उफ़रे गरदावे फ़ना हय हाथ किश्ती ए हनूद,
उफ़रे वो बादे हवा दिस उफ़रे जौरे आसमां।
नाख़ुदा का ज़िक्र ही क्या डूबते का कौन हो,
जब ख़ुदा ही बेकसों को छोड़दे गिरिया कर्नां।
ना उम्मेदी में सबों को फिर भी एक उम्मीद थी,
है पये फ़सले ख़िज़ां फ़सले बहारे बोस्तां।
मुज्दाबाद ऐ क़ौम बेजां मुज्दा बाद ऐ हिन्दुवां,
मतलए अनवार चमका बर फ़राज़े आसमां।
रफ़ः रफ़ः ज़ुल्म के आसार बातिल हो चले,
नक़शे उल्फ़त से मुनव्विर हो गया लौहे जहाँ।
शुक्र ख़ालिक का दुआ ठहरी हमारी मुस्तजाब,
शुक्र है उसका सुनी जिसने फ़ुग़ानेबेकसां।
ऐ दिलों के फेर देने वाले तेरा शुक्र है,
शुक्र है ऐ चारा साज़े ज़ख्म हाए खस्ताजां।
शुक्र तेरा ऐ ख़ुदा जिसने इसे पैदा किया,
जिसने बख़्शी मज़हबे हिन्दू को उम्रे जाविदां।

मतलासानी

एक दयानन्दे जवां हिम्मत हुआ जिस दम जवां—
क़ालिबे बेजां में आकर जिसने फूंकी अपनी जां।
डूबती किश्ती का वो आकर सहारा होगया,
जख़्मियों का चारा साज़ो बेकसों का पासबां।
हुब्बे क़ौमी में था वह एक बेमिसाली की मिसाल,
अबतलक सानी नहीं उसका है ज़ेरे आसमां।
मसदरे लुत्फ़ो करम और मरकज़े सिदक़ों सफ़ा,
राज़े मानी का था उसके दिल में इक गंजे निहां।
इल्मो दानिश में वह अपने वक़्त का था बादशाह,
अहले मन्तिक़ इसके आगे थे दहाने—बेज़बां।
उसके आगे फ़ीलसूफ़ों की ज़बां खुलती न थी,
देखकर सकते में रह जाते थे अहले नुकता दां।
मारिज़े हुज्जत में इसके था न दख़ले क़ीलो क़ाल,
ये ज़मी वो थी कि जिस पर था न कोई आसमां।
ख़ाकसारी से हुई हैं इसको क्या क्या रफ़अतें,
इक ज़मीं पर आसमां और आसमां पर आसमां।
नफ़्स का बावे न था क़ादिर था अपनी ज़ात पर,
ब्रह्मचारी था वह जैसा है ये मशहूरे जहाँ।
इसने बेवा औरतों के हक़ में जो अहसां किया,
शुक्र में इसके हैं अश्के गर्म आँखों से रवाँ।
कर गया आज़ाद सबको क़ैद हाये सख़्त से,
तोड़ डाले सब सलासल काट डालीं बेड़ियाँ।
जिस्म भर का था लहू गरदन में इसके मुज्तमां,
उफ़रे वो शौक़े शहादत उफ़रे ज़ौक़े पैकरां।
रास्ती प्यारी थी इसको अपनी प्यारी जान से,
वाहरे वो हौसला और वाहरे मरदे जवाँ।

इसकी सूरत पर तवे अनवार जाते पाक थी,
उसके चहरे से अयां थे राज़ हाए कुनफ़िकां ॥
अपने हाथों ले के जामे—मर्ग उसने पी लिया,
मरहबा ऐ ज़ात पाको ! मरहबा !! ऐ नौजवां ।

—श्री० पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' ।

——::०::——

स्वामी दयानन्द सरस्वती

विज्ञान-पाठ, वेद पढ़ों, को पढ़ा गया ।
विद्या-विलास, विज्ञ बरों, का बढ़ा गया ॥
सारे असार, पन्थ मतों, को हिला गया ।
आनन्द-सुधा, सार दया, का पिला गया ॥
अब कौन दया, नन्द यती, के समान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥

——::*::——

दोहा

देगी शङ्कर की दया, अब आनन्द अपार ।
देखो ! भारत का हुआ, उदय दूसरी बार ॥

भारतोदय

(१)

ब्रह्मचारी ब्रह्म-विद्या, का विशद विश्राम था ।
धर्म धारी धीर योगी, सर्व-सद्गुण धाम था ॥
कर्म-वीरों में प्रतापी, पर निरा निष्काम था ।
श्री दयानन्दर्षि स्वामी, सिद्ध जिसका नाम था ॥
बीज विद्या के उसीका, पुण्य-पौरुष बोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥

(२)

सत्यवादी वीर था जो, वाचनिक-संग्राम का।
साहसी पाया किसी को, भी न जिसके काम का॥
प्राणदे प्रेमी बना जो, प्रेम के परिणाम का।
क्या दया आनन्दधारी, धीर था वह नाम का ?॥
धन्य सच्छिक्षा-सुधा से, धर्म का मुख धो गया।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(३)

साधु-भक्तों में सुयोगी, संयमी बढ़ने लगे।
सभ्यता की सिढ़ियों पै, सूरमा चढ़ने लगे॥
वेद-मंत्रों को विवेकी, प्रेम से पढ़ने लगे।
वञ्चकों की छातियों में, शूल से गढ़ने लगे॥
भारती जागी अविद्या, का कुलाहल सोगया।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(४)

कामना विज्ञान वादी, मुक्ति की करने लगे।
ध्यान द्वारा धारणा में, ध्येय को धरने लगे॥
आलसी, पापी, प्रमादी, पाप से डरने लगे।
अन्ध-विश्वासी सचाई, भूल में भरने लगे॥
धूलि मिथ्या की उड़ादी, दम्भ-दाहक रोगया।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(५)

तर्क-झंझा के झकोले, झाड़ते चलने लगे।
युक्तियों की आग चेती, जालिमा जलने लगे॥

पुण्य के पोधे फबीले, फूलने फलने लगे।
हाथ हत्यारे हठीले, मादकी मलने लगे॥
खेल देखे चेतना के, जड़ खिलोना खोगया।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(६)

तामसी थोथे मतों की, मोह-माया हट गई।
ऐंठ की पोली पहाड़ी, खण्डनों से फट गई॥
छूत छैया की अछूती, नाक लम्बी कट गई।
लालची पाखण्डियों की, पेट-पूजा घट गई॥
ऊत भूतों का बखेड़ा, डूब मरने को गया।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(७)

राज-सत्ता की महत्ता, धन्य मङ्गल-मूल है।
दण्ड भी कांटा नहीं है, न्याय-तरु का फूल है॥
भावना प्यारी प्रजा की, धर्म के अनुकूल है।
जो बना वैरी विरोधी, हाय उसकी भूल है॥
क्या जिया जो दुष्टता का, भार आकर ढोगया।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(८)

सत्य के साथी विवेकी, मृत्यु को तरजायँगे।
ज्ञान-गीता गाय भोलों, का भला करजायँगे॥
अंध-अज्ञानी अँधेरे, में पड़े मर जायँगे।
आप डूबेंगे अविद्या, देश में भर जायँगे॥
शङ्करानन्दी वही है, जान शिवको जो गया।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

—:*:—

परमात्म पञ्चक

शङ्कर स्वामी एक है, सेवक जीव अनेक।
वे अनेक हैं एक में, वह अनेक में एक ॥ १ ॥

विश्व-विलासी-ब्रह्म का, विश्व-रूप सब ठौर।
विश्वरूपता से परे, शेष नहीं कुछ और ॥ २ ॥

होना सम्भवही नहीं, जिसमें सैक, निरेक।
जाना उस अद्वैत को, किसने बिना विवेक ॥ ३ ॥

जिसकी सत्ता का कहीं, नादि, न मध्य, न अन्त।
योगी हैं उस बुद्ध के, विरले सन्त, महन्त ॥ ४ ॥

सर्व-शक्ति सम्पन्न है, स्वगत-सच्चिदानन्द।
भूले, भेद, अभेद में, मान रहे मति-मन्द ॥ ५ ॥

महेशनामावली

भज भगवान के हैं, मङ्गल मूल नाम ये सारे ॥टेक॥

ओमद्वैत, अनादि, अजन्मा, ईश, असीम, असंग।
एक, अखण्ड, अर्यमा, अत्ता, अखिलाधार, अनंग ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे ॥

सत्य सच्चिदानन्द, स्वयंभू, सद्गुरु ज्ञान गणेश।
सिद्धोपास्य, सनातन, स्वामी, मायिक, मुक्त, महेश ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे।

विश्वविलासी, विश्वविधाता, धाता, पुरुष, पवित्र।
माता, पिता, पितामह, भ्राता, बन्धु, सहायक, मित्र ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे ॥

विश्वनाथ, विश्वम्भर, ब्रह्मा, विष्णु, विराट्, विशुद्ध।
वरुण, विश्वकर्मा, विज्ञानी, विश्व बृहस्पति, बुद्ध ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे ॥

शेष, सुपर्ण, शुक्र, श्रीस्रष्टा, सविता शिव, सर्वज्ञ।
पूषा, प्राण, पुरोहित, होता, इन्द्र, देव, यम, यज्ञ ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे।

अग्नि, वायु, आकाश, अङ्गिरा, पृथवी, जल, आदित्य।
न्यायनिधान, नीतिनिर्माता, निर्मल, निर्गुण, नित्य ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे ॥

ब्रह्म, वेदवक्ता, अविनाशी, दिव्य, अनामय, अन्न।
धर्मराज, मनु, विद्याधारी, सद्गुण-गण-सम्पन्न ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे ॥

सर्वशक्तिशाली, सुखदाता, संसृति-सागर-सेतु।
काल, रुद्र, कालानल, कर्त्ता, राहु, चन्द्र, बुध, केतु ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे ॥

गरुत्मान, नारायण, लक्ष्मी, कवि, कूटस्थ, कुबेर।
महादेव, देवी, सरस्वती, तेज, उरुक्रम, फेर ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे ॥

भक्तो ! नाम सुने शङ्कर के, अटल एकसौ आठ।
अर्थ विचारो इस माला के, कर से घिसो न काठ ॥
भ० भ० के मं० मू० नाम ये सारे।

——::*::——

ओमिष्ट देव

दोहा।

ओमक्षर के अर्थ का, धरले ध्यान पवित्र।
बोध बना देगा तुझे, अमृत मित्र का मित्र॥

ओमर्थज्ञान

ओमक्षर अखिलाधार, जिसने जान लिया॥टेक॥

एक, अखण्ड, अकाय, असङ्गी, अद्वितीय, अविकार,
व्यापक, ब्रह्म, विशुद्धविधाता, विश्व, विश्वभरतार,
को पहँचान लिया।
ओ० अ० जि० जान लिया॥

भूतनाथ, भुवनेश, स्वयंभू, अभय भावभण्डार,
नित्य, निरंजन, न्यायनियन्ता, निर्गुण, निगमागार,
मनु को मान लिया।
ओ० अ० जि० जान लिया॥

करुणाकन्द, कृपालु, अकर्त्ता, कर्महीन करतार,
परमानन्द-पयोधि, प्रतापी, पूरण-परमोदार,
से सुख दान लिया।
ओ० अ० जि० जान लिया॥

सत्य सनातन, श्री शङ्कर को, समझा सबका सार,
अपना जीवन बेड़ा उसने, भवसागर से पार,
करना ठान लिया।
ओ० अ० जि० जान लिया॥ १॥

—अनुराग-रत।

——::○::——

मूलशङ्कर का शङ्कर विवेक

(१)

सर्वेश ! श्री शङ्कर ! स्वयम्भू देव ! अब दाया करो।
इस दीन भारतवर्ष के सब सामयिक संकट हरो॥
वह काल मंगल मूल था, जब प्रेम का व्यवहार था।
सब लोग थे विद्वान वैदिक धर्म का संचार था॥

(२)

विज्ञान-पूषण की प्रभा से लोक में आलोक था।
वह दिव्य दैशिक दृश्य सब का पूज्य पुण्यश्लोक था॥
सुख भोगते थे, दूर थी सबसे अमंगल-आपदा।
गुरु-ज्ञान का सम्मान करते थे निरन्तर सर्वदा॥

(३)

अभिमान अपने देश पर, सब लोग करते थे बड़ा।
देते रहे प्रणवीरता में, प्राण की बाज़ी अड़ा॥
उनके हृदय में ज्ञान-गौरव पर अमित अनुराग था।
निज जाति पर बलिदान होना बस, उन्हीं का भाग था॥

(४)

नृप-नीति-रणचण्डी लिए करवाल कर किलकारती।
रिपु-रक्त में न्हा कर प्रमादी प्रतिभटों को मारती॥
निर्भय धनुर्धर वीर थे, अरि-लक्ष्य-तक्षक बाण थे।
प्रतियोगियों के प्राण-खग पाते न जिनसे त्राण थे॥

(५)

शिक्षा हमारी, अन्य देशों को सदा मिलती रही।
इस पुण्य-पर्वत की गुफा से ज्ञान की गंगा बही॥
अनुकूल आविष्कार करने में हमारा नाम था।
संसार का उपकार करना मुख्य अपना काम था॥

(६)

विज्ञान, शिल्प-कला, रसायन, गणित में सुप्रसिद्ध थे।
साहित्य, संगीतादि में हम लोग पूरे सिद्ध थे॥
भूगोल, आयुर्वेद, ज्योतिष, न्याय में निष्णात थे।
सब भाँति सुख-सम्पन्नता में बीतते दिन रात थे॥

(७)

पर हे प्रभो! अब तो कड़ी प्रतिकूलता का साथ है।
धन धान्य का भंडार भारत हाय! रीते हाथ है॥
विद्या विचारी चल बसी! पौरुष प्रतापी खो गया।
उद्योग डूबे सिन्धु में वाणिज्य-हीरा खो गया!!

(८)

आचार का गौरव गिरा, आलस्य विष बोने लगा।
कारुण्य पर पाला पड़ा, सद्भाव कम होने लगा॥
बल हीनता, धन हीनता से दीनता बढ़ने लगी।
वर वीरता के दुर्ग पै भय-भीरुता चढ़ने लगी॥

(९)

मत-भेद की आँधी चली तो, एकता जाती रही।
पाखण्ड-प्रियता नित नये दुर्दृश्य दिखलाती रही॥
परमार्थ की गरिमा गिराकर स्वार्थ की सीटी बजी।
अघ, दम्भ, सेनापति बने अविवेक की सेना सजी॥

(१०)

मन में, वचन में, कर्म में, समता सुनी जाती नहीं।
हठवादियों के झुण्ड में शुभ शीलता आती नहीं॥
हा! मानसिक परतन्त्रता ने दैव, दुख दारुण दिया।
निर्भीक सुनने, बोलने की सुप्रथा को हर लिया॥

(११)

हिंसा बढ़ी, मद-मांस का सेवन गजब ढाने लगा।
दुर्दृश्य अत्याचार के दुर्दैव दिखलाने लगा।
महिला न पढ़ने योग्य थीं, शूद्रादि की थी दुर्दशा।
सद्धर्म का था ढांच ढीला, कर्म गति थी कर्कशा॥

(१२)

'गुरुवर' बने वे अज्ञ जो अविवेक के अवतार थे।
'आचार्य' ऐसे थे जिन्हें आते न अत्तर चार थे॥
नेता नहीं थे न्याय के नायक, निरे भू-भार थे।
केवल इन्हीं के हाथ में अन्धेर के अधिकार थे॥

(१३)

यज्ञादि की कैसी व्यवस्था? वामियों का जोर था।
पाखण्ड के "पण्डाल" में पापिष्टता का शोर था॥
जगदीश किसका नाम है? या वेद रहते हैं कहाँ।
था व्यर्थ का बकवाद ऐसे प्रश्न का करना वहाँ॥

(१४)

हा! हिन्दुओं के ह्रास का कुछ भी न पारावार था।
परदेशियों के धर्म से इस देश का उद्धार था॥
अगणित अछूतों का अनादर देख जो उपताप था।
उससे अधिक अपनी दशा पर शोक या संताप था॥

(१५)

"खाओ, पियो, आनन्द भोगो" बस यही सब सार था।
जिस ओर जो चाहे उधर जाये न कुछ प्रतिकार था॥
हा! कौन सुनता था कथा शोकाकुलों के शोक की।
मदमत्त रहते थे, न सुधि थी, लोक की, परलोक की॥

(१६)

इस भाँति वैदिक धर्म का नित ह्रास जब होने लगा।
तो काल की करतूत पर दुर्दैव भी रोने लगा॥
इस दुस्समय में बुद्ध ने उद्धार भारत का किया।
श्रीशंकरादिक ने इसे फिर से नया जीवन दिया॥

(१७)

सब कुछ हुआ पर देश की दुर्गति न टाले से टली।
मत-भेद की ज्वाला जली, अन्धेर की आँधी चली!!
फिर जाति-बेड़ा वेग से चकफेरियाँ खाने लगा।
भ्रम के भँवर में भग्न हो जल-मग्न हो जाने लगा॥

(१८)

ऐसे समय जो सूरमा आया हमारे काम था।
'श्रीमद्दयानन्दर्षि' जगविख्यात उसका नाम था॥
प्रिय पाठको, उस वीर-वर की कुछ कथा सुन लीजिए।
अतुलित दया-आनन्द का सुन्दर सुधारस पीजिए॥

(१९)

ऋषि के परम पावन चरित को क्या लिखें हम से कुधी।
इस काम को पूरा करें कवि-कुल-तिलक, सज्जन सुधी॥
हाँ, आज ये तुकयुक्त कतिपय पंक्तियाँ पढ़ लीजिए।
लघु लेखनी की धृष्टता पर ध्यान कुछ मत दीजिए॥

(२०)

गुजरात भारतवर्ष में चिरकाल से विख्यात है।
सौराष्ट्र की कलकीर्ति सारे देश में प्रख्यात है॥
प्रिय प्रकृति देवी नित नए अवतार धरती है यहाँ।
अपने अलौकिक रूप से मन मुग्ध करती है यहाँ॥

(२१)

इस प्रान्त ही में "मोरवी" का राज्य मङ्गल मूल है।
उद्यान, उपवन, वन घने मच्छू नदी का कूल है॥
यतिवर 'दयानन्दर्षि' की है जन्म-भू जननी यही।
अभिमान करती है इसी पर भव्य भारत की मही॥

(२२)

संवत् अठारह सौ इक्यासी विक्रमी शुभ काल था।
जब भारती के भाग्य से पैदा हुआ यह लाल था॥
औदीच्य ब्राह्मण वंश था, माता पिता धर्मज्ञ थे।
सन्तान-पालक, धर्मरक्षक शास्त्र के मर्मज्ञ थे॥

(२३)

परिवार के सब लोग शिव को पूजते थे सर्वदा।
हर-ध्यान करते थे तथा जप-दान करते थे सदा॥
ज्ञानी गृहस्थी थे, न थी सुख-साधनों की न्यूनता।
कुत्सित कथा, लौकिक व्यथाओं का न था कुछ भी पता॥

(२४)

नवजात बालक 'मूलशंकर' नाम से बोला गया।
बस आज से इस देश का कल्याण-पथ खोला गया॥
भगवान की अतुलित दया से बाल विधु बढ़ने लगा।
माता-पिता के उर-कुमुद को मोद से मढ़ने लगा॥

(२५)

शिशु का मनोहर रूप कुल में हर्ष उपजाने लगा।
बैठा, उठा, चलने लगा, हँस, खेलने, खाने लगा॥
फिर मूलशंकर को सविधि यज्ञोपवीत दिया गया।
विद्या पढ़ाने के लिए समुचित प्रबन्ध किया गया॥

(२६)

नियमित समय पर पाठशाला को सदा जाने लगा।
कुछ काल ही में वेद को आनन्द से गाने लगा॥
आशीष देते थे, सभी बालक बड़ा विद्वान हो!
गुणवान हो! बलवान हो! धर्मज्ञ हो! श्रीमान हो!!

(२७)

रुद्री रटी, व्याकरण सीखा, और भी विद्या पढ़ी।
इस भांति से दिन रात सीमा जानकारी की बढ़ी॥
थोड़े दिनों में ही सुनिश्चित पाठ पूरा कर लिया।
मानो नदोरे में नदी का नीर सारा भर लिया॥

(२८)

इच्छा हुई फिर और विद्या-धन कमाने के लिये।
परिवार, पुर को छोड़ काशी धाम जाने के लिये॥
माता पिता के मोह से बाधा पड़ी इस काम में।
मन मार कुछ दिन और भी रहना पड़ा निज ग्राम में॥

(२९)

पर मूलशङ्कर ईश के अनुराग में अनुरक्त था।
वह ब्रह्मचारी शुद्ध वेदाचार्य-कुल का भक्त था॥
उसके लिये होना गृही परतन्त्रता का जाल था।
सुकुमार मुक्त कुमार का ऐसा विलक्षण हाल था॥

(३०)

कुछ काल के पश्चात् ही दो मृत्यु घर में हो गईं।
जो बीज सङ्कट के सुखी-परिवार भर में बो गईं॥
रोता हुआ कुनबा अभागा भोगता सन्ताप था।
पर, मूलशङ्कर शोक-लीला देखता चुपचाप था॥

(३१)

यह काल रूपी व्याल सब को एक दिन खा जायगा।
इसके विषैले दंश से कोई न बचने पायगा॥
जीता मरा है जो नहीं उपकार कुछ कर जायगा।
हाँ, वह अमर हो जायगा जो जाति पर मर जायगा॥

(३२)

'यह सोच कर संसार में कर्त्तव्य करना चाहिए।
घर में घुसे रह कर न मूषिक-मौत मरना चाहिए'॥
इस भाँति ऊहापोह में, भावी महा मुनि मस्त था।
पर, शेष सब परिवार मृतकों की क्रिया में व्यस्त था॥

(३३)

जब यों जगज्जंजाल से होने लगी उपरामता।
निर्वाण पाने के लिए आगे बढ़ी निष्कामता॥
माता पिता को भाव ऐसे ज्ञात जब होने लगे।
तो, वे विचारे पुत्र के उपताप से रोने लगे॥

(३४)

कहने लगे-बेटा! अरे! हम से अलग हो जायगा!
प्यारे! दुलारे! आँख के तारे! कहीं खो जायगा!!
यह देख उसकी वृत्ति को विपरीत करने के लिए।
उद्वाह की चरचा चली, गति को बदलने के लिए॥

(३५)

इस बीच में शिवरात्रि के व्रतका सदुत्सव आगया।
सारे नगर पर इष्ट-पूजा का सुलक्षण छागया॥
फल, फूल, पत्रादिक लिए हर भक्त मन्दिर में गये।
'बम बोल कर' जल छोड़ कर, करजोड़ पद गाए, नये॥

(३६)

मिल मूलशङ्कर ने उन्हीं में, शङ्कराराधन किया।
उपवास रक्खा, दीन-हीनों को सरस भोजन दिया॥
जगता रहा यह रात भर पर, अन्य सब सोते रहे।
ऐसे सुअवसर को वृथा आलस्य में खोते रहे॥

(३७)

सब लोग सोते थे पड़े अवशिष्ट आधी रात थी।
दैवात् ज्ञानाधार को सूझी विलक्षण बात थी॥
शिवलिङ्ग के चावल चबा कर एक चूहा चल दिया।
फिर दूसरे ने भी वहाँ आकर वही करतब किया॥

(३८)

यह देख कर पूछा पिता से खोल दी सारी कथा।
क्यों पूजना जड़ लिङ्ग को-समझी गई अच्छी प्रथा?
"जो मूर्ति अपना आखु* से भी त्राण कर सकती नहीं।
वह सिद्ध शंकर हो-हमारे दुःख हर सकती नहीं"॥

(३९)

यह तो निरा पाखण्ड है, सब लोग भ्रम के भक्त हैं।
अज्ञान पर आसक्त हैं, अन्धेर में अनुरक्त हैं॥
'बस, मैं न उस पाषाण को जगदीश मानूंगा कभी।
जिसकी निरर्थक शक्ति-मत्ता देख पायी है अभी॥

(४०)

आलोचना की पुत्र ने, इस भाँति प्रतिमा की कड़ी।
पूजक पिता के पक्ष पर प्रतिवाद की बिजली पड़ी॥
बेटा न फिर उद्यत हुआ, पितु से उलझने के लिए।
घर छोड़ने की ठानली, सब से सुलझने के लिए॥

---

* चूहा।

(४१)

फिर शीघ्र शादी के लिए, होने लगी आयोजना।
सर्वत्र ही समझी गई, सुखदा यही संयोजना॥
पर, बन्धनों से बाँधने का यत्न सब बेकार था।
जब 'मूलशंकर' मुक्त होने के लिए तैयार था॥

(४२)

पूरे प्रलोभन और अस्थिर भोग, सुख-साधन सभी।
क्या ब्रह्मचारी की प्रतिज्ञा तोड़ सकते थे कभी?
बस एक दिन अवसर मिला तो, छोड़ पुर-परिवार को।
घर से सिधारा मूलशंकर देश के उद्धार को॥

(४३)

जो चाहते हैं लोक या, परलोक हित साधन करें।
विद्या पढ़ें बन ब्रह्मचारी, ईश आराधन करें॥
आचार की उत्कृष्टता का ध्यान वे रक्खें सदा।
बलिदान हों पर मातृ भू का मान रक्खें सर्वदा॥

—श्री पं० हरिशङ्कर शर्मा।

———::o::———

दोहा

शङ्कर से न्यारा रहा, धर्म सुकर्म विसार।
कौन उतारेगा तुझे, भव-सागर से पार॥

उलझा माया-जाल में, मूढ़ कुटुम्ब समेत।
आता है दिन अन्त का, अब तो चेत अचेत॥

—महाकवि 'शङ्कर'।

———::*::———

ओमाराधन

ओमनेक वार बोल, प्रेम के प्रयोगी ॥ टेक ॥

है यही अनादिनाद, निर्विकल्प निर्विवाद,
भूलते न पूज्यपाद, वीतराग योगी।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ॥

वेदको प्रमाण मान; अर्थ योजना बखान,
गारहे गुणी सुजान, साधु स्वर्ग भोगी।
ओ० वा० बो० प्रे० प्रयोगी ॥

ध्यान में धरें विरक्त, भाव से भजें सुभक्त,
त्यागते अघी अशक्त, पोच पाप रोगी।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ॥

शङ्करादि नित्य नाम, जो जपे विसार काम,
तो बने विवेक धाम, मुक्ति क्यों न होगी।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ॥

——::o::——

सत्य-विश्वास

जिसमें तेरा नहीं विकास,
वैसा विकसा फूल नहीं है ॥ टेक ॥

मैंने देख लिया सब ठौर, तुझ सा मिला न कोई और,
पाया तू सब का सिरमौर, प्यारे इसमें भूल नहीं है।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

तेरे किंकर करुणा-कन्द, पाते हैं अविरल आनन्द,
तुझ से भिन्न सच्चिदानन्द, कोई मङ्गल मूल नहीं है।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

प्रेमी-भक्त प्रमाद विसार, मागें मुक्ति पुकार पुकार,
सब का होगा सर्व सुधार, जो पै तू प्रतिकूल नहीं है।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है॥
जिनको मिला बोध विश्राम, जीवन-मुक्त बने निष्काम,
उनको शङ्कर श्री-धाम, तेरा न्याय-त्रिशूल नहीं है।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है॥

—:o:—

दोहा

घेर रहे छोड़ें नहीं, अटके पाप कठोर।
दीनानाथ निहार तू, मुझ व्याकुल की ओर॥

व्याकुल-विलाप

हे प्रभु मेरी ओर निहार॥ टेक॥
एक अविद्या का अटका है पचरङ्गी परिवार।
मेल मिलाप एषणा* तीनों, करती हैं कुविचार॥
हे प्रभु मेरी ओर निहार॥
काट रहे कामादि कुचाली, धार कुकर्म-कुठार।
जीवन-वृक्ष खसाथा, सूखा पौरुष-पाल-पसार॥
हे प्रभु मेरी ओर निहार।
घेर रहे वैरी-विषयों के, बन्धन रूप विकार।
लाद दिये सबने पापों के, सिर पर भारी भार॥
हे प्रभु मेरी ओर निहार॥
जो तू करता है पतितों का; अपनाकर उद्धार।
तो शङ्कर मुझ पापी को भी, भव सागर से तार॥
हे प्रभु मेरी ओर निहार॥

—:o:—

* एषणा तीनों—१-पुत्रैषणा, २-वित्तैषणा, ३-लोकैषणा।

हताश की हा ! हा !

डगमग डोले दीनानाथ, !
नैया भव-सागर में मेरी ॥ टेक ॥

मैंने भरभर जीवन-भार, छोड़े तन-वोहित वहुवार,
पहुँचा एक नहीं उस पार, यह भी काल-चक्र ने घेरी।
डगमग डोले दीनानाथ नैया भव-सागर में मेरी ॥

मुड़का मेरु-दण्ड पतवार, कर, पग, पाते चलें न चार,
सकुचा मनमाझी हियहार, पूरी दुर्गति रात अंधेरी।
डगमग डो० ॥

ऊलें अघ झष, नक्र, भुजङ्ग, झटकें पटकें ताप तरङ्ग,
तरती कर्म,-पवन के सङ्ग, भागे भरती है चकफेरी।
डगमग डो० ॥

ठोकर मरणाचल की खाय, फट कर डूब जायगी हाय,
शङ्कर अब तो पार लगाय, तेरी मार सही वहुतेरी।
डगमग डो० ॥

धर्म जिज्ञासा

हे जगदीश देव ! मन मेरा।
सत्य सनातन धर्म न छोड़े ॥ टेक ॥

सुख में तुझको भूल न जावे, नेक न संकट में घबरावे,
धीर कहाय अधीर न होवे, तमक न तार क्षमा का तोड़े।
हे जगदीश देव ! मन मेरा, सत्य सनातन धर्म न छोड़े ॥

त्याग जीव के जीवन-पथ को, टेढ़ा हांक न दे तन रथ को,
अति चंचल इन्द्रिय घोड़ों की, भ्रम से उलटी वाग न मोड़े।
हे जगदीश० ॥

होकर शुद्ध महाव्रत धारे, मलिन किसी का माल न मारे,
धार-घमण्ड क्रोध-पाहन से, हा ! न प्रेम रस का घट फोड़े।
हे जगदीश० ॥

ऊँचे विमल-विचार चढ़ावे, तप से प्रातिभ-ज्ञान बढ़ावे,
हठ तज मान करे विद्या का, शङ्कर श्रुति का सार निचोड़े ॥
हे जगदीश० ।

—::*::—

जीवन्मुक्तों के नाम

सुनोरे साधो,
मंगल-मंडित नाम ॥ टेक ॥

अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, प्रकटे पूरण काम।
ब्रह्मा, मनु, वशिष्ट ने पाया, उच्च विशद विश्राम ॥
सुनोरे साधो, मंगल-मण्डित नाम ॥

धर्माधार अखण्ड प्रतापी, राम लोक अभिराम।
योगी-राज अद्वैत-विवेकी, यादवेन्द्र-घनश्याम ॥
सुनोरे सा० ॥

विद्या-वारिधि व्यास देव ने, समझे ऋग्यजु साम।
सिद्ध प्रसिद्ध महा विज्ञानी, शुद्ध-बुद्ध सुख धाम ॥
सुनोरे सा० ॥

शङ्करादि नामी पुरुषों के, गाय गाय गुण-ग्राम।
करिये दयानन्द स्वामी को, श्रद्धा सहित प्रणाम ॥
सुनोरे सा० ॥१॥

ब्रह्म विवेकाष्टक

(१)

एक शुद्ध-सत्ता में अनेक भाव भासते हैं,
भेद-भावना में भिन्नता का न प्रवेश है।
नानाकार द्रव्य, गुण, धारी मिले नाचते हैं,
अन्तर दिखाने वाले देश का न लेश है॥
औपाधिक-नाम-रूप-धारा महा-माया मिली,
माया-मानी-जीव जुड़े मायिक महेश है।
न्यारे न कहाओ, बनो ज्ञानी, मिलो शङ्कर से,
सत्यवादी-वेद का यही तो उपदेश है॥

(२)

आदि, मध्य, अन्तहीन, भूमा भद्र, भासता है,
पूरा है, अखण्ड है, असंग है, अलोल है।
विश्व का विधाता परमाणु से भी न्यारा नहीं,
विश्वता से बाहरी न ठोस है न पोल है॥
एक निराकार ही की नानाकार कल्पना है,
एकता अतोल में अनेकता की तोल है।
भेद हीन नित्य में सभेदों की अनित्यता है,
खोजले तू शङ्कर जो, ब्रह्म की टटोल है॥

(३)

एक में अनेकता, अनेकता में एकता है,
एकता, अनेकता का मेल चकाचूर है।
चेतना से जड़ता को, जड़ता से चेतना को,
भिन्न करे कौनसा प्रमाता-महाशूर है॥

ठोस को, न छोड़े पोल, पोल को न त्यागे ठोस,
ठोस नाचती है, टिकी-पोल से न दूर है।
भावरूप-सत्ता में असत्ता है, अभाव-रूप,
शङ्कर यों अत्ता में महत्ता भरपूर है॥

(४)

सत्य-रूपी-सत्ता की महत्ता का न अन्त कहीं,
नेति नेति बार बार वेद ने बखानी है।
चेतन-स्वयंभू सारे लोकों में समाय रहा,
जीव प्यारे-पुत्र हैं प्रकृति-महारानी है॥
जीवन के चारों फल बाँटे भक्त-योगियों को,
पूरण प्रसिद्ध ऐसा दूसरा न दानी है।
शङ्कर जो राजा महाराजों का महेश उसी,
विश्वनाथ-ब्रह्म की बड़ाई मन मानी है।

(५)

पावक से रूप, स्वाद पानी से, मही से गन्ध,
मारुत से छूत, शब्द अम्बर से पाते हैं।
खाते हैं अनेक अन्न, पीते हैं पवित्र-पेय,
रोम, पाट, छाल, तूल, ओढ़ते, बिछाते हैं॥
अन्य प्राणियों को जाति-योग से मिले हैं भोग,
ज्ञान-सिद्ध-साधनों से मानव कमाते हैं।
शङ्कर दयालु-दानी देता है दया से दान,
पाय पाय प्यारे जीव जीवन बिताते हैं॥

(६)

माने अवतार तो अनङ्गता की घोषणा है,
अङ्गहीन सारे अङ्गियों का सिरमौर है।
पूज प्रतिमा तो विश्व-व्यापकता बोलती है,
नारायण-स्वामी का ठिकाना सब ठौर है॥

खोजें घने देवता हो एकता निषेध करे,
एक महादेव कोई दूसरा न और है।
अन्त को प्रपंच ही में पाया शुद्ध शङ्कर जो,
भावना से भिन्न है न श्याम है, न गौर है॥

(७)

एक मैं ही सत्य हूँ, असत्य मुझे भासता है,
ऐसी अब धारणा, अवश्य भूल भारी है।
पूजतें जड़ों को गुण गाते हैं मरों के सदा,
कर्म अपनाये महा-चेतना बिसारी है॥
मानते हैं दिव्य-दूत, पूत प्यारे शङ्कर के,
जानते हैं नित्य-निराकार तन-धारी है।
मिथ्या-मत वालों को सचाई कब सूझती है,
ब्रह्म के मिलाप का विवेकी अधिकारी है॥

(८)

योग साधनों से होगा चित्त का निरोध और,
इन्द्रियों के दर्प की कुचाल रुक जावेगी।
ध्यान, धारणा के द्वारा सामाधिक धर्म धार,
चेतना भी संयम की ओर झुकजावेगी॥
मूढ़ता मिटाय महामेधा का बढ़ेगा वेग,
तुच्छ लोक-लालच की लीला लुक जावेगी।
शङ्कर से पाय परा-विद्या यों मिलेंगे मुक्त,
बन्धन की वासना अविद्या चुक जावेगी॥

—महकवि श्री पं० नाथूराम शर्मा 'शङ्कर'।

दयानन्द का चमत्कार

महाभारत में धर्म की जय हुई थी, परन्तु उसमें इतने बड़े बड़े ज्ञानी, दानी एवं शूरमा काम आए थे, कि वास्तव में भारत का पतन महाभारत के बाद ही से आरम्भ हुआ। वेद व शास्त्र के पढ़ने वाले द्रोणाचार्य जैसे विद्वान् एवम् भीष्म व कर्ण ऐसे बहादुर योद्धा काम आ चुके थे। तब लोग अँधेरी रात की तरह छोटे छोटे दीपकों को ही सूर्य मान बैठे। जो थोड़ा पढ़े थे, वही विद्वान् कहलाने लगे। साधारण बल वाले योद्धा कहलाने लगे। धीरे धीरे अवनति होती गई, विद्या तथा बल का लोप होता गया। आपस में वैमनस्य भी बढ़ता गया। जब यह दशा हो गई, तो विदेशियों की लार टपकने लगी। उनकी दृष्टि इस सोने की चिड़िया की ओर पड़ी। बस, फिर क्या था; कभी सिकन्दर आक्रमण करता है, कभी ग़ज़नवी लूटमार कर सहस्रों ग़ुलाम बना ले जाता है, और कभी ग़ोरी जयचन्द को मिला पृथ्वीराज को परास्त करता है। ईर्षा व द्वेष में जयचन्द ने जहाँ देश वा धर्म का ध्यान नहीं रक्खा, वहाँ अपनी पुत्री संयोगिता की भी नहीं सुनी। यद्यपि आने वाले भयानक समय का चित्र भी उसने दिखा दिया था, कि भारत में गउओं के गले पर छुरी चलेगी, मन्दिर ढाये जायँगे, धर्म की पुस्तकें जलाई जायँगी, चोटी व जनेऊ का पता भी न लगेगा, ऋषि सन्तान हाहाकार पुकारेगी, अनाथों की दुर्दशा होगी और तुम्हारा नाम सदा के लिये कलंकित हो जावेगा। परन्तु जयचन्द ने एक न मानी, जिसका फल यह हुआ कि संयोगिता की पेशीनगोई पूरी हुई। वेद गड़रियों के गीत कहलाने लगे, हिन्दू-धर्म कच्चा धागा समझ लिया गया। ऋषि सन्तान कायर व निकम्मी कही जाने लगी। उसको अपने ऊपर भी विश्वास न रह गया। अकस्मात् इस निराशा में पुनः आशा

की झलक हुई। मूलशङ्कर का जन्म गुजरात में हुआ। कौन जानता था कि, यह बालक, संसार की काया पलट देगा और भारत को फिर अन्धकार के गढ़े से निकाल ज्ञान-मार्ग पर लावेगा। ईश्वर की महिमा अपार है। गुरु विरजानन्द ने दयानन्द को ब्रह्मचारी रख कर वेदशास्त्रों की पूर्ण शिक्षा दी। शिक्षा पाने के पश्चात् वह गुरु की आज्ञानुसार अकेले ही वेदों का झण्डा लेकर मैदान में कूद पड़े। बात का पता इसीसे लगाया जा सकता है कि, दयानन्द कितने विद्वान्, धैर्यवान्, ज्ञानी एवम् पुरुषार्थी थे कि, उन्होंने सारी दुनिया के ख़िलाफ़ अकेले ही आवाज़ उठाई। न उनका कोई सहायक था, न उनके पास धन था, केवल दृढ़ विश्वास ईश्वर वा वेद पर था। इसी धुन में दयानन्द ने निर्भय होकर वेदों का प्रचार किया। उन्हें धमकी दी गई, ईंटों से मारा गया, विष दिया गया, परन्तु दयानन्द का विश्वास अटल रहा। उन्होंने पीछे क़दम नहीं हटाया, और थोड़े ही दिन में उनकी विजय-पताका फहराने लगी। विरोधियों के दिलों पर भी दयानन्द ने सिक्का जमा लिया, और वह वेदों के सामने शिर झुकाने लगे। मैक्समूलर ऐसे जर्मन विद्वान्, जो महीधर वा सायण आदि के भाष्य पढ़ कर वेद-विरोधी हो गये थे, वह भी दयानन्द रचित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़ कर दयानन्द के जादू के क़ायल हो गये। वह अपनी पुस्तक "India: what can it teach us" (भारत से हमको क्या शिक्षा मिल सकती है) में लिखते हैं—"मेरा यह दावा है कि, संसार में मनुष्य मात्र के स्वाध्याय के लिये कोई पुस्तक ऐसी आवश्यक नहीं जैसी कि वेद है। मेरा यह भी दावा है कि, प्रत्येक मनुष्य, जो आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहे, या अपने पूर्वजों का ज्ञान प्रसिद्ध करना चाहे, या मस्तिष्क की उन्नति करना चाहे उसके लिये वेद का स्वाध्याय करना अत्यन्त आवश्यक है।"

उसने अपनी दूसरी व अन्तिम पुस्तक Six Systems of Indian Philosophy (भारत के षट्शास्त्र) में लिखा है कि, "चाहे वेदों के मन्त्रों का समय कोई होवे, संसार भर के साहित्य में वेद अद्वितीय स्थान रखते हैं, और किसी अन्य साहित्य या ग्रन्थ पर निर्भर नहीं तथा वेद स्वतःप्रमाण हैं।" सारांश यह है कि, दयानन्द ने थोड़े ही समय में संसार में वेदों का डंका बजा दिया और पाँच सहस्र वर्ष से सोयी हुई जाति को जगा दिया। मत-मतान्तरों में खलबली फैल गई। वेद रूपी सूर्य के सामने छोटे छोटे टिमटिमाते दीपक बुझने लगे। कहीं बाइबल में संशोधन होने लगा। कहीं क़ुरान की शिक्षा के विरुद्ध आवाज़ सुनाई देने लगी। कहीं कमाल पाशा ख़लीफ़ा को निकाल रहे हैं, तो कहीं अमानुल्लाह अमन (शान्ति) स्थापन करने के लिए देवबन्दी मुल्लाओं का देश निकाला कर रहे है। कहीं इब्नसऊद अपने ढंग पर अरब में प्रचलित इस्लाम के विरुद्ध जिहाद कर रहे हैं। मास्को (रूस) में क़ुरान का छपना, बिकना तथा हिफ्ज़ करना (रटना) क़ानूनन् बन्द किया जा रहा है। मसजिदों की जायदादें ज़ब्त की जा रही हैं। कहीं अरबी का ख़ात्मा हो रहा है, कहीं पर्दा उड़ाया जा रहा हैं। कहीं मिस मिलर जगद्गुरु शंकराचार्य के हाथों महारानी शर्मिष्ठाबाई बन रही हैं। कनखल हरिद्वार में अमरीकन प्रोफेसर मिस्टर स्टिप गौतम ऋषि बनकर वेदों के प्रचार का बीड़ा उठा रहे हैं। आज मुहम्मदअली क़ुरैशी शान्ति स्वरूप बन रहे हैं, तो कल लतीफ़हुसैन नटवर ललित-कुमारसिंह बन गये हैं। तात्पर्य यह कि, दयानन्द ने थोड़े ही समय में वह चमत्कार दिखाया कि सहस्रों वर्ष की बिगड़ी को थोड़े ही समय में बना दिया। आज संसार दयानन्द को गुरु और वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने लगा। ऋषि सन्तान को फिर से ढाढस बँध गया है। परन्तु जिस रफ्तार से हम जा रहे हैं,

वह संतोषजनक नहीं है। हमारा कर्त्तव्य है कि, स्वामी दयानन्द के शेष कार्य को पूरा करने व वेदों का सन्देश दुनिया के कोने कोने में पहुँचाने का प्रयत्न करें। इसी सम्बन्ध में प्रो० मैक्स-मूलर लिखते हैं—

"I have full sympathy with the Aryasamaj movement. I know that Swami Dayanand worked with honest motives. The followers of Swami Dayanand should not be content with what Swami has done but should carry on the work which he has left undone. I shall be glad if I am able to do any service to the Aryasamaj."

पस, ऋषि के लगाये पौधे आर्यसमाज को, जिसको स्वामीजी ने अपने खून से सींचा है, वर्तमान आँधी से सुरक्षित रखना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य होना चाहिये। तभी हम स्वामीजी के सच्चे अनुयायी कहला सकते हैं।

—श्री उमाशङ्करजी वकील भूतपूर्व
एम० एल० सी० मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त।

* इति *

—:*:—